



**उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी**  
**नैदानिक मनोविज्ञान के आधार (एमएपीएसवाई-611)**  
**Foundations of Clinical Psychology (MAPSY-611)**

**अनुक्रमणिका**

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
1.	नैदानिक मनोविज्ञान: प्रकृति एवं विकास, नैदानिक मनोवैज्ञानिक की गतिविधियाँ, नैदानिक मनोविज्ञान एवं अन्य संबंधित क्षेत्र, असामान्य एवं नैदानिक मनोविज्ञान में अन्तर (Clinical Psychology: Nature and development, Activities of Clinical Psychologists, Clinical Psychology and other related fields, Difference between Abnormal and Clinical psychology)	1-13
2.	व्यावसायिक प्रशिक्षण, विनियमन एवं नैतिक नियम (Professional Training, Regulation and Professional Ethics)	14-23
3.	नैदानिक मनोविज्ञान एवं नैदानिक मूल्यांकन की अध्ययन विधियाँ:- साक्षात्कार, व्यक्ति इतिहास विधि एवं मानसिक स्थिति का परीक्षण (Study Methods of Clinical Psychology and Clinical Assessment:- Interview, Case History and Mental Status Examine)	24-38
4.	निदान : अर्थ एवं वर्गीकरण का उद्देश्य; DSM-V: विकृति या असामान्यता का वर्गीकरण (Diagnosis: Meaning and Purpose of Classification; DSM-V: Classification of Abnormality)	39-65
5.	मनोचिकित्सा: अर्थ एवं प्रकृति, हस्तक्षेप के मॉडल एवं मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा (Psychotherapy: Meaning and Nature, Models of Intervention and Psychoanalytic Therapy)	66-84
6.	व्यवहार चिकित्सा: क्रमबद्ध असंवेदीकरण, संज्ञानात्मक-व्यवहार, रोगी-केन्द्रित, गेस्टाल्ट एवं अस्तित्ववादी चिकित्सा (Behavior Therapy: Systematic Desensitization, Cognitive Behavior, Client-Centered, Gestalt and Existential Therapy)	85-99

7.	<p>चिंता विकृतियाँ:- भीषिका, दुर्भीति, सामान्यीकृत चिंता; मनोग्रस्तता-बाध्यता एवं उत्तर आघातीय तनाव विकृति</p> <p>(Anxiety Disorder: Panic and Phobias, Generalized Anxiety disorder; Obsessive Compulsive Disorder and Posttraumatic Stress disorder)</p>	100-117
8.	<p>मनोविदलता: अर्थ, लक्षण एवं प्रकार; स्थिर-व्यामोही विकृतियाँ एवं व्यामोही विकृतियाँ, स्थिर-व्यामोह के लक्षण, हेतुकी एवं उपचार (Schizophrenia: Meaning and Symptoms and Types; Paranoid and Delusional Disorders:- Symptoms, Etiology and Treatment)</p>	118-134
9.	<p>व्यक्तित्व विकृतियाँ : अर्थ, स्वरूप, प्रकार, कारक एवं उपचार (Personality Disorders:- Meaning, Nature, Types, Factors and Treatment)</p>	135-156

**ईकाई-1 नैदानिक मनोविज्ञान: प्रकृति एवं विकास, नैदानिक मनोवैज्ञानिक की गतिविधियाँ, नैदानिक मनोविज्ञान एवं अन्य संबंधित क्षेत्र, असामान्य एवं नैदानिक मनोविज्ञान में अन्तर** (Clinical Psychology: Nature and development, Activities of Clinical Psychologists, Clinical Psychology and other related fields, Difference between Abnormal and Clinical psychology)

### इकाई संरचना

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 नैदानिक मनोविज्ञान की प्रकृति
- 1.4 नैदानिक मनोविज्ञान का विकास
- 1.5 नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की गतिविधियाँ
  - 1.5.1 मानसिक चिकित्सालयों में
  - 1.5.2 विद्यालयों में
  - 1.5.3 बाल मार्गदर्शन उपचार गृह में
  - 1.5.4 व्यवसायिक मार्गदर्शन केन्द्रों में
  - 1.5.5 बन्दीगृहों एवं सुधारगृहों में
  - 1.5.6 संगठनों एवं उद्योगों में
  - 1.5.7 मादक द्रव्य निर्मूलन केन्द्रों में
- 1.6. नैदानिक मनोविज्ञान एवं अन्य सम्बन्धित क्षेत्र
  - 1.6.1. परामर्श मनोविज्ञान के साथ संबंध
  - 1.6.2. मनोरोग विज्ञान के साथ संबंध
  - 1.6.3. मनोविश्लेषण के साथ संबंध
  - 1.6.4. असामान्य मनोविज्ञान के साथ संबंध
  - 1.6.5. मनोरोगी सामाजिक कार्य के साथ संबंध
  - 1.6.6. निर्देशन मनोविज्ञान के साथ संबंध
- 1.7. असामान्य मनोविज्ञान एवं नैदानिक मनोविज्ञान में अन्तर
- 1.8. सारांश
- 1.9. शब्दावली
- 1.10. अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर
- 1.11. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 1.12. निबन्धात्मक प्रश्न

## 1.1 प्रस्तावना

नैदानिक मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहारिक जीवन से सम्बन्धित कठिनाईयों के समाधान का प्रयास करता है। इसमें मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों तथा तकनीकियों का प्रयोग करके व्यक्ति के सामने आने वाली समस्याओं का समाधान किया जाता है। नैदानिक मनोविज्ञान का सम्बन्ध अधिकतर उन समस्याओं से होता है जिनसे एक व्यक्ति जूझता रहता है। नैदानिक मनोविज्ञान में व्यक्ति विशेष के व्यवहार को समझने का प्रयास किया जाता है। इसे एक सहायतापरक पेशे के रूप में प्रयुक्त किया जाता है जो साँवैगिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं से पीड़ित व्यक्तियों को उनकी इन समस्याओं से मुक्ति दिलाने की कोशिश करता है।

प्रस्तुत इकाई में नैदानिक मनोविज्ञान की प्रकृति एवं विकास के बारे में आप जान सकेंगे। साथ ही नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की विभिन्न गतिविधियाँ तथा नैदानिक मनोविज्ञान से सम्बन्धित अन्य क्षेत्रों के बारे में विस्तृत रूप से अध्ययन कर सकेंगे।

## 1.2 उद्देश्य-

इस इकाई के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य हैं-

1. नैदानिक मनोविज्ञान परिचय एवं विकास को समझ सकें।
2. विभिन्न क्षेत्रों में नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की गतिविधियों को जान सकें।
3. मनोविज्ञान के अन्य क्षेत्रों का नैदानिक मनोविज्ञान के साथ सम्बन्ध को जान सकें।
4. असामान्य मनोविज्ञान एवं नैदानिक मनोविज्ञान के अन्तर को समझ सकें।

## 1.3 नैदानिक मनोविज्ञान की प्रकृति -

नैदानिक मनोविज्ञान मनोविज्ञान की एक प्रमुख प्रयुक्त शाखा है। मनोविज्ञान की एक ऐसी शाखा है जिसमें मानसिक रोगों के निदान तथा उपचार पर बल डाला जाता है। नैदानिक मनोविज्ञान पद का प्रतिपादन सबसे पहले लाइटनर विटमर ने 1896 में किया। नैदानिक मनोविज्ञान का संबंध मानसिक रोगों के वर्णन वर्गीकरण निदान तथा पूर्वानुमान से होता है। इसमें मानसिक रोगों का उपचार मनोवैज्ञानिक विधियों से किया जाता है।

### परिभाषायें

- (i) सिक्कारेल्ली एवं मेयर (2006) के अनुसार “नैदानिक मनोविज्ञान मनोविज्ञान का एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें मनोवैज्ञानिक साधारण से गंभीर रूप से मनोवैज्ञानिक विकृतियों से ग्रस्त व्यक्तियों की पहचान एवं उपचार करते हैं।”

(ii) कोरचिन (1986) के अनुसार, नैदानिक मनोविज्ञान का संबंध मनोवैज्ञानिक समस्याओं से ग्रसित व्यक्तियों को समझने एवं उन्हें मदद करने से होता है। नैदानिक मनोविज्ञान का संबंध मानव व्यक्तित्व की संरचना एवं कार्य के बारे में ज्ञान उत्पन्न करने तथा उनका उपयोग करने से भी होता है।

(iii) रॉटर जुलियन बी. (1964) ‘विस्तृत आधार पर, नैदानिक मनोविज्ञान मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुप्रयोग का वह क्षेत्र है, जिसका संबंध मुख्यतः व्यक्तियों के मनोवैज्ञानिक समायोजन से रहता है।’

उपरोक्त परिभाषाओं से ये स्पष्ट हो जाता है कि नैदानिक मनोविज्ञान का संबंध एक व्यक्ति की साधारण तथा व्यक्तिगत समस्याओं तथा कठिनाइयों से है अर्थात् नैदानिक मनोविज्ञान का संबंध व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित विभिन्न क्षेत्रों की व्यावहारिक तथा साधारण समस्यायें ही है।

नैदानिक मनोविज्ञान में सांवेगिक एवं व्यवहारात्मक समस्याओं के निदान एवं उपचार पर बल डाला जाता है। इस समस्याओं में प्रमुख है:- मानसिक रोग, किशोर अपराध, मानसिक दुर्बलता, वैवाहिक एवं पारिवारिक संघर्ष, औषध व्यसन, आपराधिक व्यवहार आदि।

नैदानिक मनोविज्ञान में संवेगात्मक एवं व्यवहारात्मक समस्याओं को समझने के लिए व्यक्ति के व्यक्तित्व के अध्ययन पर भी बल डाला जाता है। सिगमण्ड फ्रायड ने नैदानिक मनोविज्ञान के इस पक्ष पर सबसे अधिक बल डाला है।

नैदानिक मनोविज्ञान में सभी संस्कृति के उच्च, मध्य तथा निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के व्यक्तियों के सांवेगिक, जैविक, सामाजिक, बौद्धिक एवं मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर विचार विमर्श किया जाता है।

नैदानिक मनोविज्ञान का स्वरूप प्रयुक्त है। इसमें मानसिक रोगों तथा अन्य सांवेगिक एवं व्यवहारात्मक समस्याओं का निदान एवं उपचार पर बल डाला जाता है।

#### 1.4 नैदानिक मनोविज्ञान का विकास -

##### पाश्चात्य देशों में नैदानिक मनोविज्ञान का विकास-

नैदानिक मनोविज्ञान अपने विकास की दृष्टि से लगभग उतना ही पुराना है जितना मानव की दार्शनिक विचारधारा के विकास का इतिहास है। व्यवहारिक रूप से तथा वैज्ञानिक विकास की दृष्टि से इसका आरम्भ द्वितीय महायुद्ध के पश्चात ही हुआ है। जिस प्रकार सामान्य मनोविज्ञान को एक वैज्ञानिक मनोविज्ञान के रूप में भौतिक विज्ञानों तथा जीवन विज्ञानों की नई खोजों ने विशेष योगदान दिया है उसी प्रकार नैदानिक मनोविज्ञान के वैज्ञानिक विकास में मनोभौतिक प्रयोगों तथा मनोरोग संबंधी खोजों का योगदान रहा है। इसके अलावा नैदानिक मनोविज्ञान के विकास में प्रशासनिक, औद्योगिक, शैक्षिक, व्यावसायिक क्षेत्रों की समस्याओं तथा आवश्यकताओं के मूल्यांकन और उनके समाधान सम्बन्धी कार्यक्रमों ने भी विशिष्ट भूमिका अदा की है।

नैदानिक मनोविज्ञान का आरम्भ 1896 में यू0 एस0 ए0 के पेन्सिलवानिया विश्वविद्यालय में विटमर के द्वारा किया गया। इस अवधि में नैदानिक मनोविज्ञान का मुख्य लक्ष्य स्कूल बालकों की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करके उनका समाधान करना था। 1906 में मौटर्न प्रिन्स ने जर्नल ऑफ एबनॉर्मल साइकोलॉजी का प्रकाशन शुरू किया। 1907 में नैदानिक मनोविज्ञान का पहला जर्नल प्रकाशित किया गया जिसका नाम फ्री साइकोलॉजिकल क्लिनिक था। इस जर्नल में नैदानिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में हुए शोधों एवं पाए गए तथ्यों का प्रकाशन होता था। 1909 में जे0वी0 माइजर ने मिनसोटा विश्वविद्यालय में मानसिक विकास का एक उपचारगृह खोला। 1909 में हीली द्वारा शिकागो में “जुभेनाइल साइकोपैथिक इंस्टीच्यूट” की स्थापना की गयी। 1919 में अमेरिकन मनोवैज्ञानिक संघ के अन्तर्गत नैदानिक मनोविज्ञान का एक अलग विभाग जिसे डिवीजन संख्या 12 कहा गया, की स्थापना की गयी। 1919 में APA के क्लिनिकल साइकोलॉजी सम्भाग की स्थापना हुई। इसमें APA नैदानिक विभाग ने नैदानिक मनोवैज्ञानिकों के प्रशिक्षण के लिये एक कमेटी का संगठन किया।

1935 में नैदानिक मनोविज्ञान की एक नई परिभाषा भी दी जो इस प्रकार थी, “नैदानिक मनोविज्ञान वह कला एवं तकनीकी है जो मानव के समायोजन समस्याओं का अध्ययन करता है।”

जेम्स मैककीन कैटेल द्वारा 1921 में दी साइकोलॉजिकल कॉरपोरेशन की स्थापना की गई, इसका मुख्य कार्य मनोविज्ञान परीक्षणों को प्रकाशित करना तथा उनकी उपयोगिताओं को बताना था। द्वितीय विश्वयुद्ध में नैदानिक मनोविज्ञान को एक पेशे के रूप में विकसित होने में काफी मदद मिली। इस विश्वयुद्ध में नैदानिक मनोवैज्ञानिक ने अमेरिकन सरकार को सैनिक सेवा में सांवेगिक रूप से अस्थिर लोगों का चयन करने में अपने विशेष मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के माध्यम से काफी मदद की।

प्रथम विश्वयुद्ध और द्वितीय विश्वयुद्ध के बीच की अवधि में नैदानिक मनोविज्ञान की प्रगति होती गई। इस समय अनेक मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का विकास हुआ जैसे- बुद्धि परीक्षण, अभिवृत्ति परीक्षण आदि। 1946 में नैदानिक मनोविज्ञान की लोकप्रियता बहुत बढ़ गई थी और यह एक व्यवसाय के रूप में स्थापित हो गया था। अब नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की मांग भी लगातार बढ़ रही थी। 1960 में नैदानिक मनोविज्ञान की प्रथम शोध पत्रिका “जर्नल ऑफ एबनॉर्मल एण्ड सोशल साइकोलॉजी” प्रकाशित हुई। इस समय फ्रांस में सम्मोहन विधि के द्वारा मानसिक रोगों का उपचार किया जाता था। फ्राइड ने भी इसी समय मनोविश्लेषण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था जो व्यक्तित्व विकास में सहायक हो रहा था। 1963 में अधिकतर शोध उपाधि नैदानिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में ही मिली। इसके बाद नैदानिक मनोवैज्ञानिकों के कार्यों का महत्व औद्योगिक, शैक्षिक, व्यावसायिक आदि क्षेत्रों में भी होने लगा। इसके साथ ही नैदानिक मनोविज्ञान की भूमिकायें बाल निर्देशन, मानसिक चिकित्सालयों, विद्यालयों, बाल सुधार गृहों में भी बढ़ने लगी।

1966 में ब्रिटिश साइकोलॉजिकल सोसाइटी की स्थापना हुई जिसका मुख्य उद्देश्य नैदानिक मनोवैज्ञानिकों के कार्यों को बढ़ावा देना था। 1960 से 1970 के दशक में नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की संख्या में वृद्धि हुई।

1968 में इलिनोइस विश्वविद्यालय द्वारा ‘डॉक्टर ऑफ साइकोलॉजी’ की उपाधि दी जाने लगी। यह उपाधि उन नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को दी जाती है, जिनमें नैदानिक कौशलता अधिक थी अर्थात् जो नैदानिक कार्यों में विशेष रूचि रखते थे। इस प्रकार से नैदानिक मनोविज्ञान निरन्तर विकास एवं प्रगति की ओर अग्रसर हुआ।

### भारतवर्ष में नैदानिक मनोविज्ञान का विकास-

प्राचीन काल में भी नैदानिक मनोविज्ञान का अस्तित्व था। उस समय कुछ ऐसे तथ्य थे जो आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञान में हैं जैसे- मानसिक विकृति के प्रकार एवं उपचार आदि। भारतीय संस्कृति में चार तरह के वेद हैं-

#### (i ऋग्वेद (ii यजुर्वेद (iii सामवेद (iv अथर्ववेद

इसमें अथर्ववेद में मानसिक रोगों एवं उनके उपचार को बताया गया है। इस वेद के अनुसार मानव व्यक्तित्व का संतुलन शरीर में उत्पन्न होने वाले तीन कारयर्सो के द्वारा होता है- (i वात (ii कफ (iii पित्त। यदि शरीर में किसी भी कारण से इन तीनों में से कोई भी ज्यादा या कम हो जाता है तो शारीरिक संतुलन बिगड़ जाता है। यदि ये स्थिति लम्बे समय तक बनी रहती है तो इसके कारण अनेक शारीरिक परेशानियाँ उत्पन्न हो सकती हैं और आगे चलकर मानसिक विकृतियों का रूप ले सकती हैं। प्राचीन काल में एक व्यक्ति को इन विकृतियों से मुक्त करने के लिये मुख्य विधियाँ - तंत्र विद्या, हवन, भूत विद्या, जप, तप, व्रत, पूजा, ध्यान, ज्ञान आदि प्रमुख थीं। जिन रोगियों को इन विधियों से लाभ नहीं होता था उन्हें किसी धार्मिक स्थान पर ले जाया जाता था।

भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही मानव व्यक्तित्व के उत्थान एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिये योगदर्शन तथा योग अभ्यास का प्रचलन रहा है। 1915 में भारतवर्ष में नैदानिक मनोविज्ञान का शुभारम्भ हुआ। 1919 में कलकत्ता के लम्बुनी पार्क मानसिक चिकित्सालय में साइको-एनालैटिक सोसाइटी की स्थापना हुई। 1938 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग में मनोविज्ञान की एक शाखा स्थापित हुई। इसमें मनोविज्ञान को विज्ञान संकाय में रखा गया। यहाँ पर मनावैज्ञानिक परीक्षण बनाए जाते थे तथा छात्रों को व्यावसायिक निर्देशन दिया जाता था। 1924 में मैसूर विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान की पढ़ाई शुरू हुई तथा भारतीय मनोविज्ञान संघ की स्थापना हुई। 1943 में “इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ साइकोलॉजी एण्ड मेन्टल हाइजिन” की स्थापना की गई। इसके अन्तर्गत नैदानिक सेवाएँ, सर्वे, जनशिक्षा तथा शोध आदि कार्य किये जाते हैं। भारत में अनेक ऐसे संस्थानों की स्थापना हुई जिनके अन्तर्गत मनोरोगी सामाजिक कार्यकर्ता तथा नैदानिक मनोविज्ञान में डिप्लोमा दिया जाता है। कुछ संस्थानों में परामर्श तथा निर्देशन में डिप्लोमा प्रदान किये जाते हैं।

1969 में बैंगलोर में भारतीय नैदानिक मनोवैज्ञानिकों ने अखिल भारतीय संघ खोला। इसके अन्तर्गत मनोचिकित्सा, मनोनिदान, परामर्श, निर्देशन आदि क्षेत्रों में शोध कार्य तथा पठन-पाठन से सम्बन्धित कार्यों की नवीन जानकारियाँ तथा सुझाव दिये जाते हैं।

पाश्चात्य देशों में तो नैदानिक मनोविज्ञान में तो बहुत तरक्की हुई है परन्तु भारतवर्ष में अभी इसका पूर्ण विकास नहीं हो पाया है और नैदानिक मनोविज्ञान का एक व्यवसाय के रूप में अधूरा विकास हुआ है क्योंकि इस देश में मानसिक स्वास्थ्य आन्दोलन अभी पूरा नहीं हो सका है।

### 1.5 नैदानिक मनोविज्ञानिकों की विभिन्न गतिविधियाँ -

#### 1.5.1. मानसिक चिकित्सालयों में -

मानसिक चिकित्सालयों में नैदानिक मनोविज्ञानिकों द्वारा अनेक गतिविधियाँ होती हैं। वे यहाँ पर मनोवैज्ञानिक कार्यक्रमों को चलाते हैं जिसमें रोगियों के लिये बहुत सी मनोवैज्ञानिक चिकित्सा प्रविधियों का प्रयोग करते हैं। मानसिक चिकित्सा में कुछ नए प्रशिक्षणार्थी आते हैं जो इस रोग से संबंधित प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। नैदानिक मनोवैज्ञानिक इन नए प्रशिक्षणार्थियों को भी प्रशिक्षण देते हैं।

मानसिक चिकित्सालयों में नैदानिक मनोवैज्ञानिकों का सबसे प्रमुख कार्य मनश्चिकित्सा या मनोपचार प्रदान करना है। नैदानिक मनोविज्ञान मनश्चिकित्सा की जिन प्रविधियों का प्रयोग मानसिक चिकित्सालय में अधिक करते हैं, उनमें मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा, व्यवहार चिकित्सा, रोगी-केन्द्रित चिकित्सा, सामूहिक चिकित्सा आदि मुख्य हैं। वे मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के आधार पर रोगियों को कुछ सलाह भी देते हैं जो उनके भविष्य के लिए लाभप्रद होती हैं। नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा इस चिकित्सालयों में कई तरह के शोध कार्य किये जाते हैं जिनमें विभिन्न तरह के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का निर्माण, व्यक्तित्व के सिद्धान्त का विकास, चिकित्सीय प्रविधियों का मूल्यांकन आदि महत्वपूर्ण हैं। मानसिक चिकित्सालयों में मानसिक रोगों के निदान तथा उपचार के लिए विशेष प्रशिक्षण भी दिया जाता है। इसमें नैदानिक मनोविज्ञान में एम0ए0 करने वाले छात्रों को विशेष प्रशिक्षण दिया जाता है। मनोवैज्ञानिकों के इन मानसिक अस्पतालों एवं उपचार-गृह में कई तरह के प्रशासनिक पद होते हैं। मुख्य मनोवैज्ञानिक का पद, विश्वविद्यालय विभाग के अध्यक्ष के पद के समान होता है। इसमें उन्हें प्रशासनिक कार्य करना पड़ता है। जिसके अन्तर्गत रिकार्ड का ठीक ढंग से रख-रखाव, आन्तरिक रिपोर्ट तैयार किया जाना, विभिन्न शोध प्रोजेक्ट का समय के अनुरूप पूरा किया जाना और मानसिक अस्पताल में कर्मचारियों द्वारा अनुशासन का पालन करना आदि सम्मिलित होते हैं।

#### 1.5.2. विद्यालयों में-

विद्यालयों में कई ऐसे बालक होते हैं जिनकी कुछ संवेगात्मक समस्याएँ होती हैं, जिनसे वे स्कूल के वातावरण में ठीक से समायोजन नहीं कर पाते हैं और विद्यालय में शिक्षक व प्रशासन के लिए नई समस्याएँ उत्पन्न करते हैं। नैदानिक मनोवैज्ञानिक स्कूल में जाकर ऐसे बच्चों से मिलकर पहले उनकी समस्याओं की पहचान करते हैं, उसके बाद उसका उपयुक्त निदान करते हैं तथा फिर उसका उपचार करते हैं। फेयर्स (1984) के अनुसार नैदानिक मनोवैज्ञानिक ऐसे बच्चों को बुद्धि तथा अभिक्षमता को मापते हैं और उसके अनुरूप उन्हें शिक्षा देने की सिफारिश शिक्षकों को देते हैं। स्कूल में नैदानिक मनोवैज्ञानिक सिर्फ समस्यात्मक बालकों की ओर ही अपना ध्यान नहीं देते हैं बल्कि अन्य सामान्य बच्चों की अभिक्षमताओं एवं अभिरूचियों का भी अध्ययन करते हैं। वे बच्चों की

अभिक्षमताओं एवं अभिरूचियों को मापकर वे उन्हें उन विषयों या पाठों को पढ़ने की सलाह देते हैं जिनमें उनकी रुचि होती है। कभी-कभी नैदानिक मनोवैज्ञानिक स्कूल में अपना विशेष कैम्प भी लगाते हैं। इस तरह के कैम्प में नैदानिक मनोवैज्ञानिक बालकों की समस्या को सुनते हैं तथा कुछ परामर्श सत्र रखते हैं जिससे छात्र-छात्रायें अपनी समस्यायें बताते हैं और उसका निदान मनोवैज्ञानिकों द्वारा करवाते हैं। इससे उनमें आत्मविश्वास की भावना बढ़ती है।

### 1.5.3. बाल मार्गदर्शन उपचारगृह में -

बाल मार्गदर्शन उपचार-गृह एक ऐसा उपचार-गृह होता है जहाँ उन बच्चों को भेजा जाता है जिनमें शैक्षिक, मनोवैज्ञानिक तथा अन्य दूसरी तरह की समायोजन संबंधी-समस्याएँ काफी बढ़ जाती हैं, ऐसे उपचार-गृह में स्कूल दुर्भिक्ष, मल-मूत्र त्याग से संबंधित समस्या जैसे असंयतमूत्रता आदि से ग्रस्त बालक उपचार के लिए अधिक पहुंचते हैं। उपचार गृह में लाये गये बच्चों की समस्याओं का मूल्यांकन नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया जाता है। इस कार्य को करने के लिए नैदानिक मनोवैज्ञानिक विभिन्न तरह के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों जैसे बुद्धिपरीक्षण, व्यक्तित्व परीक्षण, अभिक्षमता परीक्षण तथा अभिरूचि परीक्षण का प्रयोग करते हैं। इन परीक्षणों के द्वारा वे बच्चों की बुद्धि, व्यक्तित्व, अभिरूचि तथा अभिक्षमता के बारे में पता लगाकर किसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं। इस तरह मिली सूचनाओं द्वारा अंत में वे बच्चों की समस्याओं का वर्गीकरण करते हैं जिनसे उन्हें निदान करने तथा फिर उनका उचित उपचार एवं मार्गदर्शन करने में अधिक आसानी होती है। नैदानिक मनोवैज्ञानिक बाल मार्गदर्शन उपचार-गृह में लाये बच्चों के उपचार करने के बाद कुछ ऐसे सुझाव उनके माता पिता को देते हैं जिनसे बच्चों को घर पर भी सही मार्गदर्शन मिल जाता है।

### 1.5.4. व्यवसायिक मार्गदर्शन केन्द्रों में-

व्यवसायिक मार्गदर्शन केन्द्र में नैदानिक मनोवैज्ञानिक का एक कार्य रोजगार परामर्शदाता के रूप में भी होता है। इन केन्द्रों में व्यक्तियों को उचित व्यवसाय का चयन करने के बारे में सलाह दी जाती है। पहले नैदानिक मनोवैज्ञानिक ऐसे लोगों की अभिक्षमता, अभिरूचि एवं समायोजनशीलता का मापन करते हैं। उसके बाद उनकी उचित व्यवसायिक जीवन-वृत्ति का चयन करने में मदद करते हैं। इसके दो फायदे बतलाये गए हैं- 1. पहला तो यह कि व्यक्ति इसके बाद जिस व्यवसाय में जाता है, उससे कार्य-संतुष्टि अधिक होती है तथा उसका कार्य-निष्पादन अधिक श्रेष्ठ होता है। 2. दूसरा फायदा यह बतलाया गया है कि ऐसे लोग आगे चलकर एक सफल व्यवसायिक होते हैं और समाज के विकास में वे अच्छा योगदान दे पाते हैं।

आधुनिक समय में महाविद्यालयों में इस तरह के परामर्श केन्द्र खोले जा रहे हैं। इनके माध्यम से छात्र/छात्रायें अपने भावी जीवन के संबंध में सही व्यवसाय या कार्य क्षेत्र का चयन कर पाते हैं। महाविद्यालयों में नैदानिक मनोवैज्ञानिक की गतिविधियाँ एक परामर्शदाता के रूप में होती हैं। वह छात्रों की रुचियों, अभिक्षमता तथा बुद्धि स्तर का परीक्षण करता है। इसके आधार पर वह उनका सही मार्गदर्शन करता है तथा सही व्यवसाय चुनने में मदद करता है।

### 1.5.5. बन्दीगृहों एवं सुधारगृहों में -

नैदानिक मनोवैज्ञानिक जेल में जाकर अपराधी व्यवहार के कारणों को ढूँढते हैं और उन्हें दूर करने के उपाय करते हैं। वे कैदियों को सामूहिक रूप से देखते हैं और इनके आधार पर उनके लिये शिक्षा संबंधी तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण के कार्यक्रम आयोजित करते हैं। बन्दीगृह में नैदानिक मनोवैज्ञानिक की मुख्य गतिविधि कैदियों के जीवन में सुधार करना और नया जीवन देना है। अपराधी व्यवहार अधिकतर प्रतिकूल वातावरण के मिलने से पनपता है तथा अनुकूल वातावरण मिलने से घटता है या नियमित हो जाता है। इसलिये इन अपराधियों को अनुकूल एवं मानवीय वातावरण प्रदान करने की कोशिश की जाती है।

सुधारघरों में भी नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। इन घरों में अपराधियों को विशेषकर किशोर अपराधियों के उस उद्देश्य से रखा जाता है कि उनका उचित मार्गदर्शन करके उन्हें फिर से एक समायोजित जिन्दगी जीने के लायक बनाया जा सके। यहाँ पर भी नैदानिक मनोवैज्ञानिक अपनी विशेष सेवा के माध्यम से महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। पुनर्वास के ख्याल से नैदानिक मनोवैज्ञानिक ऐसे अपराधियों का एक केस इतिहास तैयार करते हैं और उसके आधार पर वे उनकी प्रमुख समस्याओं को पहचानते हैं और उपचार करते हैं। वे अपराधियों को उचित परामर्श देते हैं ताकि वे भविष्य में सही समायोजन कर सकें और सामान्य जीवन बिता सकें।

### 1.5.6. संगठनों एवं उद्योगों में -

नैदानिक मनोविज्ञानिकों की भूमिका उद्योग तथा अन्य संगठनों में भी आजकल बढ़ती जा रही है। किसी भी उद्योग तथा संगठन की सबसे प्रमुख शक्ति मानव शक्ति होती है। उद्योगों एवं संगठनों में जो कर्मचारी कार्य करते हैं उनकी अनेक समस्याएँ होती हैं जिनके कारण कर्मचारियों में समायोजन संबंधी तरह-तरह की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। धीरे-धीरे इन समस्याओं का कुप्रभाव कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। नैदानिक मनोवैज्ञानिक उद्योगों में परामर्श सेवाएँ करते हैं। अपने उद्योगों एवं संगठनों के कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य की जाँच तथा उन्नत बनाने के लिए नैदानिक मनोवैज्ञानिकों से विशेष परामर्श माँगा जाता है। नैदानिक मनोवैज्ञानिक एक सामान्य परामर्श देते हैं जिनसे उद्योगपतियों तथा व्यवस्थापकों को इन कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के लिए विशेष सेवा प्रदान करने में मदद मिलती है। कभी-कभी इस सामान्य परामर्श के अलावा नैदानिक मनोवैज्ञानिकों से व्यक्ति विशेष के लिए भी उनकी परामर्श सेवाएँ ली जाती हैं। नैदानिक मनोवैज्ञानिक उद्योगों में जाकर शिविर भी लगाते हैं जहाँ कर्मचारियों का एक-एक करके व्यक्तिगत रूप से अलग-अलग उनका मानसिक स्वास्थ्य परीक्षण किया जाता है और उन्हें परामर्श दिया जाता है।

उद्योग में नैदानिक मनोवैज्ञानिक विभिन्न नैदानिक परीक्षणों का उपयोग करके कर्मचारियों की अभिरूचि, बुद्धि एवं अभिक्षमता आदि का मूल्यांकन करते हैं तथा उसके अनुसार उन्हें कार्यभार देने का उचित सिफारिश व्यवस्थापकों एवं कार्यपालकों को करते हैं। इससे उनमें समायोजनशीलता की क्षमता बढ़ती है और अन्त में उत्पादन पर काफी अनुकूल प्रभाव पड़ता है। संगठनों तथा उद्योग में नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को शोध कार्य भी करना पड़ता है जिससे उन्हें कर्मचारियों के भिन्न-भिन्न समस्याओं से संबंधित अनेक तरह के आँकड़े मिल जाते

है जिनके आधार पर उन्हें शोध करने में आगे काफी मदद मिलती है। अपने शोधकार्य के माध्यम से वे नये-नये नियमों एवं तथ्यों की खोज कर सकते हैं। बाद में यह तथ्य कर्मचारियों के समायोजन तथा मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का समाधान करने में एक आधार बनते हैं।

### 1.5.7. मादक द्रव्य निर्मूलन केन्द्रों में-

आधुनिक समय में मादक द्रव्यों का सेवन लगातार बढ़ता जा रहा है। इनका सेवन समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों में बढ़ रहा है। खासकर युवावर्ग इनकी चपेट में आ रहा है। इस नशे की लत से छुटकारा पाने के लिये मादक द्रव्य निर्मूलन केन्द्र खोले गये हैं जिनमें उन व्यक्तियों को लाया जाता है जिनमें नशे की लत बहुत गंभीर समस्या हो जाती है। इन केन्द्रों के नैदानिक मनोवैज्ञानिक वैयक्तिक चिकित्सा, सामूहिक चिकित्सा तथा पारिवारिक परामर्शदाता के रूप में गतिविधियाँ करते हैं।

## 1.6 नैदानिक मनोविज्ञान तथा अन्य सम्बन्धित क्षेत्र -

नैदानिक मनोविज्ञान मनोविज्ञान की एक प्रयुक्त शाखा है। मनोविज्ञान की इस शाखा का अन्य क्षेत्रों के साथ भी गहरा सम्बन्ध है। नैदानिक मनोविज्ञान का संबंध अन्य क्षेत्रों के साथ भी है जैसे-मनोरोगविज्ञान, मनोविश्लेषण, मनोरोगी सामाजिक कार्य, परामर्श नैदानिक मनोविज्ञान, असामान्य मनोविज्ञान आदि। नैदानिक मनोविज्ञान के विषय क्षेत्र से संबंधित कुछ अन्य क्षेत्र भी हैं जिनकी विषय सामग्री कुछ हद तक इससे मिलती जुलती है इनमें मुख्य हैं- निर्देशन।

### 1.6.1 परामर्श मनोविज्ञान के साथ संबंध -

नैदानिक मनोविज्ञान तथा परामर्श मनोविज्ञान दोनों ही एक दूसरे से संबंधित हैं। नैदानिक मनोविज्ञान के अर्न्तगत भी मानसिक रोगों का निदान एवं उपचार किया जाता है। परामर्श मनोविज्ञान वह क्षेत्र है जिसमें मनोवैज्ञानिक उन व्यक्तियों को सलाह या राय देते हैं जो प्रतिदिन की समायोजन की समस्याओं से जूझते हैं। इस सलाह को ही परामर्श कहा जाता है। नैदानिक मनोविज्ञान के अर्न्तगत मानसिक समस्याओं का निदान करके उनका उपचार विभिन्न विधियों द्वारा किया जाता है। परामर्श मनोविज्ञान में उन समस्याओं का समाधान किया जाता है जिनका स्वरूप कम गम्भीर तथा साधारण होता है जैसे- नींद न आना, मन उचाट होना, नाखून काटना आदि।

### 1.6.2 मनोरोगविज्ञान के साथ संबंध -

नैदानिक मनोविज्ञान मनोविज्ञान की एक शाखा है जबकि मनोरोगविज्ञान मनोविज्ञान की शाखा न होकर चिकित्सा विज्ञान की एक शाखा है परन्तु दोनों का एक ही अध्ययन केन्द्र है। दोनों के अर्न्तगत असामान्य व्यवहार के लक्षणों, कारणों आदि को समझकर उनका उपचार किया जाता है।

मनोरोगविज्ञान में चिकित्सक द्वारा मानसिक रोग का निदान एवं उपचार होता है। जबकि नैदानिक मनोविज्ञान में इन कार्यों के अलावा अनेक तरह के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का निर्माण भी होता है। इसके अर्न्तगत बुद्धि परीक्षण,

अभिक्षमता परीक्षण, अभिरूचि परीक्षण, व्यक्तित्व परीक्षण आदि आते हैं जिनका उपयोग मानसिक रोगों के उपचार में होता है।

मनोरोग विज्ञान चिकित्सा विज्ञान की एक शाखा है। इसे एम0 बी0 बी0 एस0 करने के बाद किया जाता है। इसे पूरा करने के बाद चिकित्सक को एम0 डी0 की डिग्री दी जाती है। इसमें चिकित्सक गम्भीर मानसिक रोगों का उपचार औषधियों के द्वारा करते हैं। इसके अलावा ये आघात चिकित्सा, मनोशल्य चिकित्सा का भी प्रयोग करते हैं। मनोरोग-विज्ञान में गंभीर मानसिक रोग जैसे मनोविदालिता, स्थिर-व्यामोह, द्विध्रुवीय विकृति जैसे रोगों का उपचार अधिक सफलतापूर्वक किया जाता है। नैदानिक मनोविज्ञान में साधारण मानसिक रोग जैसे सामान्यीकृत चिंता विकृति, दुर्भ्रंति, मनोग्रस्ति-बाध्यता स्नायुविकृति आदि का उपचार अधिक किया जाता है। मनोरोगविज्ञान का संबंध केवल मानसिक रोगों के निदान एवं उपचार से होता है परन्तु नैदानिक मनोविज्ञान का संबंध इन मानसिक रोगों के निदान एवं उपचार के अलावा समायोजन के विभिन्न तरह की समस्याओं का अध्ययन कर उनका समाधान करने से होता है।

### 1.6.3 मनोविश्लेषण के साथ संबंध -

मनोविश्लेषण पद का प्रतिपादन सिगमण्ड फ्रायड द्वारा किया गया। इस पद के निम्नलिखित अर्थ हैं-1. एक संप्रदाय 2. एक सिद्धान्त 3. मनोचिकित्सा की एक विधि

मनोविश्लेषण नैदानिक मनोविज्ञान के काफी नजदीक है। मनोविश्लेषण एक ऐसी मनोचिकित्सा की विधि है जिसमें रोगी के अचेतन में छिपी तनावयुक्त बातों की पहचान विशेष विधियों से करके उसके संवेगात्मक एवं व्यवहारात्मक विकृतियों का निदान एवं उपचार करने की कोशिश की जाती है। मनोविश्लेषक या जिसे विश्लेषक भी कहा जाता है, एक ऐसा मनश्चिकित्सक होता है जो मानसिक रोगों के निदान एवं उपचार में फ्रायड द्वारा प्रतिपादित विधियों एवं सिद्धान्तों का उपयोग करता है। मनोविश्लेषक को मनोरोगविज्ञान या मनोविज्ञान में उपाधि प्राप्त हो सकती है।

### 1.6.4 असामान्य मनोविज्ञान के साथ संबंध -

नैदानिक मनोविज्ञान का असामान्य मनोविज्ञान के साथ गहरा संबंध है। असामान्य मनोविज्ञान में असामान्य व्यवहारों को समझने, उनके लक्षण, कारणों एवं उपचार संबंधी नियम बनाये जाते हैं। नैदानिक मनोविज्ञान में ऐसे नियमों या सिद्धान्तों की व्यावहारिक उपयोगिता पर बल डाला जाता है और मानसिक रोगों का निदान तथा उपचार किया जाता है।

### 1.6.5 मनोरोगी सामाजिक कार्य के साथ संबंध -

इसके अर्न्तगत सामाजिक कार्यकर्ता आते हैं। ये मानसिक रोगों के उपचार एवं निदान का प्रशिक्षण भी लेते हैं। इन कार्यकर्ताओं की रुचि मानसिक रोगों से ग्रस्त व्यक्तियों की मदद करने में होती है। समाज में इन समस्याओं से जो व्यक्ति पीड़ित होते हैं ये कार्यकर्ता उनके घर जाकर सूचनाएं एकत्र करते हैं। इन लोगों के परिवार वालों को वे उचित मार्गदर्शन देते हैं तथा रोगी को मानसिक चिकित्सालय ले जाने के लिये प्रोत्साहित करते हैं। ये कार्यकर्ता

मानसिक रोगों के उपचार में रोगी, उसके परिवार तथा मानसिक चिकित्सालय के बीच एक कड़ी को कार्य करते हैं। ये रोगी की सामाजिक, आर्थिक तथा पारिवारिक समस्याओं की सूचनाएँ एकत्र करके चिकित्सकों को बताते हैं ताकि उस रोग का निदान व उपचार सम्भव हो सके।

### 1.6.6 निर्देशन मनोविज्ञान के साथ संबंध -

नैदानिक मनोविज्ञान का निर्देशन मनोविज्ञान के साथ भी संबंध है। दोनों में केन्द्र बिन्दु व्यक्ति होता है। निर्देशन वह क्रिया है जिसमें किसी समस्याग्रस्त व्यक्ति को सहायता प्रदान की जाती है जिससे वह स्वयं अपने निर्णय ले सके। इसके द्वारा व्यक्ति अपने व्यक्तित्व, क्षमता, योग्यता एवं मानसिक स्तर को समझ पाता है। व्यक्ति के जीवन में अनेक कठिनाइयों के कारण कई संवेगात्मक या भावात्मक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। ये समस्याएँ व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती हैं और उसमें मानसिक अशान्ति पैदा करती हैं। निर्देशन द्वारा इन समस्याओं का पता लगाया जाता है जो संवेगात्मक अस्थिरता पैदा करती हैं और नैदानिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत इन संवेगात्मक तथा मानसिक समस्याओं का निदान तथा उपचार किया जाता है।

### 1.7. असामान्य मनोविज्ञान एवं नैदानिक मनोविज्ञान में अन्तर

असामान्य मनोविज्ञान एवं नैदानिक मनोविज्ञान दोनों ही मनोविज्ञान की शाखाएँ हैं जिनका असामान्य मनोविज्ञान में असमायोजित या विकृति व्यवहार का अध्ययन किया जाता है जबकि नैदानिक मनोविज्ञान में इन व्यवहारों का निदान एवं उपचार किया जाता है। इन दोनों विज्ञानों में निम्नलिखित अन्तर है -

1. असामान्य मनोविज्ञान में असामान्य व्यवहारों, उनके कारणों, लक्षणों एवं उपचारों का अध्ययन किया जाता है। नैदानिक मनोविज्ञान में एक रोगी के असामान्यता के कारणों एवं लक्षणों को समझकर उसका उपचार किया जाता है, साथ ही एक सामान्य व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन भी किया जाता है।
2. असामान्य मनोविज्ञान का सामान्य दृष्टिकोण होता है अर्थात् किसी रोग के कारणों, लक्षणों एवं उपचार का सामान्य ढंग से वर्णन करता है। नैदानिक मनोविज्ञान का वैयक्तिक दृष्टिकोण होता है अर्थात् व्यक्ति विशेष के रोग को उसकी पृष्ठभूमि व लक्षण के आधार पर समझकर उसे उपयुक्त मनोचिकित्सा दी जाती है।
3. असामान्य मनोविज्ञान केवल मनोविज्ञान की एक रूप में जाना जाता है। इसका पेशे या व्यवसाय के रूप में विकास नहीं हुआ है। नैदानिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की शाखा होने के साथ-साथ पेशे या व्यवसाय के रूप में जाना जाता है क्योंकि इसके अन्तर्गत विभिन्न उपचार किये जाते हैं।
4. असामान्य मनोविज्ञान विभिन्न मानसिक विकारों की सैद्धान्तिक रूप से व्याख्या करता है। नैदानिक मनोविज्ञान विभिन्न मानसिक विकारों की व्यावहारिक रूप से व्याख्या करने के साथ-साथ उनका व्यावहारिक समाधान भी करता है।
5. असामान्य मनोविज्ञान के अन्तर्गत इस क्षेत्र के विशेषज्ञों को कोई प्रशिक्षण नहीं दिया जाता है। नैदानिक मनोविज्ञान में उपचार विधियों में निपुणता हासिल करने के लिये विशेषज्ञों को प्रशिक्षण दिया जाता है।

6. असामान्य मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक सैद्धान्तिक शाखा है क्योंकि इसके अर्न्तगत केवल असामान्य व्यवहारों को समझने, उनके लक्षण, कारण एवं उपचार संबंधी नियम या सिद्धान्त ही बनाये जाते हैं। नैदानिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक प्रयुक्त शाखा है क्योंकि इसके अर्न्तगत ऐसे नियमों या सिद्धान्तों की व्यावहारिक उपयोगिताओं पर बल डाला जाता है।

### अभ्यास प्रश्न -

- 1) नैदानिक मनोविज्ञान का सम्बन्ध मानसिक रोगों के वर्णन.....एवं पूर्वमान से होता है।
- 2) सिगमण्ड फ्रायड ने नैदानिक मनोविज्ञान के.....पक्ष पर सबसे अधिक बल डाला।
- 3) प्रथम मनोवैज्ञानिक उपचारगृह.....ने सन्.....में खोला।
- 4) भारतीय मनोविज्ञान संघ की स्थापना सन्.....में हुई।
- 5) नैदानिक मनोवैज्ञानिक व्यक्ति की अभिक्षमता.....एवं.....का मापन करती है।
- 6) असामान्य मनोविज्ञान.....व्यवहारों का अध्ययन करता है।

### 1.8 सार संक्षेप -

नैदानिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक ऐसी शाखा है, जिसका सम्बन्ध मानसिक रोगों के वर्णन, वर्गीकरण, निदान एवं पूर्वानुमान से होता है।

- i) इसमें सांवेगिक एवं व्यवहारात्मक समस्याओं के निदान एवं उपचार पर बल डाला जाता है।
- ii) लाइटर विटमर ने 1816 में पेन्सिलवानिया विश्वविद्यालय में पहला मनोवैज्ञानिक उपचार गृह खोला और इस शाखा को नैदानिक मनोविज्ञान का नाम दिया।
- iii) भारत में प्राचीन काल में भी नैदानिक मनोविज्ञान का अस्तित्व था। अथर्ववेद में मानसिक रोगों एवं उनके उपचार को बताया गया है।
- iv) 1915 में भारतवर्ष में नैदानिक मनोविज्ञान का प्रारम्भ हुआ।
- v) नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की विभिन्न क्षेत्रों में जैसे-मानसिक चिकित्सालयों, विद्यालयों, सुधारगृहों, व्यवसायिक केन्द्रों आदि में विभिन्न गतिविधियाँ रहती हैं।

vi) नैदानिक मनोविज्ञान का संबंध मनोरोग विज्ञान, मनोविश्लेषण, परामर्श मनोविज्ञान, असामान्य मनोविज्ञान आदि क्षेत्रों के साथ भी है। उन क्षेत्रों की विषय सामग्री तथा कार्यविधि नैदानिक मनोविज्ञान के साथ काफी हद तक संबंधित है।

vii) नैदानिक मनोवैज्ञानिक व्यक्ति विशेष की समस्याओं को समझकर उनका निदान व उपचार करते हैं साथ ही निर्देशन का कार्य भी करते हैं।

viii) नैदानिक मनोविज्ञान तथा असामान्य मनोविज्ञान दोनों ही मनोविज्ञान की शाखाएं हैं परन्तु फिर भी दोनों में सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक अंतर होते हैं।

### 1.9 शब्दावली -

1. निदान - किसी रोग के विशेष लक्षणों की पूरी जानकारी प्राप्त करना और उसके जैविक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक कारणों का पता लगाना।

2. मनश्चिकित्सा - ऐसी मनोवैज्ञानिक विधियाँ जिनके द्वारा मानसिक रोगों का निदान तथा उपचार किया जाता है।

### 1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

- |                             |                     |
|-----------------------------|---------------------|
| 1. वर्गीकरण, निदान          | 2. व्यक्तित्व गतिकी |
| 3. लाइट विटमर, 1896         | 4. 1984             |
| 5. अभिरूचि एवं समायोजनशीलता | 6. कुसमायोजित       |

### 1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह-मोतीलाल बनारसीदास
2. आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञान- डा०एच०के० कपिल-हर प्रसाद भार्गव

### 1.12 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. नैदानिक मनोविज्ञान को परिभाषित करिये तथा उसके विकास पर प्रकाश डालिये।
2. नैदानिक मनोविज्ञान की प्रकृति समझाइये तथा इसके अन्य सम्बन्धित क्षेत्रों का वर्णन करिये।
3. विभिन्न क्षेत्रों में नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की गतिविधियों पर सोदाहरण प्रकाश डालिये।
4. नैदानिक मनोविज्ञान भविष्य में कहाँ तक मनोविज्ञान की एक उपयोगी शाखा सिद्ध होगी, कारण सहित उत्तर बताइये।
5. नैदानिक मनोविज्ञान क्या है? असामान्य मनोविज्ञान एवं नैदानिक मनोविज्ञान में अन्तर स्पष्ट करिये।

## इकाई 2. व्यावसायिक प्रशिक्षण, विनियमन एवं नैतिक नियम (Professional Training, Regulation and Professional Ethics)

### इकाई संरचना

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 वृत्तिक या व्यावसायिक प्रशिक्षण
  - 2.3.1 वृत्तिक प्रशिक्षण का अर्थ
  - 2.3.2 वृत्तिक प्रशिक्षण का इतिहास
  - 2.3.3 वृत्तिक प्रशिक्षण के सिद्धान्त
  - 2.3.4 वृत्तिक प्रशिक्षण के वैकल्पिक मॉडल
- 2.4 वृत्तिक या व्यावसायिक नियमन
  - 2.4.1 प्रमाणन
  - 2.4.2 अनुज्ञप्ति
  - 2.4.3 ABEPP/ ABPP
- 2.5 वृत्तिक या व्यावसायिक नीतिशास्त्र
  - 2.5.1 वृत्तिक या व्यावसायिक नीतिशास्त्र के नियम
- 2.6 सारांश
- 2.7 शब्दावली
- 2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

### 2.1 प्रस्तावना

नैदानिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक ऐसी प्रयुक्त और लोकप्रिय शाखा है जिसमें सबसे ज्यादा मनोवैज्ञानिक कार्यरत है। इसका विकास भी शीघ्रता के साथ हुआ है और आज नैदानिक मनोविज्ञान एक प्रमुख व्यवसाय के रूप में पूरे संसार में काम कर रहा है। इसमें करीब 83% नैदानिक मनोवैज्ञानिक मनश्चिकित्सा के क्षेत्र में, 73.6% निदान एवं मूल्यांकन में, 61% शिक्षण में, 52.4% शोध में, तथा 67.4% परामर्श के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। इस प्रकार आज के युग में नैदानिक मनोविज्ञान एक व्यवसाय या पेशे के रूप में अपना स्थान बना चुका है परन्तु फिर भी इस पेशे से सम्बन्धित कई समस्याएँ भी हैं।

प्रस्तुत इकाई में नैदानिक मनोविज्ञान की एक पेशे या व्यवसाय से सम्बन्धित जो समस्याएँ हैं, उनके बारे में अध्ययन करके जान सकेंगे।

## 2.2 उद्देश्य

इस इकाई के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

नैदानिक मनोविज्ञान की एक पेशे या व्यवसाय से सम्बन्धित प्रमुख समस्याओं को जान सके।

## 2.3 वृत्तिक प्रशिक्षण, वृत्तिक नियमन एवं वृत्तिक नीतिशास्त्र -

आधुनिक समय में नैदानिक मनोविज्ञान एक व्यवसाय/पेशा के रूप में काफी अधिक विकसित हुआ है। ये मनोविज्ञान की एक प्रमुख लोकप्रिय शाखा है। जब मनोविज्ञान को पेशे के रूप में सफलता मिलने लगी तो अधिक-से-अधिक मनोवैज्ञानिकों ने इसमें रूचि लेना प्रारंभ कर दिया। संसार के अन्य देशों में भी नैदानिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में सबसे अधिक संख्या में मनोवैज्ञानिक कार्यरत हैं। नैदानिक मनोवैज्ञानिक अपना चिकित्सा संबंधी कार्य किसी उपचारगृह या मानसिक चिकित्सालयों में करते हैं।

इस समय अमेरिका में लगभग 120000 मनोवैज्ञानिक हैं जिसमें लगभग 80000 नैदानिक मनोवैज्ञानिक हैं। आधुनिक समय में नैदानिक मनोविज्ञान एक प्रमुख व्यवसाय के रूप में उभरकर सामने आया है। आज जब नैदानिक मनोविज्ञान लगभग पूरे संसार में एक पेशे या व्यवसाय के रूप में स्थान पा रहा है, तो यह आवश्यक है कि उसके इस पहलू से संबंधित कुछ समस्याएँ भी होंगी। इन समस्याओं को निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया गया है-

- (1) वृत्तिक या व्यावसायिक प्रशिक्षण
- (2) वृत्तिक या व्यावसायिक या पेशावर नियमन
- (3) वृत्तिक या व्यावसायिक या पेशावर नीतिशास्त्र

### 2.3.1 वृत्तिक या व्यावसायिक प्रशिक्षण का अर्थ -

व्यावसायिक प्रशिक्षण का सामान्य अर्थ व्यवसाय की आवश्यकताओं, समस्याओं तथा कार्यविधियों से व्यावसायिक को अवगत कराना होता है। नैदानिक मनोविज्ञान में व्यावसायिक प्रशिक्षण से तात्पर्य नैदानिक मनोवैज्ञानिक को नैदानिक मनोविज्ञान से संबंधित क्षेत्रों का इस तरह से ज्ञान देना है ताकि वे रोगी की आवश्यकताओं, समस्याओं, उनके उपचार की प्रविधियों एवं शोध प्रविधियों के बारे में भली-भाँति परिचित हो जाय। एक प्रशिक्षित नैदानिक मनोवैज्ञानिक रोगी की समस्याओं की पहचान, वर्गीकरण तथा उपचार वैज्ञानिक ढंग से करता है। इस तरह से नैदानिक मनोविज्ञान में व्यवसायिक प्रशिक्षण के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. प्रशिक्षु नैदानिक मनोवैज्ञानिक को नैदानिक समस्याओं से परिचित कराना।
2. नैदानिक समस्याओं के वर्गीकरण को समझना।
3. निदानसूचक विधियों के बारे में ज्ञान देना।
4. विभिन्न शोध विधियों के बारे में ज्ञान देना।
5. व्यक्तित्व सिद्धान्तों के बारे में ज्ञान देना।
6. चिकित्सा की परिस्थितियों से परिचित कराना।

### 2.3.2 वृत्तिक प्रशिक्षण का इतिहास -

20 वीं शताब्दी के प्रथम 40 वर्षों में इस क्षेत्र में नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को दिये जाने वाले उच्चतर प्रशिक्षण की प्रगति बहुत ही धीमी थी। 1930 तथा 1940 वाले दशक में अमेरिकन मनोवैज्ञानिक संघ ने इस तरह के प्रशिक्षण को औपचारिक बनाने का प्रयास किया परन्तु यह प्रयास अधिक सफल नहीं हो पाया।

डेविड शैको ने नैदानिक प्रशिक्षण के विकास को ठीक ढंग से सफल करने में सबसे महत्वपूर्ण योगदान दिया, जो बहुत दिनों तक मासासुटस के वॉरसेस्टर स्टेट अस्पताल में मुख्य मनोवैज्ञानिक के रूप में कार्य करते रहे और बाद में नेशनल इन्स्टीच्यूट ऑफ मेन्टल हेल्थ में भी बने रहे। शैको का मत था कि नैदानिक मनोविज्ञान में चार साल का डाक्टरीय स्तर का प्रशिक्षण का कार्यक्रम होना चाहिए जिसमें तीसरे साल छात्र-छात्राओं इन्टर्नशीप का भी प्रावधान होना चाहिए। शैको के विचार के प्रति कार्ल रोजर्स जो उस समय APA के अध्यक्ष थे, काफी प्रभावित हुए और वे नैदानिक मनोविज्ञान में प्रशिक्षण को तय करने के लिए कमेटी का संगठन किया और शैको को ही उसका अध्यक्ष बना दिया गया। कमेटी ने एक रिपोर्ट तैयार की जिसका शीर्षक था 'रिकोमेन्डेड ग्रेजुएट ट्रेनिंग इन क्लिनिकल साइकोलॉजी' (Recommended Graduate Training in Clinical Psychology)।

### 2.3.3 वृत्तिक/व्यावसायिक प्रशिक्षण के सिद्धान्त-

वृत्तिक/व्यावसायिक प्रशिक्षण के सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

- i) एक नैदानिक मनोवैज्ञानिक को पहले एक मनोवैज्ञानिक के रूप में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
- ii) नैदानिक प्रशिक्षण उतना ही सख्त होना चाहिए जितना कि मनोविज्ञान के अन्य क्षेत्रों का प्रशिक्षण सख्त होता है।
- iii) नैदानिक मनोवैज्ञानिक की तैयारी विस्तृत होनी चाहिए और वह मूल्यांकन, शोध एवं चिकित्सा की ओर निर्देशित होना चाहिए।
- iv) नैदानिक प्रशिक्षण के मुख्य विषय-वस्तु में कम से कम छह क्षेत्रों का समावेश आवश्यक है-सामान्य मनोविज्ञान, व्यवहार का मनोगतिकी, निदानसूचक विधियाँ, शोध विधियाँ, चिकित्सा एवं संबंधित शास्त्र।
- v) प्रशिक्षण कार्यक्रम ऐसा होना चाहिए कि उसमें नियमों या सिद्धान्तों से संबंधित सिर्फ मौलिक पाठ्यक्रम ही सम्मिलित हो और विशिष्ट विधियों के पाठ्यक्रमों की अधिक संख्या न हो।
- vi) प्रशिक्षण कार्यक्रम ऐसा होना चाहिए कि उसमें सिद्धान्त तथा अभ्यास दोनों ही सम्मिलित हों।
- vii) पूर्ण प्रशिक्षण कार्यक्रम के दौरान प्रशिक्षु नैदानिक मनोवैज्ञानिक सभी तरह के नैदानिक सामग्रियों से भली-भाँति परिचित हो।

- viii) प्रशिक्षण के दौरान कुछ सामान्य व्यक्तियों से भी सम्पर्क स्थापित करने की कोशिश करनी चाहिए जिन्हें नैदानिक सहयोग की कभी भी आवश्यकता नहीं पड़ी हो।
- ix) प्रशिक्षण कार्यक्रम का स्वरूप कुछ ऐसा होना चाहिए कि उससे प्रशिक्षु के व्यक्तित्व गुणों में बढोतरी एवं परिपक्वता आये।
- x) प्रशिक्षण कार्यक्रम ऐसा होना चाहिए कि उससे रोगियों एवं क्लायंट के प्रति उत्तरदायित्व का भाव उत्पन्न हो सके।
- xi) संबंधित शास्त्रों के प्रतिनिधिनों को नैदानिक मनोविज्ञान के प्रशिक्षुओं को पढ़ाना चाहिए, जहाँ तक प्रशिक्षु को इस संबंधित शास्त्रों के छात्रों के साथ एक सम्मिलित अध्ययन करवाना चाहिए।
- xii) प्रशिक्षु मनोवैज्ञानिकों में प्रशिक्षण इस ढंग से क्षमता उत्पन्न कर सके कि वे समाज एवं रोगी या क्लायंट के प्रति निर्धारित उत्तरदायित्व से आगे भी कुछ सोच सके।

शैको रिपोर्ट में उक्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए इस बात पर भी बल डाला गया है कि उसके लिए प्रति वर्ष एक पाठ्यक्रम तैयार किया जाना चाहिए। शैको रिपोर्ट की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसमें वैज्ञानिक एवं व्यावसायिक तैयारी का विशेष मिश्रण देखने को मिलता है। शायद यही कारण है कि इस रिपोर्ट पर आधारित कार्यक्रम को वैज्ञानिक पेशावर मॉडल कहा जाता है।

नैदानिक मनोविज्ञान का प्रथम प्रमुख प्रशिक्षण सम्मेलन 1949 में हुआ था, जिसमें शैको रिपोर्ट को औपचारिक रूप से मान्यता दी गयी। इस सम्मेलन में पारित सुझाव निम्नलिखित थे-

1. नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को शोध एवं व्यवसायिक अभ्यास में दक्ष होना आवश्यक है।
2. किसी विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान में पी0एच0डी0 की उपाधि प्राप्त होनी चाहिए।
3. नैदानिक प्रशिक्षण को पूरा होने के लिए नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को एक-साल की इन्टर्नशीप भी आवश्यक है।

इस सम्मेलन के बाद शैको की योजना को बोलडर मॉडल के नाम से जाना गया। नैदानिक मनोविज्ञान के प्रशिक्षण के क्षेत्र में बोलडर मॉडल एक प्रभावी मॉडल रहा, फिर भी 1949 से ही इसके प्रति कुछ असंतोष जाहिर किया जाने लगा। नैदानिक प्रशिक्षण के ख्याल से तीन उत्तर बोलडर हुए हैं जिनसे काफी महत्वपूर्ण दिशा निर्देश मिले हैं। ये तीनों इस प्रकार हैं-

- i) **स्टैनफोर्ड सम्मेलन** -यह सम्मेलन स्टैनफोर्ड विश्व-विद्यालय में 1955 में हुआ। यद्यपि इस सम्मेलन ने नैदानिक प्रशिक्षण के लिए कोई नयी दिशा या निर्देश पारित नहीं किया गया फिर भी इसमें नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को उन व्यवसायिक भूमिकाओं के लिए तैयार रहने के लिए कहा गया जो सामुदायिक मानसिक स्वास्थ्य आन्दोलन द्वारा नैदानिक मनोविज्ञान पर पड़ने के फलस्वरूप उत्पन्न हो सकते हैं।

**ii) शिकागो सम्मेलन** - यह सम्मेलन शिकागो में 1965 में हुआ। इस सम्मेलन में नैदानिक प्रशिक्षण के वैज्ञानिक-व्यावसायिक मॉडल का विकल्प ढूँढने पर बल डाला गया। इसमें यह प्रस्ताव पारित किया गया कि वैज्ञानिक पेशावर मॉडल को जारी रखते हुए नैदानिक प्रशिक्षण का पूर्णतः एक व्यावसायिक मॉडल को तैयार किया जाना चाहिए। इस सम्मेलन में नैदानिक प्रशिक्षण के लिए कुछ विशेष तरह की उप-डाक्टरीय उपाधियाँ तथा Psy.D (Doctor of Psychology) की उपाधि आदि देने की भी सिफारिश की गयी। इस सम्मेलन के बाद इसमें जो सुझाव पारित हुए उससे नैदानिक प्रशिक्षण का पेशावर मॉडल (Professional training modal) तथा उप-डाक्टरीय कार्यक्रमों की लोकप्रियता बढ़ गयी।

1973 में भेल में मनोविज्ञान में व्यावसायिक प्रशिक्षण के पैटर्न एवं स्तर को निर्धारित करने के लिए एक राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में 150 प्रस्ताव पारित किये गये जो नये-नये पेशावर प्रशिक्षण मॉडल, नैदानिक प्रशिक्षण के उन्नत स्तर तथा पेशावर प्रशिक्षण की विशेषताओं से संबंधित थे। नैदानिक प्रशिक्षण से सम्बन्धित छठा राष्ट्रीय सम्मेलन 1987 में साल्ट लेक शहर में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में उन परिवर्तनों का मूल्यांकन किया गया जो हाल के वर्षों में व्यावसायिक मनोवैज्ञानिकों के प्रशिक्षण में किये गये। इसमें प्रशिक्षण से संबंधित कुछ समस्याओं पर वैज्ञानिकों तथा पेशावरों के बीच होने वाले टकराव को भी रोकने से संबंधित सुझाव पारित किये गए।

#### 2.3.4 नैदानिक प्रशिक्षण के वैकल्पिक मॉडल

**i). साई0डी0 कार्यक्रम (Psy.D.Programme)** - साई0डी0 कार्यक्रम का आरम्भ इलिनोईस विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान विभाग द्वारा 1968 में प्रारंभ किया गया था हालाँकि बाद में इस कार्यक्रम को बंद कर दिया गया। इस कार्यक्रम में प्रशिक्षुओं को मनोवैज्ञानिक सेवा करने में आवश्यक कौशलों को सीखलाया जाता है। इसमें न तो शोध निबंध लिखने की जरूरत होती है और नही शोध-प्रबंध की परन्तु एक लिखित व्यावसायिक गुणवत्ता पूर्ण डाक्टरीय-स्तर की रिपोर्ट तैयार करने की जरूरत होती है। गोल्डेनवर्ग (1973) ने इस कार्यक्रम पर कई तरह की आपत्ति उठायी है जिसमें प्रमुख है:-

a) इस कार्यक्रम को पी0एच0डी0 कार्यक्रम के समानान्तर रखा है इसलिए इससे लोगों में संभ्राति फैलेगी। नैदानिक अभ्यास भी एक व्यावसायी के रूप में वैज्ञानिक नहीं रह पायेगा।

b) पी0एच0डी0 कार्यक्रम तथा साई0डी0 कार्यक्रम के प्रशिक्षुओं का तुलनात्मक अध्ययन किया गया और उनके निष्पादन को देखा गया। इन दोनों प्रशिक्षुओं के निष्पादन में कोई अन्तर नहीं था। इस कारण इस कार्यक्रम को पी0एच0डी0 कार्यक्रम से अधिक श्रेष्ठ नहीं माना जा सकता है।

**ii) व्यावसायिक स्कूल** - नैदानिक प्रशिक्षण के लिए कुछ व्यावसायिक स्कूल भी खोले गए हैं जो विश्वविद्यालय विभागों के नियंत्रण में न होकर स्वतंत्र रूप से प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाते हैं। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य विश्वविद्यालय के शैक्षिक प्रतिबंध से नैदानिक प्रशिक्षण को मुक्त करना है। इसमें सक्रिय एवं अभ्यासरत प्रशिक्षुओं को एक विशेष भूमिका मॉडल प्रदान करना है। अमेरिका में ऐसे स्कूलों की संख्या लगभग 50 से ऊपर

है जिसमें अधिकतर स्कूल द्वारा नैदानिक प्रशिक्षण पूरा करने पर साई0डी0 (Psy.D) की उपाधि से सम्मिलित किया जाता है। इन व्यावसायिक स्कूलों द्वारा नैदानिक प्रशिक्षण के स्वरूप में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाया गया है एवं 21 वीं शताब्दी में ऐसे स्कूलों का प्रभाव और भी तीव्र एवं प्रखर होने की उम्मीद है।

## 2.4 वृत्तिक या व्यावसायिक नियमन -

वृत्तिक या व्यावसायिक नियम से तात्पर्य कुछ ऐसे प्रावधान हैं जिनके माध्यम से नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की सामर्थ्यता के कुछ स्पष्ट मानक विकसित किये जाते हैं और आम जनता को गुमराह होने से बचाया जाता है। दूसरे शब्दों में, यहाँ उन मानकों का निर्धारण किया जाता है जो तय कर पाते हैं कि नैदानिक मनोवैज्ञानिक में न्यूनतम कौशल है या नहीं तथा वे अपने पेशे को संचालित करने के लिए न्यूनतम योग्यता रखते हैं या नहीं। व्यावसायिक नियमन का मुख्य उद्देश्य आम जनता को अप्रशिक्षित मनोवैज्ञानिकों द्वारा दिये जा रहे रहे अनुपयुक्त नैदानिक सेवा से बचाना है। पेशावर नियमनों में निम्नांकित तरह के प्रावधान मनोवैज्ञानिकों द्वारा किए गये हैं-

### 2.4.1 प्रमाणन -

प्रमाणन एक ऐसे नियमन है इस बात पर बल डालता है कि लोग अपने आप को 'मनोवैज्ञानिक' या 'प्रमाणित मनोवैज्ञानिक' तब तक नहीं कह सकते हैं जब तक कि उन्हें परीक्षकों के बोर्ड द्वारा प्रभावित नहीं घोषित कर दिया जाता है। प्रमाणन की प्रक्रिया में प्रायः परीक्षा ली जाती है परन्तु कभी-कभी उम्मीदवार के प्रशिक्षण एवं व्यवसायिक अनुभूतियों के आधार पर ही प्रमाण दे दिया जाता है। इस तरह से प्रमाणन एक ऐसा प्रयास है जिसके माध्यम से समीक्षा के आधार पर ही प्रमाणन प्रदान कर दिया जाता है। इस तरह से प्रमाणन एक ऐसा प्रयास है जिसके माध्यम से 'मनोवैज्ञानिक' शीर्षक के उपयोग को सीमित करके आम जनता को किसी तरह के होने वाले दुष्परिणाम से बचाया जाता है।

### 2.4.2 अनुज्ञप्ति -

अनुज्ञप्ति एक अधिक मजबूत नियमन माना जाता है। अनुज्ञप्ति में न केवल 'मनोवैज्ञानिक' के शीर्षक एवं प्रशिक्षण के स्वरूप का उल्लेख होता है बल्कि इसमें उस बात का उल्लेख होता है कि संबंधित मनोवैज्ञानिक जनता से फीस लेने के बदले में किस तरह की सेवा प्रदान करने के योग्य है जो प्रशिक्षित नैदानिक मनोवैज्ञानिक अनुज्ञप्ति चाहते हैं उनके विशेष आवेदन पर उनसे उपयुक्त फीस ली जाती है तथा एक विशेष लिखित परीक्षा उन्हें उत्तीर्ण करनी होती है। इस परीक्षा में सफलता के आधार पर मनोवैज्ञानिकों का एक बोर्ड उन्हें अनुज्ञप्ति देता है। अनुज्ञप्ति की आलोचना कुछ बिन्दुओं पर की गयी है जो इस प्रकार हैं-

a) आलोचकों द्वारा यह कहा जाता है कि कोई पक्का सबूत नहीं मिलता है अनुज्ञप्ति (लाइसेंस) जारी करने के लिए जो लिखित परीक्षा संचालित की जाती है, उसके द्वारा मनोवैज्ञानिकों की व्यवसायिक क्षमताओं की सही-सही जाँच होती है।

b) कुछ आलोचकों का मत है कि अनुज्ञप्ति की प्रक्रिया यदि जारी रहती है तो उससे जनता को हानि अधिक और लाभ कम होगा क्योंकि इस प्रक्रिया का स्वरूप कुछ ऐसा है कि इससे नैदानिक मनोवैज्ञानिकों के बीच प्रतियोगिता में कमी आयेगी तथा मनोवैज्ञानिकों की सेवाओं की कीमत बढ़ेगी।

### 2.4.3 अमेरिकन बोर्ड ऑफ प्रोफेशनल साइकोलाजी (ABEPP/ABPP)-

अमेरिकी संघ सरकार ने 1947 में वृत्तिक नियमन को अधिक मजबूत एवं सुस्पष्ट करने के ख्याल से एक अलग कॉरपोरेशन की स्थापना किया जिसे 'अमेरिकन बोर्ड ऑफ इकजांमिनर्स एन प्रोफेशनल साइकोलाजी' कहा गया। 1968 में इसके लम्बे नाम को थोड़ा छोटा कर (ABPP) अमेरिकन बोर्ड ऑफ प्रोफेशनल साइकोलाजी कहा गया। ABPP द्वारा व्यावसायिक या वृत्तिक प्रवीणता का प्रमाण-पत्र नैदानिक मनोविज्ञान, परामर्श मनोविज्ञान, औद्योगिक एवं संगठनात्मक मनोविज्ञान तथा स्कूल मनोविज्ञान में दिया जाता है। इसमें एक मौखिक परीक्षा ली जाती है तथा उम्मीदवार को कोई एक नैदानिक केस को प्रस्तुत करना होता है। परीक्षा से पहले उनके द्वारा नैदानिक केसेज के किये गये उपचारों के रिकार्ड का विश्लेषण किया जाता है। ABPP परीक्षा में शामिल होने के लिए यह आवश्यक है कि उम्मीदवार को उसके पहले कम-से कम पाँच साल का उत्तरदाकटरीय अनुभूति प्राप्त हो। ABPP परीक्षा के लिए जो अपेक्षाएँ हैं, वे प्रमाणन तथा अनुज्ञप्ति की तुलना में अधिक सख्त है।

### 2.5 वृत्तिक या व्यावसायिक नीतिशास्त्र -

जब नैदानिक मनोवैज्ञानिक अपने वृत्तिक या व्यावसायिक कार्य को करते हैं तो उनके सामने अनेक समस्याएँ होती हैं, जैसे

1. वे किन-किन नियमों या सिद्धान्तों का पालन करें।
2. किस तरह से वे अनैतिक व अनुचित व्यवहार से निबटे आदि।

वृत्तिक या व्यावसायिक क्रियाओं के निर्धारण करने के लिए कुछ नैतिक मानक बनाये गये हैं तथा इन समस्याओं से निबटने के लिए नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यावसायिक या वृत्तिक नीतियों की एक नियमावली तैयार की गयी है जो कुछ खास-खास व्यावसायिक क्रिया करने के लिए प्रोत्साहित करता है। मनोविज्ञान में पहली ऐसी नीतियों की नियमावली का निर्माण 1953 में APA द्वारा किया गया। इस नियमावली का वर्तमान रूपान्तर को APA द्वारा 1981 में विकसित किया गया जिसे पुनः 1990 में APA द्वारा संशोधित भी किया गया। 1990 के रूपान्तरित नियमावली में एक प्रस्तावना है तथा 10 नियम हैं जिनके द्वारा सभी प्रमुख मनोवैज्ञानिक क्रियाओं पर प्रकाश डाला गया है अर्थात् इन नियमों द्वारा शोध, शैक्षिक मानक चिकित्सा, परीक्षण-कार्य तथा निदान आदि सभी क्रियाओं का नियंत्रण होता है। ये 10 नियम निम्नलिखित हैं-

### 2.5.1 वृत्तिक या व्यावसायिक नीतिशास्त्र के नियम -

- i) **उत्तरदायित्व का नियम** -मनोवैज्ञानिक द्वारा जब उनकी सेवाएँ जनता को दी जाती हैं, तो वे अपने पेशे का उच्चतम मानक बनाये रखते हैं। उनके द्वारा किये जाने वाले कार्यों के परिणामों का उत्तरदायित्व वे अपने कंधे पर उठाते हैं। उनका हर संभव प्रयास यही रहता है कि उनकी सेवा का उचित उपयोग हो सके।
- ii) **सामर्थ्यता का नियम** -यह नियम इस बात पर बल डालता है कि वे अपने प्रशिक्षण एवं अनुभव के आधार पर जनता को उचित सेवा प्रदान करते हैं और उन्हीं उचित प्रविधियों का प्रयोग करते हैं।
- iii) **नैतिक एवं कानून मानकों का नियम** -यह नियम इस बात पर बल डालता है कि मनोवैज्ञानिक जब आम जनता को सेवा प्रदान करते हैं तो वे अपने समान के मानकों एवं उसके नैतिक एवं कानूनी पक्षों का पूरा ध्यान रखते हैं और उसी तरह से व्यवहार करते हैं जो मनोवैज्ञानिकों, सहकर्मियों द्वारा जो वृत्तिक कार्य किये जाते हैं वे उनका अपने व्यवहारों के पड़ने वाले प्रभावों के प्रति भी सचेत रहते हैं।
- iv) **सार्वजनिक कथन का नियम** - इसके अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक अपने पेशे, योग्यता, कार्य तथा संगठन (जहाँ वे सेवाएँ प्रदान करते हैं) के बारे में सही, वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक ढंग से सार्वजनिक कथन देते हैं।
- v) **गोपनीयता का नियम** -नैदानिक मनोवैज्ञानिक जब समस्याग्रस्त व्यक्ति या रोगी का उपचार करते हैं, उनसे कुछ महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त करते हैं जिनकी गोपनीयता वे बनाकर रखते हैं। रोगी की ऐसी सूचनाओं को तभी अन्य व्यक्तियों को देते हैं जब ऐसे करने की अनुमति उन्हें रोगी या उनके कानूनी अभिभावक से प्राप्त हो जाती है।
- vi) **उपभोक्ता के कल्याण से संबद्ध नियम** -मनोवैज्ञानिक उन लोगों के कल्याण एवं अखंडता की रक्षा करते हैं जिनके साथ वे कार्य करते हैं। वे अपने परीक्षण की प्रविधियों, उपचार एवं मूल्यांकन की प्रविधियों के बारे में पूरा-पूरा ज्ञान उपभोक्ताओं को या उनकी सेवा करने वाले व्यक्तियों को दे देते हैं।
- vii) **व्यावसायिक या वृत्तिक संबंधों का नियम** -मनोवैज्ञानिक अन्य मनोवैज्ञानिकों तथा दूसरे पेशे के लोगों के साथ अपनी आवश्यकताओं, विशेष सामर्थ्यता आदि के बारे में बातचीत करते हैं तथा उनके साथ मधुर सम्बन्ध बनाये रखते हैं। वे उन संस्थाओं के दायित्व एवं विशेषाधिकार को सम्मान देते हैं जिनके साथ उनके अन्य सहकर्मी संबंधित होते हैं।
- viii) **मूल्यांकन प्रविधि का नियम** - मनोवैज्ञानिक अपने कार्यों के लिए विभिन्न तरह के मूल्यांकन प्रविधियों का प्रयोग करते हैं। वे इन प्रविधियों के विकास, प्रकाशन एवं उपयोग पर सख्त नजर रखते हैं ताकि उसका दुरुपयोग न हो सके। इसके साथ ही वे ये भी करते हैं कि अन्य पेशे के लोग यदि इन मूल्यांकन प्रविधियों का उपयोग करते हैं, तो वे उसका दुरुपयोग न करें।

ix) **मानव प्रयोज्यों के साथ शोध से संबंध नियम - नैदानिक मनोवैज्ञानिक** जब कोई भी शोध कार्य करते हैं तो मानव कल्याण और उसके क्षेत्र के लाभ के लिये उनके शोध में जो प्रयोज्य भाग लेते हैं, वे उनके कल्याण एवं मान-मर्यादा का पूरा ख्याल रखते हैं और अपने व्यावसायिक मानदंडों के तहत ही उनके साथ व्यवहार करते हैं और उनका मार्गदर्शन करते हैं।

x) **पशुओं के उपयोग एवं देखभाल से संबंधित नियम - मनोवैज्ञानिक** को यदि पशुओं पर अपना शोध करना होता है, तो वे उसे भी मनुष्य के समान दृष्टिकोण से देखते हैं तथा इस बात की पूरी कोशिश करते हैं कि उसे किसी प्रकार का कोई कष्ट न हो।

वृत्तिक या व्यावसायिक नीतिशास्त्र मनोवैज्ञानिकों को एक खास ढंग से रोगियों या क्लाइंटों को एक साथ व्यवहार करने की अनुमति देता है। नीतिशास्त्र में ये व्याख्या की गयी कि उसे क्या करना चाहिए तथा क्या नहीं करना चाहिए। इससे मनोविज्ञान का विशेषकर नैदानिक मनोविज्ञान की पेशावर लोकप्रियता अधिक बढ़ती है।

---

### अभ्यास प्रश्न

1. नैदानिक मनोविज्ञान की एक पेशे या व्यवसाय के रूप में मुख्य समस्याएँ....., .....तथा वृत्तिक नीतिशास्त्र है।
2. शैको रिपोर्ट में नैदानिक प्रशिक्षण के .....सिद्धांतों को बताया।
3. ABPP का पूरा नाम.....
4. वृत्तिक नियमन से तात्पर्य नैदानिक मनोवैज्ञानिक के .....से है।
5. वृत्तिक नीतिशास्त्र में अपने व्यवसाय या पेशे के लिए.....का निर्धारण किया जाता है।

---

### 2.5 सारांश

- i) वृत्तिक या व्यावसायिक प्रशिक्षण के द्वारा नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को उस पेशे की आवश्यकताओं, समस्याओं तथा कार्य विधि के बारे में बताया जाता है।
- ii) वृत्तिक या व्यावसायिक प्रशिक्षण के अर्न्तगत उत्तम प्रशिक्षण से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार किया जाता है।
- iii) वृत्तिक या व्यावसायिक नियमन से तात्पर्य है कि नैदानिक मनोवैज्ञानिक में न्यूनतम कौशल है या नहीं। नियमन का मुख्य उद्देश्य जनता को अप्रशिक्षित मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी जा रही अनुप्रयुक्त सेवा से बचाना है।

iv) वृत्तिक या व्यावसायिक नीतिशास्त्र में कुछ नैतिक मानकों को रखा गया है तथा वृत्तिक समस्याओं से निबटने के लिये नियमावली तैयार की गई है।

## 2.6 शब्दावली -

- i) प्रशिक्षु - ऐसे व्यक्ति जिन्हें ट्रेनिंग दी जाती है।
- ii) इन्टर्नशिप - प्रशिक्षण पूरा होने से पूर्व एक निश्चित समय तक उस क्षेत्र की दी जाने वाली जानकारियाँ।

## 2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. वृत्तिक प्रशिक्षण, वैत्तिक नियमन 2. 13
3. American Board of Professional Psychology 4. न्यूनतम कौशल
5. नैतिक मानको

## 2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उच्चरत नैदानिक मनोविज्ञान - अरूण कुमार सिंह - मोतीलाल बनारसी दास
2. आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञान - डा०एच०के०कपिल - हर प्रसाद भार्गव

## 2.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न -

1. एक नैदानिक मनोवैज्ञानिक के लिये प्रशिक्षण का क्या अर्थ होता है? प्रशिक्षण के विकास एवं सिद्धान्त पर प्रकाश डालिये।
2. नैदानिक मनोविज्ञान में कौन-कौन सी मुख्य वृत्तिक या व्यावसायिक समस्याये है, इनका विस्तृत वर्णन करिये।
3. नैदानिक मनोविज्ञान में वृत्तिक प्रशिक्षण एवं वृत्तिक नियमन से सम्बन्धित प्रमुख समस्याओं का उल्लेख करिये।
4. नैदानिक मनोविज्ञान में वृत्तिक नीतिशास्त्र का क्या अर्थ है? इसके मुख्य नियमों का वर्णन करिये।

---

**इकाई 3. नैदानिक मनोविज्ञान एवं नैदानिक मूल्यांकन की अध्ययन विधियाँ:- साक्षात्कार, व्यक्ति इतिहास विधि एवं मानसिक स्थिति का परीक्षण (Study Methods of Clinical Psychology and Clinical Assessment:- Interview, Case History and Mental Status Examine)**

---

**इकाई संरचना**

- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 उद्देश्य
- 3.3 नैदानिक मनोविज्ञान के अध्ययन के तरीके
  - 3.3.1 केस अध्ययन विधि
  - 3.3.2 नैदानिक प्रेक्षण/निरीक्षण विधि
    - 3.3.2.1 स्वाभाविक निरीक्षण
    - 3.3.2.2 आत्म सलाह
    - 3.3.2.3 नियंत्रित निरीक्षण
  - 3.3.3 मनोवैज्ञानिक परीक्षण
    - 3.3.3.1 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की विशेषतायें
    - 3.3.3.2 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रकार
- 3.4 नैदानिक मूल्यांकन
  - 3.4.1 नैदानिक साक्षात्कार
  - 3.4.2 साक्षात्कार के प्रकार
  - 3.4.3 साक्षात्कार के चरण
  - 3.4.4 साक्षात्कार के गुण
  - 3.4.5 साक्षात्कार के दोष
  - 3.4.6 साक्षात्कार के उद्देश्य
- 3.5 केस इतिहास साक्षात्कार
- 3.6 मानसिक स्थिति परीक्षण
- 3.7 सारांश
- 3.8 शब्दावली
- 3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

### 3.1 प्रस्तावना

नैदानिक मनोवैज्ञानिकों का एक महत्वपूर्ण कार्य नैदानिक मूल्यांकन करना होता है। वे सभी प्रक्रियायें जिनके सहारे नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को रोगी के बारे में जानने एवं समझने में मदद मिलती है, नैदानिक मूल्यांकन कहलाती है। नैदानिक मनोविज्ञान में कई विधियों का उपयोग करके रोगी के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है और रोगी के बारे में महत्वपूर्ण आंकड़ों को इकट्ठा किया जाता है। इन विधियों में प्रमुख हैं- केस अध्ययन विधि, नैदानिक निरीक्षण विधि, नैदानिक साक्षात्कार आदि।

इस इकाई के अन्तर्गत हम नैदानिक अध्ययन विधियों एवं मूल्यांकन का विस्तार से अध्ययन कर सकेंगे।

### 3.2 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार है-

नैदानिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत आने वाली समस्त अध्ययन विधियों तथा नैदानिक मूल्यांकन का अध्ययन करना।

### 3.3 नैदानिक मनोविज्ञान में अध्ययन के तरीके

प्रत्येक विषय क्षेत्र को ठीक से समझने तथा विकसित करने के लिए अध्ययन के विभिन्न माध्यमों की आवश्यकता होती है। ये माध्यम प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों हो सकते हैं। ऑकड़ो या तथ्य एकत्रित करने के इन्हीं माध्यमों को अध्ययन विधियां कहा जाता है।

नैदानिक मनोविज्ञान में इन्हीं आंकड़ों को एकत्र करने के लिए अनेक अध्ययन विधियों का उपयोग किया जाता है, जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं

#### 3.3.1. केस अध्ययन विधि

इस विधि का उपयोग नैदानिक मनोवैज्ञानिक एवं मनोचिकित्सक दोनों ही करते हैं। कोमर (1995) के अनुसार, "केस अध्ययन एक व्यक्ति का विस्तृत एवं व्याख्यात्मक वर्णन होता है। यह व्यक्ति की पृष्ठभूमि, वर्तमान परिस्थितियों एवं लक्षणों का वर्णन करता है।"

इस विधि को किसी खास असामान्य व्यक्ति के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए अधिक प्रयोग किया जाता है। व्यक्ति को असामान्य बनाने में उसके परिवार की आर्थिक, सामाजिक तथा सांवेगिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। अतः किसी भी असामान्य व्यक्ति के रोग के बारे में तभी पता लगाया जा सकता है, जब उसके परिवार की अवस्था के बारे में पता चल सके। इस विधि द्वारा रोगी के जन्म से लेकर वर्तमान तक के जीवन का पूरा विवरण तैयार किया जाता है। इसके बाद उससे प्राप्त सामग्रियों का विश्लेषण किया जाता है। विश्लेषण करने के बाद व्यक्ति के मानसिक रोग के मूल कारण का पता चलता है। इसके बाद चिकित्सा द्वारा उसका उपचार प्रारम्भ किया जाता है।

**बेलर (1962), हुबर (1961) तथा मेनिनगर, मेमैन तथा प्रुऐसर (1962)** ने केस अध्ययन विधि का एक प्रारूप तैयार किया। इस प्रारूप में रोगी के वर्तमान, भूत एवं भविष्य तीनों से सम्बन्धित प्रश्न होते हैं। इस प्रारूप में निम्नलिखित पद हैं-

1. वर्तमान स्थिति - इसमें नैदानिक मनोवैज्ञानिक रोगी के बारे में निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर जानना चाहते हैं- रोगी अपने दिन-प्रतिदिन की जिन्दगी में कौन-कौन से कार्य करता है? परिवार के सदस्यों की राय में रोगी किस तरह का विचलित या गलत व्यवहार दिखलाता है? रोगी में चिन्ता, विषाद तथा अन्य नकारात्मक संवेग की गंभीरता कितनी अधिक है?

(2) **व्यक्तित्व के बारे में** - इसमें रोगी व्यक्तित्व के बारे में निम्न प्रश्नों के उत्तर जानना चाहते हैं- क्या रोगी का स्वास्थ्य ठीक है? क्या रोगी आक्रामक है, उसे अपने संवेग पर नियंत्रण है? क्या उसमें धनात्मक या ऋणात्मक संवेग की अधिकता होती है? रोगी का व्यवहार दूसरों लोगों के साथ कैसा है? रोगी का अन्य लोगों के साथ संबंध कैसे है?

(3) **सामाजिक सम्बन्ध** - इसमें निम्न सूचनाएँ प्राप्त की जाती हैं- रोगी किस तरह के लोगों से अपना संबंध रखता है? रोगी के अपने माता-पिता, बच्चों तथा पति या पत्नी के साथ कैसा संबंध है?

(4) **व्यक्तित्व विकास** - इसमें रोगी के व्यक्तित्व विकास से संबंधित सूचनाओं को इकट्ठा किया जाता है। इस सिलसिले में रोगी के प्रारम्भिक जीवन के अनुभवों को उसके माता-पिता, भाई-बहन आदि से प्राप्त किया जाता है। यह पता लगाया जाता है कि क्या उसका प्रारम्भिक विकास ठीक तरह से हुआ है या नहीं।

(5) **केस निर्माण** - इसमें रोगी से निम्न तरह की सूचना प्राप्त करने की कोशिश की जाती है। उसके मनोवैज्ञानिक असमायोजन को समझने की कोशिश की जाती है और यह पता लगाया जाता है कि वह किन-किन क्षेत्रों में ठीक ढंग से कार्य करता है तथा किन-किन क्षेत्रों में वह ठीक ढंग से कार्य नहीं कर पाता है?

(6) **उपचार या हस्तक्षेप** - इसमें रोगी के पर्यावरणीय एवं सामाजिक कारकों में परिवर्तन करने की कोशिश की जाती है, जिससे उसकी समस्या कम हो जाय। उसके साथ परामर्श करके उसके (रोगी के) जिन्दगी की वर्तमान स्थिति में परिवर्तन लाकर उसके तनाव को कर सकते हैं। यदि रोगी ज्यादा गम्भीर है तो उसकी समस्या के अनुरूप मनोचिकित्सा दी जाती है।

(7) **भविष्य के पूर्वानुमान** - नैदानिक चिकित्सा या हस्तक्षेप के बाद रोगी के भविष्य के बारे में पूर्वानुमान लगाया जा सकता है।

**गुण-**

(i) इस विधि द्वारा गहन तथा विस्तृत जानकारी प्राप्त हो जाती है।

(ii) इस विधि से वर्तमान रोग के निदान में मदद मिलती है तथा भविष्य में संभावित नैदानिक हस्तक्षेपों (उपचार) को करने में मदद मिलती है।

(iii) नैदानिक केस अध्ययन विधि द्वारा रोगी के रोग के स्वरूप को सही-सही समझा जा सकता है।

**दोष-**

- (i) इस विधि में सम्मिलित किए गए प्रश्नों को ठीक ढंग से तैयार करने के लिए सूझ-बूझ, समझ एवं कौशलता की अधिक जरूरत पड़ती है।
- (ii) इससे प्राप्त जानकारी लोगों के स्मरण पर निर्भर करती है। इस कारण गलत जानकारी प्राप्त हो सकती है।
- (iii) इस विधि द्वारा गंभीर रूप से मानसिक रोगियों का नैदानिक मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। इसलिये साधारण मानसिक रोगियों के लिए ही प्रयोग किया जाता है।

**3.3.2. नैदानिक प्रेक्षण/निरीक्षण विधि**

नैदानिक प्रेक्षण विधि द्वारा मानसिक रोगियों के व्यवहार का सीधे निरीक्षण किया जाता है। नैदानिक मनोवैज्ञानिक प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण करके एक निश्चित नैदानिक निर्णय पर पहुँचते हैं। यह एकमात्र ऐसी पद्धति है जिसमें व्यवहार जैसा घटित हो रहा है, उसका वैसा ही नोट किया जाता है।

नैदानिक मनोविज्ञान में निम्नलिखित तीन निरीक्षण विधियों का प्रयोग किया जाता है-

- (i) स्वाभाविक निरीक्षण
- (ii) आत्म-सलाह
- (iii) नियंत्रित निरीक्षण

**3.3.2.1 स्वाभाविक निरीक्षण**

इस विधि में प्रेक्षक रोगी के व्यवहारों का सीधा निरीक्षण एक स्वाभाविक परिस्थिति जैसे-स्कूल, घर, दफ्तर आदि में करते हैं। इसमें रोगी के जिस व्यवहार का निरीक्षण करना हो उसे पहले निर्धारित कर लेते हैं और उसके बाद उसका निरीक्षण करते हैं।

स्वाभाविक निरीक्षण के तीन प्रकार होते हैं-

- (i) घरेलू निरीक्षण -इस तरह के निरीक्षण में नैदानिक मनोवैज्ञानिक या प्रेक्षक रोगी के घर पर जाकर उनके परिवार के अन्य सदस्यों के साथ किए निरीक्षणों को रिकार्ड करता है।
- (ii) स्कूल निरीक्षण -नैदानिक बाल मनोवैज्ञानिक स्कूल के कुछ व्यवहारात्मक समस्याओं का सीधा निरीक्षण करके नैदानिक मूल्यांकन करते हैं। ऐसी समस्याओं में बच्चों का खेल के मैदान में उनका व्यवहार आक्रामक होना, अत्यधिक डरा रहना, एकाग्रता की कमी तथा शिक्षक के साथ हमेशा चिपका रहना आदि होते हैं।
- (iii) चिकित्सालय निरीक्षण - इस तरह के निरीक्षण में अस्पताल के नैदानिक विशेषज्ञ रोगी के व्यवहार का अस्पताल में निरीक्षण करते हैं। इसके लिए मापनी का उपयोग किया जाता है। विट्टेनवार्न (1955) ने एक विशेष प्रेक्षणात्मक मापनी विकसित किया जिसे विट्टेनवार्न मनश्चिकित्सीय रेटिंग मापनी कहा गया। इसमें 52 मापनी होते हैं और प्रत्येक में कई कथन होते हैं जिनके सहारे रोगी के व्यवहारों का निरीक्षण किया जाता है।

गुण-

- (i) स्वाभाविक निरीक्षण में रोगियों के व्यवहारों का निरीक्षण एक स्वाभाविक परिस्थिति में किया जाता है, अतः इससे प्राप्त आँकड़ों में शुद्धता होती है।
- (ii) इस विधि द्वारा गंभीर एवं कम असमायोजित दोनों ही तरह के रोगियों के व्यवहारों का निरीक्षण आसानी से किया जाता है।

दोष -

- (i) निरीक्षण विधि द्वारा जब निरीक्षण किया जाता है तो इसके लिए प्रशिक्षित व्यक्ति होना आवश्यक होता है, तभी इसके परिणाम शुद्ध एवं विश्वसनीय आते हैं।
- (ii) इस विधि द्वारा नैदानिक मूल्यांकन करने में धन, समय एवं श्रम काफी अधिक लगते हैं।

### 3.3.2.2 आत्म सलाह

इस विधि में व्यक्ति अपने व्यवहारों, चिन्तन एवं संवेगों का निरीक्षण स्वयं करता है तथा स्वयं ही उसका अंकन (रिकार्डिंग) भी करता है। इस विधि में चिकित्सक रोगी को एक डायरी दे देता है। जिसमें वह एक निश्चित समय तक अपने व्यवहारों की तीव्रता, आवृत्ति तथा अवधि को डायरी में रोजाना लिखते जाता है। इस विधि का प्रयोग कुछ विशेष नैदानिक समस्याओं जैसे-मोटापा, धूम्रपान, मद्यव्यसनता के मूल्यांकन में किया जाता है।

गुण -

- (i) इस विधि में रोगी का ध्यान अपने रोजमर्रा के गलत व्यवहारों पर जाता है। जिसके कारण उनमें स्वयं ही इसे नियंत्रित करने की विशेष प्रेरणा जगती है।
- (ii) इस तरह की विधि द्वारा निरीक्षण करने के समय, श्रम एवं धन तीनों की काफी बचत होती है।

दोष -

- (i) कभी-कभी रोगी अपने व्यवहारों का निरीक्षण सही ढंग से नहीं करता। वह अपने व्यवहारों के निरीक्षणों को जान-बूझ कर विकृत कर देता है।
- (ii) गंभीर मानसिक रोगियों के लिए इस तरह की विधि उपयुक्त नहीं होती है।

### 3.3.2.3 नियंत्रित निरीक्षण

इस तरह की विधि में प्रेक्षक रोगियों या व्यक्तियों के व्यवहारों को एक नियंत्रित परिस्थिति में रखकर निरीक्षण करते हैं और उसका नैदानिक मूल्यांकन करते हैं। बच्चों में धोखेबाजी व्यवहार जैसे-चोरी करना, झूठ बोलना, बेईमानी करना आदि से संबंधित नैदानिक समस्याओं का मूल्यांकन करने के लिए इसे प्रयोग किया जाता है।

गुण-

- (i) इसमें नैदानिक मनोवैज्ञानिक को स्वाभाविक परिस्थिति के उत्पन्न होने तक इंतजार नहीं करना पड़ता है। इसलिए इसमें कम समय लगता है और नैदानिक मूल्यांकन जल्दी होता है।

दोष-

- (i) निरीक्षण द्वारा गंभीर मानसिक समस्याओं का निरीक्षण ठीक ढंग से नहीं किया जाता है।

### 3.3.3 मनोवैज्ञानिक परीक्षण

नैदानिक परीक्षणों का नैदानिक मूल्यांकन में विशेष स्थान है। क्रॉनबैक (1965) के अनुसार 'परीक्षण व्यक्ति के व्यवहारों को प्रेक्षण करने तथा उसे एक संख्यात्मक मापनी या श्रेणी पद्धति द्वारा वर्णन करने की एक क्रमबद्ध कार्य-विधि है।' असामान्य व्यवहार के अध्ययन के लिए विभिन्न मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग किया जाता है।

#### 3.3.3.2 नैदानिक परीक्षणों के प्रकार

मनोवैज्ञानिक परीक्षण शाब्दिक या अशाब्दिक हो सकते हैं। प्रशासन की दृष्टि से व्यक्तिगत या सामूहिक हो सकते हैं। व्यक्तित्व के विभिन्न शीलगुणों का मापन इन परीक्षणों द्वारा किया जाता है। इन परीक्षणों के निम्नलिखित प्रकार हैं

(1) **बुद्धि परीक्षण** - इस परीक्षण द्वारा नैदानिक मनोवैज्ञानिक रोगी की वर्तमान सामान्य क्षमता का मापन करते हैं। बौद्धिक क्षमता का मापन करके नैदानिक मनोवैज्ञानिक यह पता करते हैं कि व्यक्तित्व विघटन से कितनी मात्रा में रोगी की बुद्धि प्रभावित हुई है। बुद्धि परीक्षण के निम्नलिखित प्रकार हैं-

(a) **बिने परीक्षण** - बिने परीक्षण का निर्माण फ्रांस में 1905 में किया गया था। इसका संशोधन 1960 में स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में किया गया जो तीसरा संशोधन था। बुद्धि परीक्षण 4 से 12 साल के बच्चों के लिए उपयुक्त है।

(b) **वेक्सलर मापनी** - वेक्सलर ने व्यक्तियों की बुद्धि मापने के लिए तीन मापनी बनाये हैं- (Wechsler Adult Intelligence Scale (WAIS), (Wechsler Intelligence Scale for Children (WISC), तथा (Wechsler Preschool and Primary Scale of Intelligence (WPPSI)। WAIS द्वारा वयस्कों की बुद्धि मापी जाती है, WISC द्वारा 6 से 16 साल के बच्चों की बुद्धि मापी जाती है तथा WPPSI 4 साल से 6 साल के उम्र तक के बच्चों की बुद्धि मापी जाती है। इन तीनों परीक्षणों में शाब्दिक परीक्षण तथा क्रियात्मक परीक्षण होते हैं।

(c) **गुडएनफ ड्रा-ए-मैन परीक्षण** - इस परीक्षण का निर्माण गुडएनफ द्वारा 1926 में किया गया। इसमें बुद्धि मापे जाने वाले बच्चे को एक पुरुष का चित्र बनाना होता है। चित्र बनाने में लगा समय एवं उसकी सामान्य आकृति के आधार पर बुद्धि की माप की जाती है।

(d) **रैवेन प्रोग्रेसिव मैट्रीसेज** - इस परीक्षण का निर्माण ग्रेट-ब्रिटेन में जे0सी0 रैवेन द्वारा 1936 में किया गया। यह बुद्धि का एक अशाब्दिक माप है। इस परीक्षण द्वारा ज्यामितिक चित्रों में तार्किक संबंधों को ढूँढा जाता है और बुद्धि का मापन होता है।

(2) **अभिक्षमता परीक्षण** - कक्षा में छात्रों की अभिक्षमता से सम्बन्धित समस्याओं को इस परीक्षण द्वारा मापा जाता है। जैसे-अंकगणित, संस्कृत, अंग्रेजी आदि सीखने संबंधित समस्या। उन समस्याओं की पहचान की जाती है और उनकी पहचान करके उपचार प्रदान किया जाता है।

(3) **मस्तिष्कीय क्षति मापने का परीक्षण** - बहुत सारे रोगी ऐसे होते हैं जिनके मस्तिष्क में कुछ आंगिक परिवर्तन हुए होते हैं। आंगिक परिवर्तन की मात्रा अधिक होती है तो मेडिकल विधि जैसे-एक्स रे (X-ray) तथा EEG प्रविधियों द्वारा उनका पता आसानी से चल जाता है। परन्तु जब इसकी मात्रा कम होती है, तो कुछ मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का सहारा लेना पड़ता है।

(4) **व्यक्तित्व परीक्षण** - नैदानिक समस्याओं तथा व्यक्ति के व्यवहार के निरीक्षण के लिए व्यक्तित्व परीक्षणों का सहारा लिया जाता है। इन परीक्षणों द्वारा रोगी की मानसिक स्थिति की पहचान की जाती है। जिससे चिकित्सकों को रोगी के उपचार करने में सहायता मिलती है। इसके लिए व्यक्तित्व प्रश्नावली, व्यक्तित्व मापनी तथा प्रक्षेपण तकनीकों का उपयोग किया जाता है।

प्रक्षेपण तकनीक में परीक्षण के पद अधूरे तथा असंरचित होते हैं। इस तकनीक द्वारा मानसिक रोगी अपनी दबी हुई इच्छाओं, विचारों, भावनाओं, संवेगों, को व्यक्त करता है। इन परीक्षणों में रोशा स्याही धब्बा परीक्षण तथा टी0ए0टी0 प्रसिद्ध है।

### मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के गुण -

1. इनके द्वारा प्राप्त परिणाम विश्वसनीय तथा वैध होते हैं।
2. मनोवैज्ञानिक परीक्षण व्यक्ति के समस्त शील गुणों- बुद्धि, अभिक्षमता, उपलब्धि, रूचि व जीवन मूल्य, चिन्ता, समायोजन, संवेगात्मकता आदि के साथ-व्यक्तित्व को समझने में सहायक है।
3. इनका उपयोग मानसिक रोगियों के रोग को समझने, निदान करने, उपचार तथा असामान्य व्यवहार सम्बन्धी अनेक अनुसन्धानों में होता है।
4. इनका उपयोग समस्याग्रस्त व्यक्तियों के परामर्श में भी किया जाता है।

### दोष -

1. अनेक सूक्ष्म व्यक्तित्व गुणों का मापन इनके द्वारा कठिन है।
2. अधिकांश परीक्षण निश्चित आयु या श्रेणी वर्गों के लिए होते हैं मानसिक रोगियों के लिए उपयोग करते समय अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं।
3. जो मानसिक रोगी अत्यन्त विषाद व उत्तेजित अवस्था में होते हैं, उनके परीक्षण की संभावना कम होती है।

### 3.4 नैदानिक मूल्यांकन -

नैदानिक मूल्यांकन एक ऐसी प्रविधि है, जिसमें व्यक्तियों के बारे में तरह-तरह की सूचनायें एकत्रित की जाती हैं और एक विशेष निर्णय लिया जाता है। नैदानिक मूल्यांकन को नैदानिक मनोविज्ञानी या मनोचिकित्सक करते हैं।

नैदानिक मूल्यांकन के सहारे नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को रोगी के बारे में जानने एवं समझने में मदद मिलती है। कोरचिन के अनुसार ” नैदानिक मूल्यांकन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके सहारे रोगी से संबद्ध महत्वपूर्ण निर्णय करने के लिए चिकित्सक रोगी को पूर्णरूपेण समझने की कोशिश करता है।”

चिकित्सकों द्वारा रोगी को समझने की दिशा में किया गया कोई भी प्रयास नैदानिक मूल्यांकन कहा जाएगा। इस प्रकार नैदानिक मूल्यांकन सूचनाओं के विभिन्न पहलुओं को संग्रहित करता है। जिसके द्वारा व्यक्ति की वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन होता है।

### नैदानिक साक्षात्कार:-

साक्षात्कार मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन का एक सबसे अच्छा तरीका है। साक्षात्कार विधि में आमने-सामने बैठकर मौखिक शाब्दिक आदान-प्रदान किया जाता है। इसमें एक व्यक्ति जो मौखिक प्रश्न पूछता है उसे साक्षात्कारकर्ता तथा जो उत्तर देता है उसे उत्तरदाता या साक्षात्कार देने वाला कहते हैं। इसमें साक्षात्कारकर्ता सामने उपस्थित व्यक्ति या व्यक्तियों से मौखिक प्रश्न पूछता है और उत्तरदाता उसके मौखिक उत्तर देता है। इस प्रकार शाब्दिक आदान-प्रदान से साक्षात्कारकर्ता उत्तरदाता से उसकी भावनाओं, विश्वासों, अनुभवों, विचारों, वर्तमान मानसिक स्थिति तथा भविष्य की योजनाओं के सम्बन्ध में जानकारी एकत्रित करता है।

नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा साक्षात्कार विधि का प्रयोग बहुत पुराना है। इसके निम्न उपयोग हैं

1. मानसिक रोगियों को समझने में,
2. रोग के कारणों को जानने में,
3. रोगों के उपचार में,
4. तथ्य एकत्रित करने में।

साक्षात्कार विधि में (1) साक्षात्कारकर्ता उत्तरदाता से मौखिक रूप से प्रश्न पूछता है। (2) उत्तरदाता पूछे गये प्रश्नों के उत्तर मौखिक रूप से देता है। (3) इस शाब्दिक आदान-प्रदान का उद्देश्य अनुसन्धान की आवश्यकता की पूर्ति होना अनिवार्य है।

**साक्षात्कार विधि में प्रश्नों के प्रकार:-** इस विधि में प्रश्नों का स्वरूप दो प्रकार का होता है

- (1) खुले प्रश्न जिसमें उत्तरदाता को कोई विकल्प नहीं दिया जाता। वह अपनी इच्छा के अनुरूप पूछे गये प्रश्न के उत्तर देता है। असामान्य व्यवहार सम्बन्धी अध्ययनों में साक्षात्कार के दौरान प्रायः खुले प्रश्नों का प्रयोग किया जाता है।
- (2) बन्द प्रश्न इसमें पूछे गये प्रश्न के विकल्प भी दिये रहते हैं और उत्तरदाता को उनमें से एक विकल्प का चयन करना पड़ता है।

### 3.4.2 साक्षात्कार के प्रकार

(1) **मानकीकृत साक्षात्कार** - इसमें उत्तरदाता से पूछे जाने वाले प्रश्नों का निर्धारण साक्षात्कार प्रारम्भ करने के पूर्व ही कर लिया जाता है। प्रश्नों की भाषा, प्रश्नों का क्रम तथा संख्या सुनिश्चित रहती है। इसमें

साक्षात्कारकर्ता को शब्दों को बदलने या प्रश्नों के क्रम को बदलने या नये प्रश्न गठित करने की स्वतंत्रता नहीं दी जाती है। असामान्य व्यवहार तथा नैदानिक साक्षात्कारों में साक्षात्कार का यह रूप बहुत ही कम किया जा सकता है।

**(2) अमानकीकृत साक्षात्कार** - इसमें प्रश्नों की भाषा, क्रम संख्या आदि का निर्धारण पहले से नहीं किया जाता है। साक्षात्कारकर्ता के सामने केवल साक्षात्कार करने का उद्देश्य स्पष्ट रहता है। उसे प्रश्नों की भाषा, क्रम संख्या तथा नये प्रश्न गठित करने की स्वतंत्रता होती है। वह रोगी के अनुसार अपनी बुद्धि-विवेक द्वारा प्रश्नों को घटा-बढ़ा सकता है। इसमें पूछे गये प्रश्न मुक्त अथवा खुले हुये होते हैं।

**असामान्य व्यवहार के अध्ययन में साक्षात्कार:-** असामान्य व्यवहार के अध्ययन में नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा इसका प्रयोग बहुत पहले से हो रहा है। साक्षात्कार व्यवहार को समझने का एक महत्वपूर्ण ढंग है। असामान्य व्यवहार के अध्ययन में ज्यादातर अमानकीकृत/ असंरचित साक्षात्कार का उपयोग होता है। इसमें प्रश्न भी खुले हुये होते हैं। इससे मानसिक रोगी के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त की जा सके। इन साक्षात्कारों का उद्देश्य रोग का निदान करना हो सकता है जिससे रोगी के मानसिक रोग के स्वरूप तथा रोग के कारणों की जानकारी प्राप्त हो सके। असामान्य व्यवहार अत्यन्त जटिल तथा गहन है। साक्षात्कार के अमानकीकृत होने के कारण तथा खुले प्रश्नों के उपयोग के कारण साक्षात्कारकर्ता अत्यन्त गहराई में जा सकता है क्योंकि उसे उत्तरदाता के उत्तरों के आधार पर बीच-बीच में प्रश्न पूछने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। इस प्रकार वह रोगी के विषय में गहराई से जानकारी प्राप्त कर सकता है।

### 3.4.3 साक्षात्कार के चरण या साक्षात्कार करने की विधि

साक्षात्कार का उपयोग करने में पर्याप्त अनुभव, कुशलता तथा सतर्कता की आवश्यकता होती है। साक्षात्कार किन उद्देश्यों के लिए किया जा रहा है और किन लोगों का किया जा रहा है, इसके आधार पर एक साक्षात्कार प्रक्रिया के निम्नलिखित चरण हो सकते हैं।

**1. पूर्व तैयारी:** जब साक्षात्कार विधि का प्रयोग करना होता है तो इसके लिए पूर्व तैयारी करना आवश्यक है। सबसे पहले साक्षात्कारकर्ता को यह निश्चित कर लेना चाहिये कि वह मानकीकृत या अमानकीकृत साक्षात्कार में से किसे चुनेगा। साक्षात्कार के लिए प्रश्न खुले होंगे या बन्द, प्रश्नों की भाषा कैसी होगी, उनकी संख्या कितनी होगी आदि। अध्ययनरत सैम्पल का चयन, साक्षात्कार का स्थान, समय, संभावित अड़चनों, प्रयुक्त उपकरणों आदि के विषय में पूर्व तैयारी करना आवश्यक है।

**2. मित्रतापूर्ण वातावरण का निर्माण:** साक्षात्कारकर्ता तथा उत्तरदाता के बीच प्रेमपूर्ण तथा विश्वासपूर्ण सम्बन्ध का स्थापित होना आवश्यक होता है तभी उत्तरदाता से उसके बारे में सही-सही जानकारी प्राप्त की जा सकती है। स्वयं को तटस्थ, सम्मानित तथा साक्षात्कार को गम्भीरता से लेने वाले व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करना चाहिए तथा रोगी के प्रति रुचि भी दिखानी चाहिये। कुल मिलाकर उसे रोगी का विश्वास जीत कर मित्रतापूर्वक व्यवहार दिखाना चाहिये।

**3. साक्षात्कार की प्रक्रिया:-** जब साक्षात्कार की पूरी तैयारी हो जाये तथा उत्तरदाता के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो जाये तो उससे प्रश्न पूछने आरम्भ करने चाहिए। प्रारम्भ में उसका नाम, स्थान, काम तथा

माता-पिता के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करनी चाहिये। इसके पूर्व तैयारी इसके बाद अपने अनुसन्धान की आवश्यकता के अनुरूप प्रश्न पूछना चाहिये। प्रश्नों की भाषा सरल तथा स्पष्ट होनी चाहिये।

**4. साक्षात्कार की समाप्ति:-** जब अनुसन्धानकर्ता को रोगी से उसके बारे में सभी जानकारियाँ मिल जाती है तथा अनुसन्धान से सम्बन्धित कोई पक्ष छूटता नहीं है। तब उसे धन्यवाद एवं मुस्कराहट के साथ साक्षात्कार को समाप्त कर देना चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर फिर से मिलने का आश्वासन देते हुये साक्षात्कार समाप्त करना चाहिये।

**5. साक्षात्कार अंकन:-** अंकन या रिकार्डिंग रोगी के साथ किये गये साक्षात्कार की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। साक्षात्कार के दौरान ही रोगी द्वारा दी गई जानकारियों का अंकन करना चाहिए, क्योंकि विस्मरण आदि कारक उत्तरों की को अशुद्धता कर सकते हैं, साथ ही उनका अंकन करते रहना चाहिये। इसके लिये यन्त्रों तथा उपकरणों का उपयोग किया जाना चाहिये।

**6. तथ्यों का विश्लेषण:-** रोगी द्वारा जो भी जानकारियाँ प्राप्त होती है उसकी कोडिंग, सारणी बनानी चाहिए। उन्हें किसी कोड या नम्बर प्रदान करके सांख्यिकीय पद्धतियों से विश्लेषण करना चाहिये।

**7. प्रतिवेदन (रिपोर्ट) का प्रस्तुतीकरण:-** साक्षात्कार की (प्रतिवेदन) रिपोर्ट सरल ढंग से की जानी चाहिये। इसमें साक्षात्कारकर्ता को स्वयं कोई भी सामग्री को नही जोड़ना चाहिये। इसमें साक्षात्कार की वैधता तथा विश्वनीयता का उल्लेख करना जरूरी होता है।

**8. निष्कर्ष:-** प्रतिवेदन को साक्षात्कारकर्ता अपने सहयोगियों तथा उस विषय के अन्य जानकारों के साथ विचार-विमर्श कर सकता है। साक्षात्कार विधि सरल होने के साथ-साथ जटिल भी है इसके लिये पूर्ण सावधानी, सतर्कता तथा धैर्य की आवश्यकता होती है।

### 3.4.4 गुण

- 1) साक्षात्कार का उपयोग बड़े जन समुदाय पर किया जा सकता है।
- 2) साक्षात्कार की विधि लचीली होती है जिस कारण अनुसन्धान के उद्देश्य के अनुरूप उसमें परिवर्तन किया जा सकता है।
- 3) साक्षात्कारकर्ता उत्तरदाता की मौखिक प्रतिक्रियाओं को ज्ञात करता है साथ ही उत्तर देते समय उसके व्यवहार का निरीक्षण भी करता रहता है।
- 4) अधिक गहन साक्षात्कार द्वारा सूक्ष्म जानकारी एकत्रित की जा सकती है।
- 5) व्यक्तियों के पूर्व अनुभवों, विश्वासों, भावनाओं, अभिवृत्तियों का ज्ञान साक्षात्कार द्वारा प्राप्त करना संभव है।

### 3.4.5 दोष

- 1) जब मानसिक रोगियों या समस्याग्रस्त व्यक्तियों के लिए साक्षात्कार का प्रयोग किया जाता है तो इसके लिए पर्याप्त प्रशिक्षण, अनुभव होना जरूरी होता है। इस श्रेणी के साक्षात्कारकर्त्ताओं की कमी रहती है।
- 2) जो लोग उत्तर देने में संकोच, असुविधा या वास्तविकता को बताने में डरते हैं उनका साक्षात्कार करना कठिन है।
- 3) साक्षात्कार में उत्तरदाता अनेक बार गुमराह कर सकता है।
- 4) उत्तरों की गोपनीयता प्रश्नावली की तुलना में कम रहती है।

### 3.4.6 नैदानिक साक्षात्कार के उद्देश्य

नैदानिक साक्षात्कार का सामान्य उद्देश्य नैदानिक मूल्यांकन के लिए महत्वपूर्ण आँकड़ों को एकत्र करना होता है। इसके अलावा इस तरह के साक्षात्कार के कुछ विशिष्ट उद्देश्य भी होते हैं जो निम्नलिखित हैं-

- i) नैदानिक कार्य को सम्पन्न करने के लिए आपसी संबंध स्थापित करना।
- ii) रोगी की समस्याओं के बारे में महत्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त करना।
- iii) अपनी समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए तथा अपने-आप को उन्नत बनाने के लिए।

#### नैदानिक साक्षात्कार के प्रकार-

नैदानिक साक्षात्कार के कई प्रकार हैं। जिनमें से दो महत्वपूर्ण प्रकार निम्नलिखित हैं-

- 1) केस इतिहास साक्षात्कार
- 2) मानसिक स्थिति परीक्षण।

### 3.5 केस-इतिहास साक्षात्कार -

केस-इतिहास साक्षात्कार जिसे सामाजिक-इतिहास साक्षात्कार भी कहा जाता है। इस विधि द्वारा रोगी को व्यक्तिगत एवं सामाजिक इतिहास तैयार किया जाता है। इस तरह के साक्षात्कार में बचपन तथा वयस्कावस्था की अनुभूतियों के बारे में सूचना एकत्रित की जाती है। इसमें शैक्षिक, लैंगिक, मेडिकल, धार्मिक, माता-पिता के प्रभावों एवं मनोविकृतियों से संबंधित तथ्यों को सम्मिलित किया जाता है। इसमें रोगी की सांवेगिक अनुभूतियों की समस्याओं की खोज एवं पहचान पर कम ध्यान डाला जाता है।

केस इतिहास साक्षात्कार से रोगी के बारे में जो आँकड़े तैयार होते हैं, उसका विशेष फायदा यह होता है कि उसके माध्यम से रोगी के व्यक्तित्व एवं कार्य को समझने में काफी मदद मिलती है।

सुन्डवर्ग (1977) ने केस साक्षात्कार का एक प्रारूप तैयार किया है जिसके माध्यम से रोगी के बारे में महत्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त की जा सकती हैं। इस प्रारूप में निम्नलिखित 16 एकांशों को रखा गया है-

- i) **पहचान संबंधी आँकड़े** -इसमें रोगी का नाम, यौन, पेशा, पता, जन्म-तिथि, जन्म स्थान, धर्म तथा शिक्षा आदि के बारे में सूचनायें एकत्रित की जाती हैं।
- ii) **उपचार गृह** -इसमें आने का कारण तथा वहाँ की सेवाओं के बारे में रोगी की प्रत्याशाओं या उम्मीद।

- iii) **वर्तमान परिस्थिति** -इसमें रोगी अपने दिन-प्रतिदिन के व्यवहार के बारे में बतलाता है वह वर्तमान में स्वयं क्या परिवर्तन चाहता है।
- iv) **पारिवारिक समूह** -इसमें रोगी से उसके परिवार के सदस्यों के व्यवहारों जैसे- माता के व्यवहार, पिता के व्यवहार तथा परिवार के अन्य सदस्यों के व्यवहारों के बारे में सूचना प्राप्त की जाती है। रोगी अपने परिवार के लिए सदस्यों की भूमिकाओं को बतलाता है।
- v) **प्रारम्भिक स्मृति** -इसमें रोगी अपने बचपन की प्रमुख घटनाओं एवं स्मृतियों के बारे में बताता है।
- vi) **जन्म एवं विकास** - इसमें रोगी या उसके बारे में जानकारी रखने वाला कोई भी व्यक्ति यह बतलाता है कि उसने किस उम्र में चलना प्रारंभ किया था, किस उम्र में बोलना प्रारंभ किया था, अपने उम्र के अन्य बच्चों की तुलना में उनकी कौन-कौन सी समस्याएँ थी तथा रोगी अपने बचपन की अनुभूतियों के प्रति कैसा विचार रखता था।
- vii) **स्वास्थ्य** -बचपन में उसका स्वास्थ्य कैसा था, अभी उसका स्वास्थ्य कैसा है? किसी गंभीर बिमारी से तो वह प्रभावित नहीं था या है, उसे कोई दवा या अल्कोहल लेने से संबंधित समस्या तो नहीं थी याहै आदि के बारे में रोगी बताता है।
- viii) **शिक्षा** - इसमें रोगी अपनी शिक्षा-दीक्षा के स्तर के बारे में बतलाता है तथा वह अपनी विशेष अभिरूचियों एवं उपलब्धियों के बारे में भी बताता है।
- ix) **कार्य रिकार्ड** - वह कौन-सा नौकरी या कार्य करता है, उस कार्य से वह संतुष्ट है या नहीं।
- x) **अभिरूचियाँ** -इसमें रोगी अपने ऐच्छिक कार्य, पढ़ाई, अभिरूचि, हॉबी आदि के बारे में बतलाता है।
- xi) **लैंगिक विकास** -इसमें रोगी अपने प्रथम लैंगिक अनुभूतियों को बतलाता है तथा लैंगिक क्रियाओं के प्रकार के बारे में भी बतलाता है।
- xii) **पारिवारिक आँकड़े** -इसमें वैवाहिक जिन्दगी की संतुष्टि के बारे में, अपने बच्चों के बारे में तथा उनके साथ सम्बन्धों को बताता है।
- xiii) **आत्मवर्णन** - इसमें रोगी अपने कमजोरियों, विशेषताओं एवं अपने आदर्शों के बारे में बतलाता है।
- ixx) **पसंद एवं निर्णय** -यहाँ रोगी अपने जीवन के सबसे महत्वपूर्ण पसंद, निर्णयों को बताता है।
- xx) **भविष्य के प्रति सोच** -यहाँ रोगी अगले कुछ वर्षों में क्या घटने की उम्मीद करता है। वह भविष्य के बारे में क्या सोचता है? भविष्य के प्रति कोई आशंका या डर तो नहीं है।
- xxi) **अन्य कोई सूचना** -यहाँ रोगी को अपने बारे में वैसी सूचना देने को कहा जाता है जिसे अबतक उसे पूछा नहीं गया हो या कोई ऐसी बात जो उसे परेशान करती है और जिसके सम्बन्ध में वह किसी अन्य से बात नहीं कर पाता है।

केस-इतिहास साक्षात्कार में उपरोक्त सूचनाओं को रोगी से ही पूछा जाता है। परन्तु कभी-कभी विशेष परिस्थिति में जैसे जब रोगी छोटा बालक है या किसी कारण से सूचना देने योग्य नहीं है या मानसिक रूप से दुर्बल है तो वैसी परिस्थिति में रोगी के परिवार का कोई सदस्य रोगी के बारे में जानकारी देता है।

### 3.6 व्यक्तित्व मापन सम्बन्धी मूल विवाद-विषय

यह एक एक असंरचित मानसिक स्थिति परीक्षण है मानसिक स्थिति परीक्षा या मानसिक स्थिति साक्षात्कार को साक्षात्कार का ही एक विशेष रूप माना गया है। इस तरह के साक्षात्कार का महत्व अधिक है। मानसिक अस्पतालों में अधिक गंभीर रूप से भर्ती हुए मानसिक रोगियों के लिये किया जाता है। यह एक ऐसा विशेष साक्षात्कार होता है, जिसमें चिकित्सक रोगी के बारे में सभी सूचनाओं को निरीक्षण द्वारा एकत्र करता है। ये साक्षात्कार मेडिकल डाक्टरों द्वारा रोगी का किये गये शारीरिक परीक्षण के समान होता है। इसमें कुछ खास-खास निश्चित प्रश्नों को रोगी से पूछा जाता है। चिकित्सक प्राप्त आँकड़ों के आधार पर एक और अन्त में रोगी के बारे में एक ऐसे निश्चित निदान पर पहुँचते हैं। जिससे कि रोगी के लक्षणों, उसके रोग की गंभीरता, इतिहास तथा भविष्य में होने वाले व्यवहार के बारे में पता चलता है। इस तरह की परीक्षा पूरे साक्षात्कार के दौरान चलती है। बेल्स एवं रूस्क (1945) के अनुसार इस तरह के साक्षात्कार में रोगी की अभिव्यक्ति, व्यवहार, संवेग, मनोदशा, चिन्तन, बुद्धि तथा असामान्य व्यवहारों जैसे दुर्भ्रंति एवं व्यामोही विचार आदि पर अधिक ध्यान दिया जाता है। मानसिक स्थिति परीक्षा में नैदानिक मनोवैज्ञानिक या चिकित्सक मुख्य रूप से निम्नलिखित सूचनायें प्राप्त करने की कोशिश करते हैं।

- 1) **सामान्य व्यवहार** - इसके तहत नैदानिक विशेषज्ञ रोगी के हाव-भाव, पोशाक, व्यक्तिगत स्वास्थ्य, उसकी सक्रियता स्तर आदि पर विशेष रूप से ध्यान, देते हैं और उसके व्यवहार का प्रेक्षण करते हैं।
- 2) **बातचीत एवं चिन्तन** - यहाँ नैदानिक विशेषज्ञ इस बात का निरीक्षण करते हैं कि क्या रोगी बातचीत ठीक तरह से करता है? क्या वह एक सामान्य रूप से बात-चीत करता है? रोगी बहुत देर तक बात-चीत के दौरान चुप रहता है? क्या रोगी को अपने भावों को व्यक्त करने में कठिनाई का अनुभव होता है?
- 3) **ध्यान** - नैदानिक मनोवैज्ञानिक रोगी की चेतना से सम्बन्धित प्रश्नों को जानते हैं। क्या रोगी सतर्क तथा ध्यानमग्न रहता है? आदि
- 4) **प्रत्यक्षण** - क्या रोगी का प्रत्यक्षण सामान्य है? उसमें विभ्रम आदि तो नहीं हैं।
- 5) **मनोग्रन्थि एवं बाध्यता** - क्या रोगी में बाध्यतापूर्ण व्यवहार दिखाई देता है। (जैसे, बार-बार अपने नब्ज की जाँच करना) आदि घूँ क्या रोगी के दिमाग में एक ही तरह के विचार आते हैं?
- 6) **स्मृति** - क्या रोगी पहले घटी घटनाओं के बारे में बतला पाता है? क्या कुछ सेकंड या मिनट पहले की घटनाओं को याद रख पाता है?
- 7) **ध्यान** - क्या रोगी का ध्यान आसानी से हट जाता है। वह किसी वस्तु या घटना पर ध्यान लम्बे समय तक लगा पाता है
- 8) **सामान्य ज्ञान** - रोगी से उसके सामान्य ज्ञान से सम्बन्धित सूचनाओं को पूछा जाता है और उसके बारे में निष्कर्ष निकाला जाता है।
- 9) **बौद्धिक क्षमता** - इसमें रोगी की बुद्धि से सम्बन्धित सूचनाएँ एकत्र की जाती हैं। इनसे सम्बन्धित प्रश्नों को पूछकर उसके बौद्धिक स्तर का पता लगाया जाता है।
- 10) **निर्णय क्षमता** - क्या रोगी अपनी समस्याओं को ठीक तरह से बता पाता है? क्या उसके अन्दर निर्णय लेने क्षमता है या नहीं। चिकित्सक उसकी सूझ एवं निर्णय क्षमता से सम्बन्धित प्रश्न करते हैं।

**दोष**

- i) मानसिक स्थिति परीक्षण में रोगी जो उत्तर देता है उनकी जाँच या व्याख्या पूर्ण रूप से नहीं हो पाती है।
- ii) इस तरह की असंरचित मानसिक स्थिति परीक्षा में सही आँकड़ें प्राप्त नहीं हो पाते हैं। इस कारण उनकी व्याख्या अधूरी ही रहती है।

असंरचित मानसिक स्थिति परीक्षण में कुछ कमियाँ होने के कारण संरचित मानसिक स्थिति परीक्षण विकसित किये गये हैं। इनमें सबसे लोकप्रिय 'मिनी मेंटल स्टेट्स एक्जामिनेशन' है। इस परीक्षा में कुल 30 एकांश या पद हैं जिनका उत्तर देने में 10 मिनट का समय लगता है। इसके द्वारा उन्मुखता, पुनःस्मरण, लघुकालीन स्मृति, अवधान/ध्यान, भाषा बोध आदि का निरीक्षण किया जाता है। इस परीक्षा की खासियत यह है कि इसका मानक भी उपलब्ध है। जिसकी तुलना सामान्य व्यक्ति के साथ की जा सकती है। इसके आधार पर एक अर्थपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। इस मानसिक स्थिति परीक्षण का दोष यह है कि यह रोगी के लिखित एवं शाब्दिक अनुक्रियाओं पर अधिक बल डालता है। इसलिए इसका उपयोग उन रोगियों के लिए नहीं होता है, जिनको केवल एक ही भाषा का ज्ञान होता है।

**स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न**

1. किसी व्यक्ति या समूह के सम्बन्ध में गहन अध्ययन हेतु एक महत्वपूर्ण विधि..... है।
2. ....साक्षात्कार में प्रश्नों की भाषा, क्रम संख्या आदि का निरीक्षण पहले ही कर लिया जाता है।
3. ....साक्षात्कार का ही एक विशेष प्रारूप है।
4. व्यक्ति द्वारा अपने विचारों, चिन्तन एवं संवेगों का स्वयं निरीक्षण एवं रिकार्डिंग ..... कहलाता है।
5. रोशा स्याही धब्बा परीक्षण में कुल.....कार्ड होते हैं। जिसमें .....कार्ड सफेद तथा.....कार्ड रंगीन होते हैं।

**3.7 सारांश**

- i) नैदानिक मूल्यांकन के अन्तर्गत विधियों का अध्ययन करके रोगी के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।
- i) नैदानिक मूल्यांकन एक जटिल प्रक्रिया होती है। जिसमें चिकित्सक रोगी के बारे में अलग-अलग स्रोतों से आँकड़े इकट्ठा करके उसके व्यवहार का अध्ययन करता है।
- i) नैदानिक मूल्यांकन के अन्तर्गत निम्न प्रविधियाँ सम्मिलित हैं- केस अध्ययन विधि, नैदानिक साक्षात्कार, निरीक्षण विधि और मनोवैज्ञानिक परीक्षण आदि।

**3.8 शब्दावली**

1. प्रतिवेदन (रिपोर्ट) - किसी भी परीक्षण विधि के सारे चरण पूर्ण हो जाने के बाद उसकी क्रमबद्ध तरीके से प्रस्तुति।
2. दुर्भीति (डर) - किसी निश्चित वस्तु, स्थान आदि के प्रति डर।
3. व्यामोही विचार - दूसरों के प्रति गलत विश्वास।
4. मनोग्रसित विचार - किसी विचार का बार-बार मन में आना, जिस पर रोगी का नियंत्रण नहीं रहता है।

- 
5. रक्षायुक्तियां - अपने अहम को बचाने के लिए प्रयोग किये जाने वाले विभिन्न तरीके।
  6. नैदानिक हस्तक्षेप - नैदानिक विधियों द्वारा किसी समस्या का उपचार करना।
- 

### 3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

---

1. जीवन इतिहास
  2. मानकीकृत या संरचित
  3. मानसिक स्थिति परीक्षण
  4. आत्म विमर्श या आत्म सलाह
  5. 10, 5, 5
- 

### 3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

---

1. उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह- मोतीलाल बनारसीदास
  2. असामान्य मनोविज्ञान: विषय और व्याख्या- डा0 मो0 सुलेमान, डा0 मो0 तौवाब-मोतीलाल बनारसीदास
- 

### 3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

---

- 1) नैदानिक मूल्यांकन का क्या अर्थ है? इसके विभिन्न चरणों का उल्लेख करिये।
- 2) नैदानिक साक्षात्कार को परिभाषित करिये? इसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन करिये।
- 3) नैदानिक साक्षात्कार के विभिन्न चरणों को समझाइये तथा इसके उद्देश्यों की व्याख्या करिये।
- 4) केस अध्ययन साक्षात्कार तथा मानसिक स्थिति परीक्षण के सविस्तार समझाइये।
- 5) केस अध्ययन विधि से क्या समझते है? इसके गुण एवं दोषों का वर्णन करिये।
- 6) नैदानिक प्रेक्षण/निरीक्षण के प्रकारों को समझाइये तथा इसके गुण व दोषों की विवेचना करिये।

---

**इकाई 4. निदान : अर्थ एवं वर्गीकरण का उद्देश्य; DSM-IV: विकृति या असामान्यता का वर्गीकरण (Diagnosis: Meaning and Purpose of Classification; DSM-IV: Classification of Abnormality)**

---

संरचना

4.1 परिचय

4.2 उद्देश्य

4.3 मनोविकृति विज्ञान के वर्गीकरण का अर्थ एवं उद्देश्य

4.4.1 साइकोपैथोलॉजी के वर्गीकरण के लिए दृष्टिकोण

4.4 मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण का इतिहास

4.4.1 प्राचीन काल में मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण

4.4.2 मध्य युग से पुनर्जागरण तक मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण

4.4.3 18वीं सदी मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण

4.4.4 19वीं सदी में मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण

4.4.5 20वीं सदी में मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण

4.4.6 21वीं सदी मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण

4.5 आईसीडी का विकास

4.5.1 आईसीडी (ICD)-10 में मानसिक विकारों का वर्गीकरण

4.6 मानसिक विकारों का निदान और सांख्यिकीय मैनुअल (डीएसएम)

4.6.1 डी.एस.एम के संशोधन

---

## 4.7 डी.एस.एम-5: डीएसएम का वर्तमान संस्करण

### 4.7.1 DSM-5 अनुभाग II

### 4.8 सारांश

### 4.9 निबंधात्मक प्रश्न

### 4.10 शब्दकोष

### 4.11 सन्दर्भ ग्रंथ

---

## 4.1 परिचय (Introduction)

---

वर्गीकरण को विज्ञान का मूल माना जाता है अतः लगभग विज्ञान की सभी विधाओं में वर्गीकरण प्रणाली को बहुतायत से प्रयोग किया जाता है। चूँकि मनोविज्ञान, वर्तमान विज्ञान की एक अहम् शाखा है जिसमें हम व्यक्ति/व्यक्तियों के व्यवहारों का न केवल अध्ययन करते हैं बल्कि उन व्यवहारों को परिभाषित या वर्गीकृत करने का प्रयास करते हैं। असामान्य मनोविज्ञान इस धारणा पर आधारित है कि व्यवहार एक श्रेणी या विकार का हिस्सा है न कि किसी अन्य का।

इस इकाई में मानसिक विकारों के वर्गीकरण का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया जाएगा। सबसे पहले, हम मानसिक विकारों के वर्गीकरण के अर्थ, उद्देश्य और दृष्टिकोण पर चर्चा करेंगे। इसके बाद मानसिक विकारों के वर्गीकरण के इतिहास का विवरण दिया जाएगा। फिर हम व्यापक रूप से उपयोग किए जाने वाले DSM-5, DSM के वर्तमान संस्करण पर चर्चा करेंगे। अंत में, DSM-5 का मूल्यांकन किया जाएगा।

---

## 4.2 उद्देश्य (Objective)

---

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-:

- मानसिक विकारों के वर्गीकरण का अर्थ, उद्देश्य और दृष्टिकोण को स्पष्ट रूप से समझ सकेंगे।
- मानसिक विकारों के वर्गीकरण के इतिहास का विवरण प्रस्तुत कर सकेंगे।

- मानसिक विकारों के वर्गीकरण के लिए ICD-10 की व्याख्या कर सकेंगे।
- मानसिक विकारों के वर्गीकरण की एक प्रणाली के रूप में डीएसएम के विकास को समझ सकेंगे।
- डीएसएम-वी का लेखा-जोखा प्रस्तुत कर सकेंगे; और डीएसएम-5 का मूल्यांकन कर सकेंगे।

---

#### 4.3 मनोविकृति विज्ञान के वर्गीकरण का अर्थ एवं उद्देश्य (Meaning and Objectives of the Classification of Psychopathology)

---

मनोविज्ञान विशेषकर नैदानिक मनोविज्ञान में व्यक्ति/व्यक्तियों से जुड़ी विभिन्न प्रकार की समस्याओं का विस्तृत विवरण दिया गया है जिसके द्वारा व्यक्ति न केवल उन समस्याओं की प्रकृति को समझ पाने में समर्थ होता है बल्कि इन समस्याओं के निराकरण के सन्दर्भ में भी ज्ञान अर्जित कर सकता है। चूँकि, नैदानिक मनोविज्ञान को मानसिक विकारों का महासागर कहा जाता है, इस स्थिति में अध्ययन की दृष्टि से हमें इन सभी समस्याओं के वर्गीकरण की आवश्यकता होती है जिससे हम सभी मनोवैज्ञानिक समस्याओं को सही ढंग से समझ सके। वर्गीकरण शब्द का तात्पर्य श्रेणियों के निर्माण और लोगों को उनकी विशेषताओं के आधार पर इन श्रेणियों में निर्दिष्ट करने की प्रक्रिया से है। वैज्ञानिक संदर्भ में वर्गीकरण, वर्गीकरण विज्ञान को संदर्भित करता है। इसे दूसरे शब्दों में किसी वस्तु, व्यक्ति, या परिस्थितियों के देश-काल और समाज के अनुसार नामकरण को दर्शाता है। उदाहरण के लिए किसी समाज की सभी महिलाओं को उनके लिंग के आधार पर एक श्रेणी विशेष में नामकरण कर दर्शाया जाता है। वर्गीकरण प्रत्येक विज्ञान के मूल में है। यदि हम वस्तुओं या अनुभवों या व्यवहारों को लेबल और क्रमबद्ध नहीं कर सकते हैं तो वैज्ञानिक एक दूसरे के साथ संवाद नहीं कर पाएंगे और हमारा ज्ञान आगे नहीं बढ़ेगा। वर्गीकरण का समाज विज्ञान विशेषकर मनोविज्ञान के नैदानिक क्षेत्र में विशेष महत्त्व है जिसमें मनोविज्ञान से सम्बंधित विभिन्न विकारों को वर्गीकृत किया जाता है। इसके अतिरिक्त असामान्य व्यवहार के पैटर्न को लेबल और व्यवस्थित किए बिना, शोधकर्ता अपने निष्कर्षों को एक-दूसरे तक नहीं पहुंचा सकते हैं, और इन विकारों के बारे में समझने और निर्णय लेने की दिशा में प्रगति रुक जाएगी। कुछ मनोवैज्ञानिक विकार एक थेरेपी पर दूसरे की तुलना में या एक दवा पर दूसरे की तुलना में बेहतर प्रतिक्रिया करते हैं।

वर्गीकरण चिकित्सकों को व्यवहार की भविष्यवाणी करने में भी मदद करता है। अंत में, वर्गीकरण शोधकर्ताओं को असामान्य व्यवहार के समान पैटर्न वाली आबादी की पहचान करने में मदद करता है। उदाहरण के लिए, लोगों के समूहों को उदास के रूप में वर्गीकृत करके, शोधकर्ता सामान्य कारकों की पहचान करने में सक्षम हो सकते हैं जो अवसाद की उत्पत्ति को समझने में मदद करते हैं। मनोचिकित्सा का वर्गीकरण निम्नलिखित पाँच प्राथमिक उद्देश्यों को पूरा करता है:

- I. संचार
- II. नियंत्रण
- III. समझ
- IV. भेद
- V. पूर्वानुमान/भविष्यवाणी

#### 4.4.1 मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण के दृष्टिकोण (Approaches to Psychological Classification)

मनोवैज्ञानिक विकारों को समझने के लिए उसका वर्गीकरण Classification करना आवश्यक है। मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण के दृष्टिकोणसे तात्पर्य समय-समय पर विभिन्न विद्वानों द्वारा मनोवैज्ञानिक समस्याओं के अध्ययन और इसके वर्गीकरण के सन्दर्भ में व्यक्त किये गये विचारों से है जिसे अध्ययन की दृष्टि से निम्न प्रकार से समझा जा सकता है:-

### चित्र सं 4.1: मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण के दृष्टिकोण

मनोवैज्ञानिक विकारों को वर्गीकृत करने के लिए तीन दृष्टिकोण या रणनीतियों का उपयोग करते हैं:

I. **श्रेणीबद्ध दृष्टिकोण (Hierarchical Approach):** क्रेपेलिन पहला मनोचिकित्सक था जिसने मनोवैज्ञानिक विकारों को जैविक या चिकित्सीय दृष्टिकोण से वर्गीकृत करने का प्रयास किया। शारीरिक विकारों के संदर्भ में क्रेपेलिन ने प्रेरक कारकों का एक सेट दिया जो अन्य विकारों के साथ अतिछादन (overlap) नहीं करता है। इसके अतिरिक्त क्रेपेलिन द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण को एक परिभाषित मानदंड के रूप में स्वीकार किया जाता है जो श्रेणी या समूह के प्रत्येक कारक का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है। वर्गीकरण का श्रेणीबद्ध दृष्टिकोण यह मानता है कि विभिन्न श्रेणियों के सदस्यों के बीच अंतर गुणात्मक होते हैं। दूसरे शब्दों में, अंतर राशि (मात्रा) में अंतर के बजाय प्रकार (गुणवत्ता) में दर्शाते हैं।

II. **आयामी दृष्टिकोण (Dimensional approach):** दूसरी रणनीति एक आयामी दृष्टिकोण है, जिसमें हम रोगी द्वारा प्रस्तुत विभिन्न अनुभूतियों, मनोदशाओं और व्यवहारों को नोट करते हैं और उन्हें एक पैमाने पर मापते हैं। उदाहरण के लिए, 1 से 10 के पैमाने पर, एक मरीज को भावनात्मक कार्यप्रणाली (10, 5, 2) के प्रोफाइल बनाने के लिए गंभीर रूप से चिंतित (10), मध्यम रूप से उदास (5), और हल्के से उन्मत्त (2) के रूप में दर्जा दिया जा सकता है। यद्यपि मनोविकृति विज्ञान में आयामी दृष्टिकोण लागू किए गए हैं, वे अपेक्षाकृत असंतोषजनक हैं। वर्गीकरण के लिए आयामी दृष्टिकोण निरंतर आयामों के संदर्भ में वर्गीकरण की वस्तुओं का वर्णन करता है। यह मानने के बजाय कि किसी वस्तु में कोई विशेष गुण है या नहीं है, किसी विशिष्ट विशेषता पर ध्यान केंद्रित करना और यह निर्धारित करना उपयोगी हो सकता है कि वस्तु उस विशेषता का कितना हिस्सा प्रदर्शित करती है।

III. **प्रोटोटाइपिक दृष्टिकोण (Prototypical approach):** व्यवहार संबंधी विकारों को व्यवस्थित और वर्गीकृत करने के लिए एक तीसरा दृष्टिकोण, जो पहले दो का एक विकल्प है इसे प्रोटोटाइपिक दृष्टिकोण कहा जाता है। यह किसी विकार की कुछ आवश्यक विशेषताओं की पहचान करता है और यह कुछ गैर-

आवश्यक विविधताओं की भी अनुमति देता है। विभिन्न संभावित विशेषताओं या गुणों के आधार पर विकार को वर्गीकृत करने के इस दृष्टिकोण के साथ, किसी भी उम्मीदवार को उस श्रेणी में आने के लिए उनमें से (लेकिन सभी को नहीं) पूरा करना होगा।

### 3.4 मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण का इतिहास (History of Psychological Classification)

**4.4.1 प्राचीन काल (Ancient time):** प्राचीन ग्रीस में, हिप्पोक्रेट्स और उनके अनुयायियों को आमतौर पर मानसिक बीमारियों की पहचान करने के लिए बनायी पहली वर्गीकरण प्रणाली बनाने का श्रेय दिया जाता है, जिसमें उन्माद, उदासी, व्यामोह, फोबिया और सीथियन रोग (ट्रांसवेस्टिज्म) शामिल हैं। उनका मानना था कि ये चार पित्त (Bile) में विभिन्न प्रकार के असंतुलन के कारण थे।

**4.4.2 मध्य युग से पुनर्जागरण तक (Middle ages to Renaissance):** फ़ारसी चिकित्सक 'अली इब्न अल-अब्बास अल-मजुसी और नजीब एड-दीन समरकंदी ने हिप्पोक्रेट्स की वर्गीकरण प्रणाली पर प्रकाश डाला। कैनन ऑफ़ मेडिसिन में एविसेना (980–1037 सीई) ने "निष्क्रिय पुरुष समलैंगिकता" सहित कई मानसिक विकारों को सूचीबद्ध किया तो वहीं थॉमस सिडेनहैम (1624-1689), ने नैदानिक अवलोकन और निदान पर जोर देते हुए एक की ऐसी अवधारणा विकसित करी जो सामान्य पाठ्यक्रम से संबंधित लक्षणों को एक समूह में वर्गीकृत करता है।

**4.4.3 18वीं सदी (18th Century):** पुनर्जागरण और ज्ञानोदय के बाद 18वीं और 19वीं शताब्दी के अंत में मनोचिकित्सा ([psychopathology](#)) (शाब्दिक रूप से मन की बीमारियों का जिक्र) की वैज्ञानिक अवधारणाओं ने जोर पकड़ा। व्यक्तिगत व्यवहार जिनके सन्दर्भ में लम्बे से अध्ययन किया जा रहा था, उन्हें सिंड्रोम में समूहीकृत किया गया। बोइसिएर डी सॉवेज ([Boissier de Sauvages](#)) जो कि एक फ्रेंच फिजीशियन और बोटानिस्ट थे ने 18वीं सदी के मध्य में थॉमस सिडेनहैम ([Thomas Sydenham](#)) की मेडिकल नोसोलॉजी ([nosology](#)) नोसोलॉजी मेडिकल साइंस की एक ब्रांच है जो बीमारियों के वर्गीकरण से सम्बंधित है।

और कार्ल लिनिअस (Carl Linnaeus) की जैविक वर्गीकरण (taxonomy) से प्रभावित होकर मनोरोगों का एक अत्यंत व्यापक वर्गीकरण विकसित किया। यह 2400 चिकित्सीय रोगों के उनके वर्गीकरण का केवल एक हिस्सा था। इन्हें 10 "वर्गों" में विभाजित किया गया था, जिनमें से एक में अधिकांश मानसिक रोग शामिल थे, जिन्हें चार "ऑर्डर" और 23 "जेनेरा" (genera) में विभाजित किया गया था। एक जीनस (genus), मेलनकोलिया (melancholia), को 14 "प्रजातियों" (species) में विभाजित किया गया था। विलियम कुलेन (William Cullen) ने एक प्रभावशाली मेडिकल नोसोलॉजी को आगे बढ़ाया जिसमें न्यूरोसिस के चार वर्ग शामिल थे: कोमा (coma), एडिनमियास (adynamias), ऐंठन (spasms) और वेसानिया (vesanias)। वेसानिया में मनोभ्रंश (amentia), उदासी (melancholia), उन्माद (mania) और वनिरोडोनिया (oneirodynia) शामिल थे। 18वीं सदी के अंत और 19वीं सदी में, कुलेन की योजना से प्रभावित होकर, पिनल (Pinel) ने अपनी खुद की शब्दावली विकसित की, और फिर से जेनेरा (genera) और प्रजातियों की शब्दावली को नियोजित किया। इससे उनके सरलीकृत संशोधन ने सभी मानसिक बीमारियों को चार बुनियादी प्रकारों में कम कर दिया। उन्होंने तर्क दिया कि मानसिक विकार अलग-अलग इकाइयां नहीं हैं बल्कि एक ही बीमारी से उत्पन्न होती हैं जिसे उन्होंने "मानसिक अलगाव" (Mental alienation) कहा।

**4.4.4 19वीं सदी (19th Century):** पिनल (Pinel) के उत्तराधिकारी एस्क्वरोल (Esquirol) ने पिनल की श्रेणियों को पाँच तक बढ़ा दिया। दोनों ने विक्षिप्तता ((उन्माद और मनोभ्रंश सहित) के विपरीत मानसिक मंदता (Mental retardation) के बीच अंतर स्पष्ट किया। एस्क्वरोल ने मोनोमेनिया (monomania) की एक अवधारणा विकसित की - एक विषय पर आवधिक भ्रमपूर्ण निर्धारण या अवांछनीय स्वभाव - जो एक व्यापक और सामान्य निदान बन गया और 19 वीं शताब्दी के अधिकांश समय में लोकप्रिय संस्कृति का एक हिस्सा बन गया। जेम्स प्राइसहार्ड (James Prichard) द्वारा गढ़ा गया "नैतिक पागलपन" ("moral insanity") का निदान भी लोकप्रिय हुआ; इस स्थिति वाले लोग भ्रमित या बौद्धिक रूप से कमजोर नहीं लग रहे थे बल्कि उनमें भावनाएं या व्यवहार अव्यवस्थित लग रहा था। वानस्पतिक वर्गीकरण दृष्टिकोण को 19वीं सदी में छोड़ दिया गया, एक शारीरिक-नैदानिक दृष्टिकोण के पक्ष में जो तेजी से वर्णनात्मक हो गया। उन्माद के विशेष रूपों में शामिल विशेष

मनोवैज्ञानिक संकाय की पहचान करने पर ध्यान केंद्रित किया गया था, जिसमें फ्रेनोलॉजी भी शामिल थी, हालांकि कुछ लोगों ने अधिक केंद्रीय "एकात्मक" कारण के लिए तर्क दिया। फ्रांसीसी और जर्मन मनोचिकित्सीय नास्तिकता प्रभुत्व में थी। शब्द "मनोचिकित्सा" ("साइकिएट्री") जर्मन चिकित्सक जोहान क्रिश्चियन रील द्वारा 1808 में ग्रीकसाइको ("आत्मा या मन") और आर्ट्रोस ("हीलर या डॉक्टर") से गढ़ा गया था। शब्द "अलगाव" ने फ्रांस में एक मनोरोग संबंधी अर्थ ग्रहण कर लिया, जिसे बाद में चिकित्सा अंग्रेजी में अपनाया गया। मनोविकृति और न्यूरोसिस शब्द प्रयोग में आए, पहले को मनोवैज्ञानिक रूप से देखा गया और दूसरे को न्यूरोलॉजिकल रूप सोसदी के उत्तरार्ध में, कार्ल कहलबौम और इवाल्ड हेकर ने सिंड्रोम का एक वर्णनात्मक वर्गीकरण विकसित किया, जिसमें डिस्टीमिया, साइक्लोथिमिया, कैटेटोनिया, पैरानोइया और हेबेफ्रेनिया जैसे शब्दों का इस्तेमाल किया गया। विल्हेम ग्रिज़िंगर (1817-1869) ने मस्तिष्क विकृति विज्ञान की अवधारणा पर आधारित एक एकात्मक योजना को आगे बढ़ाया। फ्रांसीसी मनोचिकित्सकों जूलस बाइलार्गर (Jules Baillarger) ने "folie à double forme" का वर्णन किया और जीन-पियरे फाल्रेट (Jean-Pierre Falret) ने "la folie circulaire" का वर्णन किया - उन्माद और अवसाद का परिवर्तन। किशोर पागलपन या विकासात्मक पागलपन की अवधारणा को 1873 में स्कॉटिश शरण अधीक्षक और मानसिक रोगों के व्याख्याता थॉमस क्लॉस्टन द्वारा आगे बढ़ाया गया था, जिसमें एक मनोवैज्ञानिक स्थिति "द्वितीयक मनोभ्रंश" का वर्णन किया गया था जो आम तौर पर 18-24 वर्ष की आयु के लोगों, विशेष रूप से पुरुषों को प्रभावित करती है, और 30% मामलों में आगे बढ़ती है। हिस्टीरिया की अवधारणा लंबे समय से इस्तेमाल की जाती रही है, शायद प्राचीन मिस्र के समय से, और बाद में फ्रायड द्वारा अपनाया गया था। एक विशिष्ट सिंड्रोम का वर्णन जिसे अब सोमाटाइजेशन डिसऑर्डर के नाम से जाना जाता है, सबसे पहले 1859 में फ्रांसीसी चिकित्सक, पॉल ब्रिकेट द्वारा विकसित किया गया था। एक अमेरिकी चिकित्सक, बियर्ड ने 1869 में "न्यूरस्थेनिया" का वर्णन किया था। जर्मन न्यूरोलॉजिस्ट वेस्टफाल ने "ऑब्सेसिव न्यूरोसिस" शब्द गढ़ा था जिसे अब मनोग्रन्थता बाध्यता कहा जाता है।

एलियनवादियों (Alienists) ने निदान की एक पूरी नई श्रृंखला बनाई, जिसमें क्लेप्टोमैनिया, डिप्सोमैनिया, पायरोमैनिया और निम्फोमैनिया जैसे एकल, आवेगी व्यवहार पर प्रकाश डाला गया। उपयुक्त भूमिका से बचने

की कोशिश कर रहे काले दासों की कथित अतार्किकता को समझाने के लिए दक्षिणी संयुक्त राज्य अमेरिका में ट्रेपेटोमेनिया का निदान भी विकसित किया गया था। समलैंगिकता का वैज्ञानिक अध्ययन 19वीं शताब्दी में शुरू हुआ, जिसे अनौपचारिक रूप से या तो प्राकृतिक या एक विकार के रूप में देखा गया। क्रेपेलिन ने इसे अपने कंपेंडियम डेर साइकेट्री में एक विकार के रूप में शामिल किया जिसे उन्होंने 1883 से लगातार संस्करणों में प्रकाशित किया। 19वीं सदी के अंत में, कोच ने "मनोरोगी हीनता" को नैतिक पागलपन के लिए एक नए शब्द के रूप में संदर्भित किया। 20वीं शताब्दी में यह शब्द "साइकोपैथी" या "सोशियोपैथी" के रूप में जाना जाने लगा, जो विशेष रूप से असामाजिक व्यवहार से संबंधित था। संबंधित अध्ययनों से असामाजिक व्यक्तित्व विकार की DSM-III श्रेणी सामने आई।

**4.4.5 20वीं सदी (20th Century):** कहलबौम और अन्य लोगों के दृष्टिकोण से प्रभावित होकर, और सदी के अंत में प्रकाशनों में अपनी अवधारणाओं को विकसित करते हुए, जर्मन मनोचिकित्सक एमिल क्रेपेलिन ने एक नई प्रणाली को आगे बढ़ाया। उन्होंने कई मौजूदा निदानों को एक साथ समूहीकृत किया, जो सभी को समय के साथ बिगड़ते हुए दिखाई दिए-जैसे कि कैटेटोनिया, हेबेफ्रेनिया और डिमेंशिया पैरानोइड्स-एक अन्य मौजूदा शब्द "डिमेंशिया प्राइकोक्स" (जिसका अर्थ है "प्रारंभिक बुढ़ापा", बाद में इसका नाम बदलकर सिजोफ्रेनिया रखा गया) के तहत किया गया। निदान का एक और सेट जो आवधिक पाठ्यक्रम और बेहतर परिणाम दिखाता था, उसे उन्मत्त-अवसादग्रस्तता पागलपन (मनोदशा विकार) की श्रेणी के तहत एक साथ समूहीकृत किया गया था। उन्होंने मनोविकृति की एक तीसरी श्रेणी का भी प्रस्ताव रखा, जिसे व्यामोह कहा जाता है, जिसमें भ्रम शामिल है। कुल मिलाकर उन्होंने 15 श्रेणियां प्रस्तावित कीं, जिनमें मनोवैज्ञानिक न्यूरोसिस, मनोरोगी व्यक्तित्व और दोषपूर्ण मानसिक विकास (मानसिक मंदता) के सिंड्रोम भी शामिल हैं।

उन्होंने अंततः समलैंगिकता को "संवैधानिक मूल की मानसिक स्थितियों" की श्रेणी में शामिल किया। न्यूरोसिस को बाद में चिंता विकारों और अन्य विकारों में विभाजित किया गया। फ्रायड ने हिस्टीरिया पर विस्तार से लिखा और "चिंता न्यूरोसिस" शब्द भी गढ़ा, जो DSM-I और DSM-II में दिखाई दिया। इसके लिए चेकलिस्ट

मानदंड ने उन अध्ययनों को जन्म दिया जो डीएसएम-III के लिए आतंक विकार को परिभाषित करने वाले थे। यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका में 20वीं सदी की शुरुआती योजनाओं में 19वीं सदी के दौरान उभरे मस्तिष्क रोग मॉडल के साथ-साथ डार्विन के विकासवाद के सिद्धांत और/या फ्रायड के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांतों के कुछ विचार प्रतिबिंबित हुए। मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत विशिष्ट विकारों के वर्गीकरण पर आधारित नहीं था, बल्कि किसी व्यक्ति के जीवन के भीतर अचेतन संघर्षों और उनकी अभिव्यक्तियों का विश्लेषण करता था। यह न्यूरोसिस, मनोविकृति और विकृति से निपटता है। बॉर्डरलाइन व्यक्तित्व विकार और अन्य व्यक्तित्व विकार निदान की अवधारणा को बाद में ऐसे मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांतों से औपचारिक रूप दिया गया था। एडॉल्फ मेयर ने एक मिश्रित जैवसामाजिक योजना को आगे बढ़ाया, जिसमें जीवन के अनुभवों के प्रति पूरे जीव की प्रतिक्रियाओं और अनुकूलन पर जोर दिया गया। 1945 में, विलियम सी. मेनिंगर ने अमेरिकी सेना के लिए मेडिकल 203 नामक एक वर्गीकरण योजना को आगे बढ़ाया, जिसमें उस समय के विचारों को पांच प्रमुख समूहों में संश्लेषित किया गया। इस प्रणाली को संयुक्त राज्य अमेरिका में वेटरन्स एडमिनिस्ट्रेशन द्वारा अपनाया गया और इसने डीएसएम को काफी प्रभावित किया। तनाव शब्द, जो 1930 के दशक में एंडोक्राइनोलॉजी कार्य से उभरा था, तेजी से व्यापक बायोसाइकोसोशल अर्थ के साथ लोकप्रिय हुआ, और तेजी से मानसिक विकारों से जुड़ा हुआ था। मानसिक विकारों को पहली बार 1949 में रोगों के अंतर्राष्ट्रीय वर्गीकरण (आईसीडी-6) के छठे संशोधन में शामिल किया गया था। तीन साल बाद, 1952 में, अमेरिकन साइकिएट्रिक एसोसिएशन ने अपनी स्वयं की वर्गीकरण प्रणाली, DSM-I बनाई। फ्रेगनर क्राइटेरिया समूह ने चौदह प्रमुख मनोरोग विकारों का वर्णन किया, जिनके लिए समलैंगिकता सहित शोध अध्ययन उपलब्ध थे।

इन्हें रिसर्च डायग्नोस्टिक क्राइटेरिया के रूप में विकसित किया गया, जिसे DSM-III द्वारा अपनाया गया और आगे विकसित किया गया। डीएसएम और आईसीडी का विकास, आंशिक रूप से, मुख्यधारा के मनोरोग अनुसंधान और सिद्धांत के संदर्भ में हुआ। मानसिक बीमारी की परिभाषा, चिकित्सा मॉडल, श्रेणीबद्ध बनाम आयामी दृष्टिकोण, और पीड़ा और हानि मानदंड को शामिल किया जाए या नहीं और कैसे किया जाए, इस पर बहस जारी रही और विकसित हुई।

**4.4.6 21वीं सदी (21st Century):** ICD-11 और DSM-5 को 21वीं सदी की शुरुआत में विकसित किया जा रहा है। ऐसा कहा जाता है कि वर्गीकरण में किसी भी मौलिक नए विकास को WHO की तुलना में APA द्वारा पेश किए जाने की अधिक संभावना है, मुख्यतः क्योंकि APA को केवल अपने स्वयं के न्यासी बोर्ड को राजी करना होता है जबकि WHO को 200 से अधिक देशों के प्रतिनिधियों को राजी करना होता है। ऐसा माना जाता है कि एपीए और डब्ल्यूएचओ अपने मैनुअल के नए संस्करणों का उत्पादन जारी रख सकते हैं और, कुछ मामलों में, एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं।

---

#### 4.5 आईसीडी का विकास (Development of ICD)

---

1893 में मृत्यु के कारणों की पहली अंतर्राष्ट्रीय सूची प्रकाशित की गई। इसने रोगों के वर्गीकरण के लिए विश्वव्यापी संगठित प्रयास को प्रेरित किया जिसके परिणामस्वरूप 1900 में विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा रोगों और संबंधित स्वास्थ्य समस्याओं का अंतर्राष्ट्रीय सांख्यिकीय वर्गीकरण-1 (ICD-1) का प्रकाशन हुआ। हालाँकि, केवल ICD-6 था जो मानसिक विकार पर एक अलग अनुभाग के साथ 1949 में प्रकाशित हुआ था। ICD-8 को मानसिक विकारों की एक व्यापक शब्दावली के साथ 1972 में प्रकाशित किया गया था। ICD-9 को अधिक नैदानिक संशोधन के साथ 1977 में प्रकाशित किया गया था। ICD-9 के खंड 1 और 2 में डायग्नोस्टिक कोड का वर्णन किया गया है, जबकि खंड 3 में मानसिक और व्यवहार संबंधी विकारों के लिए प्रक्रिया कोड की व्याख्या की गई है।

ICD-10: 1978 में, WHO ने संयुक्त राज्य अमेरिका में शराब, नशीली दवाओं के दुरुपयोग और मानसिक स्वास्थ्य प्रशासन (ADAMHA) के साथ एक दीर्घकालिक सहयोगी परियोजना में प्रवेश किया, जिसका उद्देश्य मानसिक विकारों, शराब, शराब के वर्गीकरण, उसका निदान और सुधार की सुविधा प्रदान करना था। इसके लिए WHO ने कई कार्यशालाएं की तथा उन कार्यशालाओं की एक श्रृंखला ने कई अलग-अलग मनोरोग परंपराओं और संस्कृतियों के शोधकर्ताओं और चिकित्सकों को एक साथ ला खड़ा किया, निर्दिष्ट क्षेत्रों में ज्ञान की समीक्षा की, और भविष्य के अनुसंधान के लिए योजनायें विकसित कीं। इन कार्यशालाओं से उभरी योजनाओं की

समीक्षा करने और भविष्य के काम के लिए एक शोध एजेंडा और दिशानिर्देशों की रूपरेखा तैयार करने के लिए 1982 में कोपेनहेगन, डेनमार्क में वर्गीकरण और निदान पर एक प्रमुख अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया गया था। कोपेनहेगन सम्मेलन की योजनाओं को लागू करने के लिए कई प्रमुख शोध प्रयास किए गए। इन सभी प्रयासों के परिणामस्वरूप 1992 में ICD-10 का प्रकाशन हुआ।

#### 4.5.1 ICD-10 में मानसिक विकारों का वर्गीकरण (Classification of mental disorders in ICD-10)

ICD-10 के अनुसार मानसिक विकारों के वर्गीकरण का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है:

v F00-F09: जैविक, रोगसूचक, मानसिक विकारों सहित: मनोभ्रंश, प्रलाप, जैविक (Organic, including symptomatic, mental disorders: Dementia, delirium, organic.)

v F10-F19: मनो-सक्रिय पदार्थों के उपयोग के कारण मानसिक और व्यवहार संबंधी विकार: शराब, कोकीन और तंबाकू (Mental and behavioural disorders due to use of psychoactive substances: Alcohol, cocaine and tobacco)

v F20-F29: सिज़ोफ्रेनिया, सिज़ोटाइपल और भ्रम संबंधी विकार (Schizophrenia, schizotypal and delusional disorders.)

v F30-F39: मनोदशा (भावात्मक) विकार: उन्मत्त, द्विध्रुवी, अवसादग्रस्तता (Mood (affective) disorders: Manic, bipolar, depressive.)

v F40-F48: न्यूरोटिक, तनाव-संबंधी और सोमैटोफॉर्म विकार: फोबिया, ओसीडी, समायोजन, विघटनकारी (Neurotic, stress-related and somatoform disorders: Phobia, OCD, adjustment, dissociative.)

v F50-F59: शारीरिक गड़बड़ी और शारीरिक कारकों से जुड़े व्यवहार संबंधी सिंड्रोम: भोजन, नींद, यौन विकार

(Behavioural syndromes associated with physiological disturbances and physical factors:

Eating, sleep, sexual disorders.)

v F60-F69: वयस्क व्यक्तियों में व्यक्तित्व और व्यवहार के विकार: विशिष्ट, आवेग विकार, लिंग पहचान

(Disorders of personality and behaviour in adult persons: Specific, impulse disorder,

gender identity.)

v F70-F79: मानसिक मंदता (Mental retardation)

v F80-F89: मनोवैज्ञानिक विकास के विकार: वाणी और भाषा, व्यापक विकास (Disorders of

psychological development: Speech and language, pervasive development.)

v F90-F98: व्यवहारिक और भावनात्मक विकार आमतौर पर बचपन और किशोरावस्था में होते हैं:

हाइपरकिनेटिक, आचरण, टिक (Behavioural and emotional disorders with onset usually

occurring in childhood and adolescence: Hyperkinetic, conduct, tic.)

v F-99: अनिर्दिष्ट मानसिक विकार (Unspecified mental disorders.)

#### **4.6 मानसिक विकारों का निदान और सांख्यिकीय मैनुअल (डीएसएम) (Diagnostic and Statistical Manual of Mental Disorders (DSM))**

अमेरिकन साइकिएट्रिक एसोसिएशन द्वारा प्रकाशित द डायग्नोस्टिक एंड स्टैटिस्टिकल मैनुअल ऑफ मेंटल

डिसऑर्डर, संयुक्त राज्य अमेरिका और अन्य देशों में मानसिक विकारों के निदान में सबसे अधिक उपयोग की

जाने वाली पुस्तक है।

##### **4.6.1 डी.एस.एम के संशोधन (Revisions to the DSM)**

द्वितीय विश्व युद्ध से उत्पन्न जरूरतों को देखते हुए, मनोचिकित्सक और ब्रिगेडियर जनरल विलियम सी. मेनिंगर की अध्यक्षता वाली एक समिति ने अमेरिकी मनोचिकित्सकों की मदद से 1943 में मेडिकल 203 नामक एक नई वर्गीकरण योजना विकसित की।

v **डीएसएम (DSM)-I (1952):** 1949 में, विश्व स्वास्थ्य संगठन ने रोगों के अंतर्राष्ट्रीय सांख्यिकीय वर्गीकरण (आईसीडी-10) का छठा संशोधन प्रकाशित किया जिसमें पहली बार मानसिक विकारों पर एक खंड शामिल था। नतीजतन, नामकरण और सांख्यिकी पर एक एपीए समिति को संयुक्त राज्य अमेरिका में उपयोग के लिए एक वर्गीकरण प्रणाली विकसित करने का अधिकार दिया गया था। 1950 में एपीए समिति ने मानसिक विकारों के निदान और सांख्यिकी मैनुअल-1 (डीएसएम-I) को प्रसारित करने के लिए समीक्षा और परामर्श किया, जिसे 1951 में अनुमोदित किया गया और 1952 में प्रकाशित किया गया। संरचना और वैचारिक रूपरेखा मेडिकल 203 के समान थी। और पाठ के कई अंश समान हैं। मैनुअल 130 पेज लंबा था और इसमें 106 मानसिक विकारों को सूचीबद्ध किया गया था। डीएसएम-I ने पूर्व प्रणाली से नामकरण में 94% परिवर्तन किए और सत्तर विकार शब्दों को बदलकर "प्रतिक्रिया" किया, उदाहरण के लिए, सिजोफ्रेनिक प्रतिक्रिया। DSM-I की आलोचना इस आधार पर की जाती है कि यह अपने सैद्धांतिक अभिविन्यास में मनोविश्लेषणात्मक था। DSM-I में मनोविक्षुब्ध विकारों का वर्णन करते समय "अचेतन" शब्द का कई बार उल्लेख किया गया था।

v **डीएसएम (DSM)-II (1968):** 1968 में आईसीडी-8 के मानसिक विकार अनुभाग के संशोधन में एपीए की भागीदारी के बावजूद, इसने 1968 में डीएसएम का एक संशोधन भी प्रकाशित किया, जिसमें 182 विकार सूचीबद्ध थे, और यह 134 पृष्ठ लंबा था। यह काफी हद तक DSM-I के समान था। "प्रतिक्रिया" शब्द को हटा दिया गया लेकिन "न्यूरोसिस" शब्द को बरकरार रखा गया। डीएसएम-I और डीएसएम-II दोनों ने प्रमुख मनोचिकित्सा मनोरोग को प्रतिबिंबित किया, हालांकि उनमें क्रेपेलिन के वर्गीकरण प्रणाली से जैविक दृष्टिकोण और अवधारणाएं भी शामिल थीं। विशिष्ट विकारों के लिए

लक्षण विस्तार से निर्दिष्ट नहीं किए गए थे। कई विकारों को व्यापक अंतर्निहित संघर्षों या जीवन की समस्याओं के प्रति कुत्सित प्रतिक्रियाओं के प्रतिबिंब के रूप में देखा गया, जो न्यूरोसिस और मनोविकृति (मोटे तौर पर, वास्तविकता के संपर्क में चिंता/अवसाद, या वास्तविकता से अलग दिखने वाले मतिभ्रम/भ्रम) के बीच अंतर में निहित हैं। एक ऐसे मॉडल में समाजशास्त्रीय और जैविक ज्ञान को भी शामिल किया गया था, जो सामान्यता और असामान्यता के बीच स्पष्ट सीमा पर जोर नहीं देता था। प्रकाशन के बाद डीएसएम-II की व्यापक आलोचना के बाद, 1973 में "समलैंगिकता" शब्द को "ईगो-डायस्टोनिक समलैंगिकता" से बदल दिया गया।

v **डीएसएम (DSM)-III (1980):** डीएसएम को रोगों और संबंधित स्वास्थ्य समस्याओं के अंतर्राष्ट्रीय सांख्यिकीय वर्गीकरण (आईसीडी) के अनुरूप बनाने के लिए डीएसएम का एक नया संशोधन बनाने का निर्णय 1974 में रॉबर्ट स्पिट्जर ने एक टास्क फोर्सकेसाथ अध्यक्ष के रूप में किया गया था। इस संशोधन का उद्देश्य मनोरोग निदान की एकरूपता और वैधता में सुधार करना, दुनिया भर में नैदानिक प्रथाओं को मानकीकृत करना और DSM-II पर होने वाली आलोचनाओं से बचने के लिए फार्मास्युटिकल नियामक प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाना था। कई मानसिक विकारों के मानदंड रिसर्च डायग्नोस्टिक क्राइटेरिया और फेघनर क्राइटेरिया से लिए गए थे। समिति की बैठकों के दौरान सर्वसम्मति से वर्गीकरण की नई श्रेणियां और उनके मानदंड स्थापित किए गए। नियामक या विधायी मॉडल के पक्ष में मनोगतिक या शारीरिक दृष्टिकोण को त्याग दिया गया। एक नई "बहु-अक्षीय" प्रणाली ने केवल एक साधारण निदान के बजाय सांख्यिकीय जनसंख्या जनगणना के लिए अधिक उपयुक्त तस्वीर पेश करने का प्रयास किया। डीएसएम ने प्रत्येक मानसिक विकार को चिकित्सकीय रूप से महत्वपूर्ण व्यवहारिक या मनोवैज्ञानिक सिंड्रोम के रूप में अवधारणाबद्ध किया। अंततः 1980 में प्रकाशित, DSM-III 494 पृष्ठ लंबा था और इसमें 265 नैदानिक श्रेणियां सूचीबद्ध थीं। यह तेजी से व्यापक अंतरराष्ट्रीय उपयोग में आया। डीएसएम-III में उल्लेखित प्रत्येक विकार के लिए नैदानिक मानदंडों के साथ डीएसएम के पिछले संस्करण से नामकरण में 93% परिवर्तनों के साथ प्रकाशित किया

गया था। यह पाँच अक्षों वाला एक बहु-अक्षीय वर्गीकरण था। DSM-III ने प्रत्येक विकार की पृष्ठभूमिकी जानकारी में के बारे में भारी वृद्धि प्रदान की, जिसमें नैदानिक विशेषताएं, संबंधित विशेषताएं, सांस्कृतिक और लिंग विशेषताएं; व्यापकता, पाठ्यक्रम, परिचित पैटर्न, विभेदक निदान, निर्णय वृक्ष और शब्दावलीशामिल की गईं हालाँकि, बाद में DSM-III की इस आधार पर आलोचना की गई कि 20-30 प्रतिशत आबादी को बिना किसी गंभीर मानसिक समस्या के व्यवहार संबंधी विकारों के आधार पर निदान किया गया होगा।

v **डीएसएम (DSM)-III-R (1987):** DSM-III-R को 1987 में DSM-III के संशोधन के रूप में प्रकाशित किया गया था। श्रेणियों का नाम बदला गया, पुनर्गठित किया गया और मानदंडों में महत्वपूर्ण बदलाव किए गए। छह श्रेणियां हटा दी गईं, जबकि कुछ नई श्रेणियां जोड़ी गईं। मासिक धर्म पूर्व बेचैनी संबंधी विकार और मासोचिस्टिक व्यक्तित्व विकार जैसे विवादास्पद निदानों को खारिज कर दिया गया। "यौन अभिविन्यास गड़बड़ी" को भी हटा दिया गया था और इसे बड़े पैमाने पर "यौन विकार जो अन्यथा निर्दिष्ट नहीं है" के अंतर्गत शामिल किया गया था जिसमें "किसी के यौन अभिविन्यास के बारे में लगातार और चिह्नित परेशानी" शामिल हो सकती है। DSM-III-R में 292 निदान शामिल थे और यह 567 पृष्ठ लंबा था।

v **डीएसएम (DSM)-IV (1994):** DSM-IV को 1994 में 886 पृष्ठों में 297 विकारों को सूचीबद्ध करते हुए प्रकाशित किया गया था। DSM-IV के विकास की प्रक्रिया में निदान की व्यापक साहित्य समीक्षा, मानदंडों में आवश्यक परिवर्तन निर्धारित करने के लिए विश्लेषण, नैदानिक अभ्यास और निदान से संबंधित बहुकेंद्रीय क्षेत्र परीक्षण शामिल थे। पिछले संस्करणों में से DSM-IV में एक बड़ा बदलाव सभी श्रेणियों में से लगभग आधे के लिए नैदानिक महत्व मानदंड का समावेश था, जिसके लिए आवश्यक लक्षण "सामाजिक, व्यावसायिक, या कामकाज के अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों में नैदानिक रूप से संकट या हानि" का कारण बनते थे।

v **डीएसएम (DSM)-IV TR (2000):** 2000 में एक पाठ संशोधन प्रकाशित किया गया था (DSM-IV-TR; अमेरिकन साइकियाट्रिक एसोसिएशन 2000)। इसका उद्देश्य त्रुटियों को ठीक करना और 1994 में उपलब्ध न होने वाली नई जानकारी को जोड़ना था। निदान मानदंडों में कोई बदलाव नहीं किया गया, न ही विकारों को जोड़ा या हटाया गया। प्रत्येक निदान पर अतिरिक्त जानकारी देने वाले पाठ अनुभागों को अद्यतन किया गया था, साथ ही आईसीडी के साथ स्थिरता बनाए रखने के लिए कुछ निदान कोड भी अपडेट किए गए थे।

विभिन्न डीएसएम संस्करण-उनकी लंबाई और उनमें निहित विकारों की संख्या-की तुलना तालिका में की गई है।

**तालिका 4.1: DSMs 1952 से 2013**

संस्करण	वर्ष	विकारों की संख्या	पेजों की संख्या
DSM-I	1952	106	132
DSM-II	1968	182	119
DSM-III	1980	265	494
DSM-III-R	1987	292	567
DSM-IV	1994	297	886
DSM-IV-TR	2000	297	943
DSM-5	2013	157*	947

\*अन्य निर्दिष्ट और अनिर्दिष्ट विकार शामिल नहीं हैं।

#### 4.7 डी.एस.एम-5: डीएसएम का वर्तमान संस्करण (DSM-5: Current Version of the DSM)

DSM-5 टास्क फोर्स 2006 में APA के अध्यक्ष स्टीवन एस. शार्फस्टीन, एम.डी., और APA मेडिकल निदेशक जेम्स एच. स्कली जूनियर, एम.डी. द्वारा बनाई गई थी, जिसके अध्यक्ष डॉ. कुफ़र और उपाध्यक्ष डॉ. रेगियर थे।

टास्क फोर्स में अतिरिक्त सदस्यों को नियुक्त किया गया, जिसमें 13 नैदानिक कार्य समूहों के अध्यक्ष भी शामिल थे, जो अनुसंधान और साहित्य की समीक्षा करने के लिए थे, जिस पर उनकी योजनायें आधारित थीं। एपीए बोर्ड ऑफ ट्रस्टीज़ ने नियुक्ति के सिद्धांतों की स्थापना की, यह अनिवार्य है कि किसी भी विश्वविद्यालय के दो से अधिक प्रतिनिधि टास्क फोर्स या एक ही कार्य समूह में भाग नहीं ले सकते हैं। टास्क फोर्स के सदस्यों की घोषणा जुलाई 2007 में और कार्य समूह के सदस्यों की घोषणा मई 2008 में की गई। डीएसएम के नाम से जुड़ी संख्या "5" इस पुस्तक के पांचवें - और सबसे हालिया - संस्करण को संदर्भित करती है। DSM-5® की मूल रिलीज़ तिथि मई 2013 थी। APA ने मार्च 2022 में पांचवें संस्करण का संशोधित संस्करण जारी किया। उस संस्करण को DSM-5-TR™ के रूप में जाना जाता है, TR का अर्थ है "पाठ संशोधन।"

DSM-5 का उद्देश्य किसी भी स्वास्थ्य स्थिति (चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक) के इलाज में पहला कदम स्थिति का सटीक निदान करना है। यह मानसिक स्वास्थ्य और मस्तिष्क से संबंधित स्थितियों की स्पष्ट, अत्यधिक विस्तृत परिभाषा प्रदान करता है। यह उन स्थितियों के संकेतों और लक्षणों का विवरण और उदाहरण भी प्रदान करता है। स्थितियों को परिभाषित करने और समझने के अलावा, DSM-5 उन स्थितियों को समूहों में व्यवस्थित करता है। इससे स्वास्थ्य सेवा प्रदाताओं के लिए स्थितियों का सटीक निदान करना और उन्हें समान संकेतों और लक्षणों वाली स्थितियों से अलग बताना आसान हो जाता है। DSM-5 बनाने के लिए, APA ने दुनिया भर से 160 से अधिक मानसिक स्वास्थ्य सेवा प्रदाताओं को इकट्ठा किया, जिनमें मनोचिकित्सक, मनोवैज्ञानिक और कई अन्य क्षेत्रों के विशेषज्ञ शामिल थे। सैकड़ों अन्य विशेषज्ञों ने विशिष्ट विषयों पर सलाहकार के रूप में योगदान और सहायता की। DSM-5 के निर्माण में फ़ील्ड परीक्षण और अन्य परीक्षण भी शामिल थे। DSM-5 मुख्य रूप

से मानसिक स्वास्थ्य स्थितियों पर केंद्रित है। हालाँकि, मानसिक स्वास्थ्य और मस्तिष्क कार्य अविभाज्य हैं, DSM-5 मस्तिष्क कैसे काम करता है उससे संबंधित स्थितियों और चिंताओं के अध्ययन को भी वर्णित करता है।

पुस्तक में डायग्नोस्टिक कोड भी शामिल हैं, जो स्वास्थ्य सेवा प्रदाताओं के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन के रोगों और संबंधित स्वास्थ्य समस्याओं के अंतर्राष्ट्रीय वर्गीकरण, 10वें संस्करण (ICD-10) के क्रॉस-रेफरेंस को आसान बनाते हैं।

#### 4.7.1 DSM-5 में तीन खंड हैं:

v **अनुभाग I: DSM-5 मूल (Basic):** यह अनुभाग बताता है कि चिकित्सा सेवा प्रदाताओं को अपने काम में पुस्तक का उपयोग कैसे करना चाहिए। इसमें मानसिक स्वास्थ्य संबंधी चिंताओं में कानूनी सेवा प्रदाताओं, अदालती मामले आदि शामिल होने पर डीएसएम-5 का उपयोग किस प्रकार करना है के लिए भी मार्गदर्शन शामिल है।

v **अनुभाग II: नैदानिक मानदंड और कोड (Diagnostic Criteria and Codes):** यह खंड पुस्तक में सबसे बड़ा है। प्रत्येक अध्याय में एक प्रकार के विकार की स्थिति को शामिल किया गया है, जिसमें उस विकार के विशिष्ट लक्षणों को परिभाषित किया गया है। और समझाया गया है (इस अनुभाग के बारे में अधिक जानकारी के लिए नीचे दी गई तालिका में दी गयी है)।

v **अनुभाग III: उभरते उपाय और मॉडल (Emerging Measures and Models):** इस अनुभाग में विशिष्ट मूल्यांकन उपकरणों के बारे में जानकारी शामिल है, जिनका उपयोग प्रदाता कुछ स्थितियों के निदान के लिए दिशानिर्देश के रूप में करते हैं। इसमें इस बारे में भी जानकारी है कि सांस्कृतिक मतभेद निदान को कैसे प्रभावित कर सकते हैं, और उन स्थितियों के बारे में एक अध्याय है जो अंततः डीएसएम के बाद के संस्करण में जा सकते हैं लेकिन ऐसा होने से पहले और अध्ययन की आवश्यकता है।

**4.7.1 DSM-5 अनुभाग II (DSM-5 Section II)**

अनुभाग II नैदानिक मानदंड और कोड में शामिल मनोवैज्ञानिक विकार और उनके प्रकार के बारे में अधिक जानकारी

**तालिका 4.2: अनुभाग II नैदानिक मानदंड और कोड (Table 3.2: Section II Diagnostic Criteria and Codes)**

अनुभाग शीर्षक (Section Title)	अनुभाग में विकारों के उदाहरण (Examples of disorders in section)
तंत्रिका विकास संबंधी विकार (Neurodevelopmental Disorders)	ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिस्ऑर्डर (Autism spectrum disorder) ध्यान-अभाव/अतिसक्रियता विकार (एडीएचडी) (Attention-deficit/hyperactivity disorder (ADHD)) सीखने संबंधी विकार (जिसमें डिस्लेक्सिया, डिस्कैल्कुलिया आदि शामिल हैं) (Learning disorders (which cover Dyslexia, Dyscalculia, etc.))
सिज़ोफ्रेनिया स्पेक्ट्रम और अन्य मानसिक विकार (Schizophrenia Spectrum and Other Psychotic Disorders)	मनोविदलता (Schizophrenia) (सिज़ोइफेक्टिव विकार) Schizoaffective disorder. (भ्रमात्मक विकार) Delusional disorder
द्विध्रुवी और संबंधित विकार (Bipolar and Related Disorders)	द्विध्रुवी I और द्विध्रुवी II विकार (Bipolar I and bipolar II disorders) साइक्लोथैमिक विकार (Cyclothymic disorder)

<p>अवसादग्रस्तता विकार (Depressive Disorders)</p>	<p>प्रमुख अवसादग्रस्तता विकार (Major depressive disorder) लगातार अवसादग्रस्तता विकार (Persistent depressive disorder)</p>
<p>चिंता विकार (Anxiety Disorders)</p>	<p>सामान्यीकृत चिंता विकार (Generalized anxiety disorder.) सामाजिक चिंता विकार (Social anxiety disorder.) पृथक्करण चिंता विकार (Separation anxiety disorder.) भय (Phobias)</p>
<p>मानोग्रस्तता- बाध्यता और संबंधित विकार (Obsessive-Compulsive and Related Disorders)</p>	<p>मानोग्रस्तता- बाध्यता विकार (ओसीडी) (Obsessive-compulsive disorder (OCD)) जमाखोरी विकार (Hoarding disorder) शारीरिक कुरूपता विकार (Body dysmorphic disorder) त्वचा चुनने का विकार और बाल खींचने का विकार (Skin-picking disorder and hair-pulling disorder)</p>
<p>आघात- और तनाव-संबंधी विकार (Trauma- and Stressor-Related Disorders)</p>	<p>अभिघातजन्य तनाव विकार (पीटीएसडी) (Post-traumatic stress disorder (PTSD)) तीव्र तनाव विकार (Acute stress disorder) एडजस्टमेंट डिसऑर्डर (Adjustment disorder)</p>
<p>विघटनकारी विकार (Dissociative Disorders)</p>	<p>डिसोशिएटिव आइडेंटिटी डिसऑर्डर (Dissociative identity disorder) विघटनकारी भूलने की बीमारी (Dissociative amnesia)</p>

	प्रतिरूपण/व्युत्पत्ति विकार(Depersonalization/derealization disorder)
दैहिक लक्षण और संबंधित विकार(Somatic Symptom and Related Disorders)	दैहिक लक्षण विकार (Somatic symptom disorder) बीमारी चिंता विकार (Illness anxiety disorder) कार्यात्मक न्यूरोलॉजिकल लक्षण विकार(रूपांतरण विकार)(Functional neurological symptom disorder (conversion disorder))
आहार एवं भोजन संबंधी विकार(Feeding and Eating Disorders)	एनोरेक्सिया नर्वोसा(Anorexia nervosa) बुलिमिया नर्वोसा(Bulimia nervosa) ज्यादा खाने से होने वाली गड़बड़ी(Binge-eating disorder)
नींद से जागने संबंधी विकार(Sleep-Wake Disorders)	अनिद्रा विकार (Insomnia disorder) नार्कोलेप्सी।(Narcolepsy) स्लीप एपनिया विकार(Sleep apnea disorders) दुःस्वप्न विकार(Nightmare disorder) पैर हिलाने की बीमारी(Restless legs syndrome)
यौन रोग(Sexual Dysfunctions)	यौन रोग(Sexual dysfunctions)

लिंग डिस्फोरिया(Gender Dysphoria)	लिंग डिस्फोरिया संबंधी विकार(Gender dysphoria-related disorders)
विघटनकारी, आवेग-नियंत्रण और आचरण विकार (Disruptive, Impulse-Control and Conduct Disorders)	विपक्षी उद्दंड विकार (Oppositional defiant disorder) असामाजिक व्यक्तित्व विकार(Antisocial personality disorder) क्लेप्टोमैनिया (Kleptomania) पायरोमेनिया(Pyromania)
पदार्थ-संबंधी और व्यसनी विकार (Substance-Related and Addictive Disorders)	शराब सेवन विकार (Alcohol use disorder) इनहेलेंट उपयोग विकार (Inhalant use disorder) ओपिओइड उपयोग विकार(Opioid use disorder) विड्रोल संबंधी लक्षण(Withdrawal-related symptoms)
तंत्रिका-संज्ञानात्मक विकार(Neurocognitive Disorders)	प्रलाप(Delirium) अल्जाइमर रोग (Alzheimer's disease) पार्किंसंस रोग (Parkinson's disease) हनटिंग्टन रोग (Huntington's disease) अभिघातजन्य मस्तिष्क की चोट(Traumatic brain injury)
व्यक्तित्व विकार(Personality Disorders)	सीमा रेखा व्यक्तित्व विकार (बीपीडी)(Borderline personality disorder (BPD)) आत्मकामी व्यक्तित्व विकार(Narcissistic personality disorder)

<p>पैराफिलिक विकार(Paraphilic Disorders)</p>	<p>यौन व्यवहार संबंधी विकार(Sexual behavior disorders)</p>
<p>दवा-प्रेरित गतिशीलता विकार और दवा के अन्य प्रतिकूल प्रभाव(Medication-Induced Movement Disorders and Other Adverse Effects of Medication)</p>	<p>टारडिव डिस्कनीशिया(Tardive dyskinesia) न्यूरोलेप्टिक मेलिग्नेन्ट सिंड्रोम (Neuroleptic malignant syndrome)</p>
<p>अन्य स्थितियाँ जो चिकित्सीय ध्यान का केन्द्र हो सकती हैं (Other Conditions That May Be a Focus of Clinical Attention)</p>	<p>इनमें ऐसी परिस्थितियाँ या व्यवहार शामिल हैं जो स्थितियाँ नहीं हैं, लेकिन जो निदान योग्य स्थितियों के संबंध में प्रभावित हो सकती हैं या घटित हो सकती हैं। उदाहरणों में आत्म-नुकसान और आत्मघाती व्यवहार, किसी भी प्रकार के दुर्व्यवहार का इतिहास, बेरोजगारी आदि शामिल हैं। (These include circumstances or behaviors that aren't conditions, but that may affect or happen in relation to diagnosable conditions. Examples include self-harm and suicidal behaviors, a history of any type of abuse, unemployment, etc.)</p>

#### 4.8 सारांश (Summary)

मनोवैज्ञानिक विकारों का वर्गीकरण असामान्य व्यवहारों की श्रेणियां बनाने और लोगों को उनके व्यवहार संबंधी गुणों और निष्क्रिय लक्षणों के आधार पर इन श्रेणियों में निर्दिष्ट करने की प्रक्रिया को संदर्भित करता है। यह मनोवैज्ञानिक विकारों के संचार, नियंत्रण, समझ, भेद और पूर्वानुमान/भविष्यवाणी के बुनियादी उद्देश्यों को पूरा करता है। मनोवैज्ञानिक विकारों को वर्गीकृत करने के लिए तीन दृष्टिकोण या रणनीतियों का उपयोग करते हैं:

श्रेणीबद्ध, आयामी और प्रोटोटाइपिक दृष्टिकोण। मानसिक विकारों के वर्गीकरण के लिए कई व्यक्तिगत प्रयास किये गये हैं।

रोगों के वर्गीकरण के लिए इस विश्वव्यापी संगठित प्रयास को 1900 में विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा रोगों और संबंधित स्वास्थ्य समस्याओं के अंतर्राष्ट्रीय सांख्यिकीय वर्गीकरण-1 (आईसीडी-1) के प्रकाशन से प्रेरित किया गया था। हालाँकि, यह केवल आईसीडी-6 था जिसे प्रकाशित किया गया था। 1949 में मानसिक विकार पर एक अलग खंड ICD का सबसे हालिया, दसवां संस्करण 1992 में प्रकाशित हुआ था जिसमें अध्याय V (F) मानसिक विकारों के वर्गीकरण से संबंधित था जिसमें उनके समावेशन और बहिष्करण की शर्तों को समझाया गया था।

मनोवैज्ञानिक विकारों के वर्गीकरण के सबसे प्रभावशाली प्रयास अमेरिकन साइकियाट्रिक एसोसिएशन द्वारा प्रकाशित द डायग्नोस्टिक एंड स्टैटिस्टिकल मैनुअल ऑफ मेंटल डिसऑर्डर (डीएसएम) के साथ शुरू हुए, जिसे अब संयुक्त राज्य अमेरिका और अन्य देशों में मानसिक विकारों के निदान के लिए हैंडबुक के रूप में उपयोग किया जाता है। 1952 में इसके पहले संस्करण, DSM-1 के प्रकाशन के बाद, इसके बाद के 6 संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। DSM का वर्तमान संस्करण DSM- 5 है जो 2013 में प्रकाशित हुआ था। DSM-5 में तीन खंड हैं: अनुभाग I: DSM-5 मूल (Basic); अनुभाग II: नैदानिक मानदंड और कोड; अनुभाग III: उभरते उपाय और मॉडल:

---

#### 4.9 निबंधात्मक प्रश्न (Essay type question)

---

1. मनोविकृति विज्ञान के वर्गीकरण का अर्थ, उद्देश्य और दृष्टिकोण स्पष्ट करें।
2. मनोविकृति विज्ञान के वर्गीकरण के इतिहास का वर्णन करें।
3. मनोविकृति विज्ञान के वर्गीकरण में आईसीडी के महत्व का वर्णन करें तथा आईसीडी-10 में निर्धारित मानसिक विकारों के वर्गीकरण का विवरण प्रस्तुत करें।

4. DSM के विभिन्न संस्करणों के विकास का ऐतिहासिक विवरण प्रदान करें और DSM-5के प्रमुख अनुभागों का वर्णन करें।

5. DSM-5के द्वितीय अनुभाग का विस्तारपूर्वक विवरण प्रस्तुत करें।

#### 4.10 शब्दकोष (Glossary)

मनोवैज्ञानिक विकारों का वर्गीकरण: मनोवैज्ञानिक विकारों का वर्गीकरण श्रेणियों के निर्माण और लोगों को उनकी विशेषताओं के आधार पर इन श्रेणियों में निर्दिष्ट करने की प्रक्रिया को संदर्भित करता है। श्रेणीबद्ध दृष्टिकोण: वर्गीकरण के लिए श्रेणीबद्ध दृष्टिकोण मानता है कि विभिन्न श्रेणियों के सदस्यों के बीच भेद गुणात्मक हैं।

v **आयामी दृष्टिकोण:** वर्गीकरण के लिए आयामी दृष्टिकोण निरंतर आयामों के संदर्भ में वर्गीकरण की वस्तुओं का वर्णन करता है।

v **प्रोटोटाइपिक दृष्टिकोण:** एक प्रोटोटाइपिक दृष्टिकोण एक विकार की कुछ आवश्यक विशेषताओं की पहचान करता है और यह कुछ गैर-आवश्यक विविधताओं की भी अनुमति देता है जो जरूरी नहीं कि वर्गीकरण को बदल दें।

#### 4.11 सन्दर्भ ग्रंथ सूची (Bibliography)

v Murthy, R. Srinivasa; Wig, Narendra N. (2002-04-22). "Psychiatric Diagnosis and Classification in Developing Countries". In Mario Maj (ed.). Psychiatric Diagnosis and Classification. Wiley. ISBN 0471496812.

v Berrios GE (July 1987). "Historical aspects of psychoses: 19th century issues". Br. Med. Bull. 43 (3): 484–98. doi:10.1093/oxfordjournals.bmb.a072197. PMID 3322481.

---

v Bolme, A (1991). "Portraying Monomaniacs to Service the Alienist's Monomania: Gericault and Georget". *Oxford Art Journal*. 14 (1): 79–91. doi:10.1093/oxartj/14.1.79. JSTOR 1360279.

v O'Connell P, Woodruff PW, Wright I, Jones P, Murray RM (February 1997). "Developmental insanity or dementia praecox: was the wrong concept adopted?". *Schizophr. Res.* 23 (2): 97–106. doi:10.1016/S0920-9964(96)00110-7. PMID 9061806. S2CID 6781094.

v Mendelson G (December 2003). "Homosexuality and psychiatric nosology". *Aust N Z J Psychiatry*. 37 (6): 678–83. doi:10.1111/j.1440-1614.2003.01273.x. PMID 14636381. Archived from the original on 2013-01-05.

v Viner R (June 1999). "Putting Stress in Life: Hans Selye and the Making of Stress Theory". *Social Studies of Science*. 29 (3): 391–410. doi:10.1177/030631299029003003. JSTOR 285410. S2CID 145291588.

v Katsching, Heinz (February 2010). "Are psychiatrists an endangered species? Observations on internal and external challenges to the profession". *World Psychiatry*. 9 (1): 21–28. doi:10.1002/j.2051-5545.2010.tb00257.x. PMC 2816922. PMID 20148149.

v Masten AS, Curtis WJ (2000). "Integrating competence and psychopathology: pathways toward a comprehensive science of adaptation in development". *Dev. Psychopathol.* 12 (3): 529–50. doi:10.1017/S095457940000314X. PMID 11014751. S2CID 27591546 v <https://my.clevelandclinic.org/health/articles/24291-diagnostic-and-statistical-manual-dsm-5>

---

**इकाई 5. मनोचिकित्सा: अर्थ एवं प्रकृति, हस्तक्षेप के मॉडल एवं मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा (Psychotherapy: Meaning and Nature, Models of Intervention and Psychoanalytic Therapy)**

---

**इकाई संरचना**

- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 उद्देश्य
- 5.3 मनोचिकित्सा या मनोपचार
  - 5.3.1 मनोचिकित्सा अर्थ एवं प्रकृति
  - 5.3.2 मनोचिकित्सा का स्वरूप
  - 5.3.3 मनोचिकित्सा के उद्देश्य
- 5.4 नैदानिक हस्तक्षेप के मॉडल
  - 5.4.1 नैदानिक हस्तक्षेप मॉडल के उद्देश्य
  - 5.4.2 नैदानिक हस्तक्षेप के प्रमुख मॉडल
    - 5.4.2.1 मनोगत्यात्मक मॉडल
    - 5.4.2.2 व्यवहारात्मक मॉडल
    - 5.4.2.3 परिघटनात्मक मॉडल
    - 5.4.2.4 अन्तवैयक्तिक मॉडल
- 5.5 मनोविश्लेषणवादी या मनोगत्यात्मक चिकित्सा
  - 5.5.1 मनोविश्लेषणवादी चिकित्सा के उद्देश्य
  - 5.5.2 मनोविश्लेषणवादी चिकित्सा के चरण
  - 5.5.3 मनोविश्लेषणवादी चिकित्सा के गुण व दोष
- 5.6 सारांश
- 5.7 शब्दावली
- 5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

## 5.1 प्रस्तावना

मनोचिकित्सा का उद्देश्य व्यक्तित्व समायोजन प्राप्त करने में रोगी की सहायता करना है। इसमें मनोवैज्ञानिक प्रविधियों द्वारा व्यक्ति की मानसिक समस्याओं एवं विकृतियों में चिकित्सक तथा रोगी के बीच पारस्परिक क्रिया आयोजित की जाती है जिसमें रोगी अपने विचारों व भावों को व्यक्त करता है। मनोचिकित्सा के अन्तर्गत मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा आती है जिसमें अचेतन मन की दबी इच्छाओं एवं उलझनों को सुलझाकर उनका उपचार किया जाता है।

नैदानिक मनोविज्ञान में नैदानिक मॉडलों का अत्यन्त महत्व है। ये एक ऐसा ढाँचा होता है, जिसमें मानव व्यवहार की व्याख्या अलग-अलग मनोवैज्ञानिकों द्वारा विभिन्न ढंग से की जाती है।

## 5.2 उद्देश्य

इस इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

1. मनोचिकित्सा एवं मनोविश्लेषणवादी चिकित्सा का अर्थ, स्वरूप एवं उद्देश्यों का अध्ययन करना।
2. नैदानिक हस्तक्षेप के प्रमुख मॉडलों का अध्ययन करना।

## 5.3 मनश्चिकित्सा या मनोपचार

मानसिक एवं सांवेगिक रूप से अस्वस्थ व्यक्तियों का मनोवैज्ञानिक विधियों से उपचार करने को मनश्चिकित्सा कहा जाता है। इसे नैदानिक हस्तक्षेप भी कहा जाता है क्योंकि इसमें नैदानिक मनोवैज्ञानिक अपनी व्यवसायी या पेशेवर क्षमता का उपयोग करते हैं और मानसिक या सांवेगिक रूप से अस्वस्थ व्यक्ति के व्यवहार को बदलने की कोशिश करते हैं। मनश्चिकित्सा का उपयोग उन मानसिक रोगियों के लिए लाभकारी होता है जो मनः स्नायुविकृति से पीड़ित होते हैं। इसका उपयोग मनोविक्षिप्ति या मनोविकृति के रोगियों के साथ भी किया जाता है परन्तु ऐसे रोगियों को इसके साथ-साथ औषधि देना भी जरूरी होता है।

रौटर, (1976) के अनुसार, "मनश्चिकित्सा मनोवैज्ञानिक की एक सुनियोजित क्रिया होती है जिसका उद्देश्य व्यक्ति की जिन्दगी में ऐसा परिवर्तन लाना होता है जो उसकी जिन्दगी को भीतर से अधिक खुश तथा अधिक संरचनात्मक या दोनों ही बनाता है।"

### 5.3.1 अर्थ एवं प्रकृति

निटजील, वर्नस्टीन एवं मिलिक (1991) के अनुसार, "मनश्चिकित्सा में कम-से-कम दो व्यक्ति होते हैं जिसमें एक को मनोवैज्ञानिक समस्याओं से निबटने की विशेष योग्यता एवं प्रशिक्षण प्राप्त होता है और दूसरा समायोजन में समस्या का अनुभव करता है और वे दोनों इस समस्या को कम करने के लिए एक विशेष संबंध कायम करने की कोशिश करते हैं। इस संबंध के अन्तर्गत कई मनोवैज्ञानिक विधियों का उपयोग किया जाता है तथा रोगी के व्यवहार में परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है।"

मनश्चिकित्सा में रोगी तथा चिकित्सक के बीच वार्तालाप होता है जिसके माध्यम से रोगी अपनी सांवेगिक समस्याओं एवं मानसिक चिन्ताओं को अभिव्यक्त करता है। चिकित्सक द्वारा उसे विशेष सहानुभूति, सुझाव एवं

सलाह दिया जाता है ताकि उसका आत्म-विश्वास एवं आत्म-सम्मान कायम रह सके। धीरे-धीरे जिससे रोगी की समस्याएँ समाप्त होते चली जाती है और उसमें ठीक ढंग से समायोजन करने की क्षमता फिर से विकसित हो जाती है।

### 5.3.2 मनोपचार का स्वरूप

मनोपचार या मनश्चिकित्सा या नैदानिक हस्तक्षेप के मुख्य निम्नलिखित तीन भाग हैं-

**1. सहभागी -** मनश्चिकित्सा में दो सहभागी होते हैं। पहला सहभागी क्लायंट या रोगी होता है। **क्लायंट** वह व्यक्ति होता है जिसमें सांवेगिक या मानसिक अस्थिरता इतनी अधिक बढ़ जाती है कि उसे अपनी समस्याओं के समाधान के लिये चिकित्सक की मदद लेनी पड़ती है। मनश्चिकित्सा का दूसरा सहभागी **चिकित्सक** होता है। चिकित्सक वह व्यक्ति होता है जो क्लायंट या रोगी को उसकी समस्याओं से निबटने में मदद करता हो। चिकित्सक के लिए निम्नलिखित व्यवसायिक गुण होने चाहिए।

**1. वह प्रशिक्षित हो,** वह क्लायंट की समस्याओं को समझ सके और उसके साथ ठीक ढंग से अन्तःक्रिया कर सके। उसमें क्लायंट की समस्याओं को ठीक ढंग से सुनने, समझने तथा संवेदनशीलता का भाव दिखाने की क्षमता होनी चाहिए।

**2. चिकित्सीय संबंध -** चिकित्सक तथा क्लायंट के बीच विशेष संबंध होता है, जिसे चिकित्सीय संबंध कहा जाता है। कोरचिन के अनुसार चिकित्सीय संबंध में आसक्ति (लगाव) तथा अनासक्तिक (अलगाव) का संतुलन होना चाहिए। एक उत्तम चिकित्सीय संबंध में निम्नलिखित गुण होने चाहिये-

1. चिकित्सक तथा रोगी दोनों ही चिकित्सा को सफल बनाने में व्यक्तिगत प्रयास करना चाहिये।
2. चिकित्सा के दौरान चिकित्सक तथा रोगी दोनों को ही समान दृष्टिकोण रखना चाहिये।
3. चिकित्सक तथा रोगी को एक-दूसरे की भलाई के लिए ध्यान देना चाहिये।

**3. मनश्चिकित्सा की प्रविधि -** मनोपचार या मनश्चिकित्सा की प्रमुख प्रविधियाँ इस प्रकार हैं-

**a) सूझ उत्पन्न करना -** इस प्रविधि में रोगी में आत्म-मूल्यांकन तथा आत्म-ज्ञान विकसित करने की कोशिश की जाती है। इसमें चिकित्सक रोगी को ये समझाता है कि वे क्यों इस तरह का व्यवहार करते हैं। यदि वे ऐसा समझ जाते हैं तो इससे नये व्यवहार की उत्पत्ति उसमें होती है जिसे सूझ कहा जाता है।

**b) सांवेगिक अशांति को कम करना -** मनश्चिकित्सा में रोगी के सांवेगिक अशांति को बहुत कम कर दिया जाता है ताकि वह चिकित्सा में आगे ठीक ढंग से सहयोग कर सके तथा अपने व्यवहार में स्थायी परिवर्तन लाने का प्रयास करें। जब रोगी यह समझता है कि चिकित्सक उसका एक व्यक्तिगत दोस्त है जिस पर भरोसा किया जा सकता है, तो उसमें स्वयं ही सांवेगिक स्थिरता उत्पन्न होती है।

**c) विरेचन को प्रोत्साहित करना -** चिकित्सक की उपस्थिति में रोगी को उसके संवेगों, भावों आदि को खुलकर व्यक्त करने के लिए कहा जाता है। इस प्रक्रिया को विरेचन कहा जाता है। इस तरह से विरेचन की प्रक्रिया

द्वारा कुछ वैसे दबे हुए संवेग की अभिव्यक्ति होती है जिसे स्वयं रोगी बहुत समय पहले से नहीं जानता था। चिकित्सक ऐसे संवेगों को अभिव्यक्त करने में रोगी को भरपूर प्रोत्साहन देता है।

**d) नयी सूचना देना** -मनश्चिकित्सा द्वारा चिकित्सक रोगी को कुछ नयी-नयी सूचनाओं को देता है ताकि रोगी के वर्तमान व्यवहार में परिवर्तन किया जा सके।

**e) रोगी में उम्मीद एवं विश्वास विकसित करना** - अन्त में मनश्चिकित्सा से रोगी में परिवर्तन के लिए विश्वास तथा उम्मीद उत्पन्न हो जाती है। अपने विवेक द्वारा चिकित्सक हर तरह से परिस्थिति को इस ढंग से मोड़ते हैं कि रोगी में यह विश्वास उत्पन्न हो जाए कि उसे मदद की जा रही है। धीरे-धीरे उसके व्यवहार में धनात्मक परिवर्तन होने लगते हैं तथा उनकी सांवेगिक समस्याएँ कम हो जाती हैं।

मनोपचार या मनश्चिकित्सा एक लम्बे समय तक चलने वाली प्रक्रिया है जिसमें चिकित्सक रोगी के साथ परस्पर मधुर सम्बन्ध बनाते हैं। जिससे रोगी की सांवेगिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं का हल हो पाता है।

### 5.3.3 मनश्चिकित्सा के उद्देश्य या लक्ष्य-

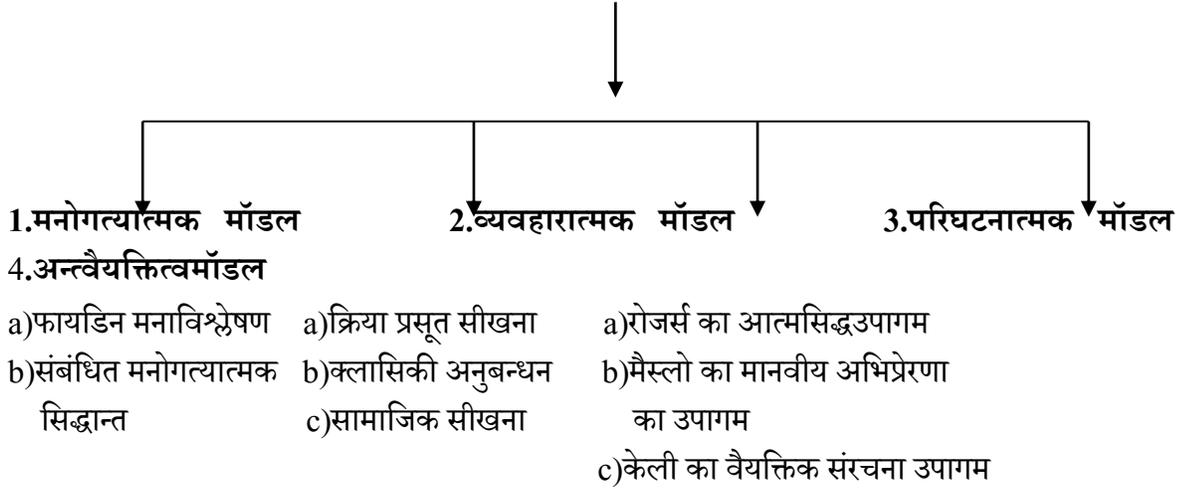
मनोपचार या मनश्चिकित्सा के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य हैं-

- 1) रोगी के अभिप्रेरण व साहसशक्ति को बढ़ाना, ताकि वो सही व्यवहार कर सके।
- 2) भावों की अभिव्यक्ति द्वारा सांवेगिक समस्याओं को कम करने में मदद करना।
- 3) अपनी आदतों को बदलने में मदद करना।
- 4) रोगी के आन्तरिक संघर्षों को एवं व्यक्तिगत तनाव को कम करना।
- 5) व्यर्थ के कार्यों एवं लक्ष्यों से उसके मन को हटाकर उसको अपनी सामर्थ्य पहचानने में सहायता करना।
- 6) रोगी को अपने वातावरण की वास्तविकताओं के साथ अच्छी तरह समायोजन करने में सहयोग प्रदान करना।
- 7) शारीरिक अवस्थाओं में परिवर्तन करना
- 8) रोगी में अनुपयुक्त व्यवहार को बढ़ाने वाले कारकों को दूर करना।
- 9) रोगी के सामाजिक वातावरण को परिवर्तित करना।
- 10) चेतन की वर्तमान अवस्था को परिवर्तित करना।

### 5.4 नैदानिक हस्तक्षेप के मॉडल -

नैदानिक मनोविज्ञान में मॉडल से तात्पर्य एक ऐसे ढाँचा से होता है जिसके द्वारा नैदानिक मनोविज्ञान में विशेषज्ञों द्वारा मानव व्यवहार की व्याख्या की जाती है। मॉडल से इस तथ्य की व्याख्या होती है कि कोई भी व्यवहार किस तरह से विकसित होता है और फिर वह किस तरह से समस्याक हो जाता है। इसके साथ ही समस्यात्मक व्यवहार का मूल्यांकन, उपचार का भी वर्णन होता है।

### नैदानिक हस्तक्षेप के मॉडल



#### 5.4.1 नैदानिक हस्तक्षेप मॉडल के उद्देश्य

नैदानिक मनोविज्ञान में मॉडल के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

- मॉडल नैदानिक मनोविज्ञानियों के चिन्तनों को संगठित करने में मदद करता है।
- मॉडल नैदानिक मनोविज्ञानियों के निर्णयों एवं हस्तक्षेपों को निर्देशित करता है।

#### 5.4.2 नैदानिक हस्तक्षेप के प्रमुख मॉडल

**5.4.2.1 मनोगत्यात्मक मॉडल** - इस मॉडल का सिगमंड फ्रायड ने प्रतिपादन किया था। इसमें उन्होंने मानसिक रोगों के मनोवैज्ञानिक कारणों पर बल डाला। इस मॉडल की निम्नलिखित पूर्वकल्पनाएँ हैं जिसके आधार पर नैदानिक मनोविज्ञान मानव-व्यवहार की व्याख्या करते हैं तथा समस्यात्मक व्यवहार का उपचार भी करते हैं-

- मानव व्यवहार का निर्धारण जैसे आवेगों, अभिप्रेरणों इच्छाओं एवं संघर्षों से होता है जो उसके चेतन में नहीं होते बल्कि अचेतन स्तर पर होते हैं।
- सामान्य तथा असामान्य दोनों तरह के व्यवहार मन के भीतर होने वाले संघर्षों, इच्छाओं, आवेगों आदि के द्वारा उत्पन्न होते हैं।
- इन अंतरा मानसिक क्रियाओं का व्यक्ति सीधे प्रत्यक्षण नहीं कर सकता है परन्तु जब तक इनका स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण नहीं किया जाता है, मानव व्यवहार को नहीं समझा जा सकता है और उसके समस्यात्मक व्यवहार का उपचार भी नहीं किया जा सकता है।

मनोगत्यात्मक मॉडल के अन्तर्गत निम्न दो उपागम आते हैं जिनके द्वारा इस मॉडल की व्याख्या की गयी है-

**1. फ्रायडियन मनोविश्लेषण** - उलमान्न एवं क्रैसनर (1975) ने फ्रायडियन उपागम या मनोविश्लेषण का एक मेडिकल मॉडल के रूप में वर्णन किया है। इस मॉडल के निम्नलिखित चार प्रकार हैं-

**a) मानसिक नियतिवाद** - इसके अर्न्तगत इस बात पर बल डाला जाता है कि मानव व्यवहार का कोई-न-कोई कारण अवश्य होता है। यह कारण ऐसा हो सकता है कि उसे बाहर से देखा नहीं जा सकता है तथा स्वयं व्यवहार करने वाले व्यक्ति को इसका पता न हो। कभी-कभी आकस्मिक व्यवहार भी अर्थपूर्ण होते हैं क्योंकि उनसे व्यक्ति में छिपी हुई दमित इच्छाओं तथा आवेगों के बारे में पता चलता है। व्यक्ति का इस प्रकार का व्यवहार इन्हीं संघर्षों एवं दमित इच्छाओं के कारण करता है। ऐसे छिपे हुए मानसिक संघर्षों एवं इच्छाओं को फ्रायड ने अचेतन कहा है। अपने संबंधी का नाम भूल जाना, दूसरे से ली गई पुस्तक को उन्हें लौटाना भूल जाना, किसी के यहाँ जाकर उसके पास रूमाल छोड़ आना आदि ये व्यवहार किसी न किसी अचेतन इच्छा से निर्देशित होते हैं और इनका कोई न कोई अर्थ अवश्य होता है।

**b) मानसिक संरचना:** मानसिक संरचना के अर्न्तगत **इदम, अहं एवं पराहं** आते हैं और मानव व्यवहार इन्हीं तीनों के अन्तःक्रिया का परिणाम होता है।

**इदम** सुखमय नियमों द्वारा निर्धारित होता है क्योंकि यह अपनी जन्मजात इच्छाओं की तुरन्त संतुष्टि चाहता है, चाहे परिणाम कुछ भी हो।

इदम के बाद **अहं** विकसित होता है। यह इदम एवं पराहं के बीच एक बॉन्ड की तरह कार्य करता है। एक साल की अवस्था होने पर अहं का विकास प्रारंभ हो जाता है। अहं को बाहरी माँगों या वातावरण के माँगों से समायोजन स्थापित करना होता है, इसलिए यह वास्तविकता के नियम द्वारा निर्देशित होता है। इस तरह से अहं वातावरण के माँगों के साथ समायोजन स्थापित करने में बुद्धि, तर्क शक्ति आदि का सहारा लेता है तथा साथ-ही-साथ इदम की माँगों पर एक नियंत्रण भी रखता है।

**पराहं** - तीसरा प्रमुख पहलू है जिसमें परिवार एवं संस्कृति द्वारा सिखाये गये नैतिकता एवं मूल्य आदि आते हैं। व्यवहार की उत्पत्ति इदम, अहं तथा पराहं के बीच की अन्तःक्रिया के कारण होता है। जब इन तीनों का लक्ष्य अलग-अलग होता है, तो इसमें आंतरिक मानसिक संघर्ष उत्पन्न होता है। जिसका ठीक से समाधान नहीं होने पर व्यक्ति में असामान्यता विकसित हो जाती है।

**c) दुष्चिन्ता एवं रक्षा प्रक्रम** - दुष्चिन्ता से तात्पर्य डर एवं आशंका से होता है। इसे मनोविश्लेषणात्मक भाषा में मानसिक दर्द भी कहा गया है। दुष्चिन्ता के कारण व्यक्ति में व्याकुलता तथा दर्द होता है, इसलिए व्यक्ति का अहं उससे अपने आप को बचाने के लिए कुछ उपाय ढूँढता है। अहम इससे बचने के लिये कुछ तर्क संगत उपाय ढूँढता है। परन्तु जब वह इसमें सफल नहीं हो पाता है तो कुछ अतर्कसंगत उपायों को अपनाता है, इन अतर्कसंगत उपायों को अहं रक्षा प्रक्रम कहा जाता है। ऐसे उपाय अचेतन स्तर पर होते हैं। जैसे-दमन, प्रतिक्रिया निर्माण, प्रक्षेपण, यौक्तिकीकरण, विस्थापन, प्रतिगमन आदि

**d) मनोलैंगिक अवस्थाएँ** - फ्रायड के अनुसार जैसे-जैसे जन्म के बाद बच्चे का विकास होता जाता है, वैसे-वैसे वह विभिन्न मनोलैंगिक अवस्थाओं से होकर गुजरता है। प्रत्येक अवस्था में बच्चा का शरीर के किसी एक भाग में सबसे अधिक आनंद मिलता है। ऐसी अवस्थाएँ निम्नांकित पाँच हैं-

**i) मुखावस्था** - यह जन्म से प्रथम दो साल की अवधि की अवस्था होती है और इसमें कामोत्तेजक क्षेत्र मुँह होता है और बच्चा चूसने, निगलने, दाँत काटने आदि जैसी क्रियाओं से आनन्द प्राप्त करता है।

**ii) गुदावस्था** -यह अवस्था दो साल से तीन साल की होती है तथा इसमें कामोत्तेजक क्षेत्र शरीर का गुदा क्षेत्र होता है। इस अवस्था में बच्चे मल-मूत्र त्यागने से संबंधित क्रियाओं से आनंद उठाते हैं।

**iii) लिंग प्रधानावस्था या लैंगिक अवस्था** - यह अवस्था तीन साल से पाँच साल तक की होती है तथा इसमें कामोत्तेजक क्षेत्र जनेन्द्रिय होते हैं। इस अवस्था में बच्चे अपने जनेन्द्रिय को छूते हैं, मलते हैं तथा खींचते हैं जिनसे उनके जनेन्द्रिय में संवेदन उत्पन्न होता है और उन्हें लैंगिक आनन्द की प्राप्ति होती है। इसी अवस्था में लड़का में मातृ मनोग्रन्थि तथा लड़कियों में पितृ मनोग्रन्थि का विकास होता है।

**iv) अव्यक्तावस्था या विलीनावस्था** -यह अवस्था छह साल से प्रारंभ होकर बारह वर्ष की आयु तक की होती है। इस अवस्था में बच्चों में छिपी हुई लैंगिक इच्छाएँ होती हैं। इस अवस्था में बच्चे अपनी लैंगिक इच्छाओं को अनैतिक समझकर उनका दमन कर देते हैं तथा अन्य बाहरी चीजों एवं घटनाओं में अधिक रूचि दिखलाना आरंभ कर देते हैं।

**v) जनेन्द्रियावस्था** -मनोलैंगिक विकास की यह अंतिम अवस्था है जो तेरह वर्ष की आयु से प्रारंभ होकर निरंतर चलती रहती है। इस अवस्था में व्यक्ति में यौग अंग परिपक्व हो जाते हैं तथा उन्हें विषमलिंग कामुकता से आनन्द आता है।

फ्रायड का मत है कि प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति को उचित संतुष्टि मिलनी आवश्यक है। यदि किसी अवस्था में उसे उचित संतुष्टि प्राप्त नहीं होती है, तो उसका व्यवहार उसी अवस्था पर स्थायीकृत हो जाता है। जैसे-यदि किसी बच्चों को मुखावस्था में उचित संतुष्टि नहीं मिलती है तो उसमें अत्यधिक खाने की प्रवृत्ति, पान खाने की प्रवृत्ति, खाते समय अँगुली चाटने की प्रवृत्ति, अधिक बोलने की प्रवृत्ति जैसा व्यवहार देखने को मिलता है।

**2. संबंधित मनोगत्यात्मक उपागम** -फ्रायड द्वारा प्रतिपादित मौलिक विचारों का बाद में संशोधन किया गया। इरिक्सन, एडलर, ओटोरैंक, युंग, सुल्लीभान, अन्ना फ्रायड तथा कोहट आदि ऐसे मनोवैज्ञानिक हैं जिन्होंने उनके मौलिक विचारों को संशोधित किया। इन लोगों ने फ्रायड के विचारों में निम्न संशोधन किये-

a) फ्रायड ने अभिप्रेरण में अचेतन मूलप्रवृत्ति को महत्वपूर्ण बताया था। इस बिन्दु पर फ्रायड के विचारों से असहमति।

b) मानव व्यवहार पर सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों के प्रभाव को बताया।

c) इन मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यक्तित्व के चेतन पहलुओं पर ज्यादा ध्यान दिया।

d) व्यक्तित्व विकास बाल्यावस्था में ही पूरा नहीं होता है बल्कि वयस्कावस्था में भी चलता रहता है।

इनके अनुसार व्यक्तित्व विकास में सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। इरिक्सन द्वारा व्यक्तित्व विकास के लिए आठ मनोसामाजिक अवस्थाओं का वर्णन किया है जो फ्रायड के पाँच मनोलैंगिक अवस्थाओं से अधिक विस्तृत एवं महत्वपूर्ण हैं। इरिक्सन का मत है कि मनोसामाजिक विकास के प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति में एक सामाजिक संकट उत्पन्न होता है, जिसका यदि वह सफलतापूर्वक समाधान कर लेता है तो व्यक्ति में धनात्मक परिणाम होते हैं और वह अगली अवस्था में सामाजिक संकट के साथ ठीक ढंग से निबट पाता है। यदि वह इस संकट से ठीक ढंग से निबट नहीं पता है तो इससे उसके व्यक्तित्व का आगे का विकास रूक जाता है।

एलडर के अनुसार व्यक्तित्व विकास का सबसे महत्वपूर्ण कारक मूलप्रवृत्ति न होकर हीनता बतलाया गया है। एलडर ने व्यक्तित्व विकास में सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों पर अधिक बल डाला है। उन्होंने कहा कि परिवार में व्यक्ति के जन्म क्रम का प्रभाव व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। एलडर के समान रैंक ने भी फ्रायड द्वारा यौन एवं आक्रामकता को मानव व्यवहार का प्रमुख आधार नहीं माना।

#### दोष-

- मनोगत्यात्मक मॉडल में इदम, अहं, पराहं, अचेतन अभिप्रेरणा तथा दमन आदि ऐसे ही संप्रत्यय है जिनकी माप नहीं की जा सकती है।
- इस मॉडल में मानव के नकारात्मक पहलू पर जैसे लैंगिक एवं आक्रमक मूलप्रवृत्तियों पर अधिक बल डाला गया है जबकि आंतरिक वृद्धि, आन्तरिक शक्ति तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों को ध्यान नहीं रखा गया।

#### 5.4.1.2 व्यवहारात्मक मॉडल या अधिगम सिद्धान्त मॉडल

व्यवहारात्मक मॉडल ने मानव के व्यवहार उसका पर्यावरणीय एवं व्यक्तिगत अवस्थाओं जो उसे प्रभावित करता है, के संबंध पर अधिक बल डालता है। इस मॉडल की मुख्य मान्यता यह है कि मानव व्यवहार सीखना या अधिगम द्वारा प्रभावित होता है जो एक विशेष सामाजिक परिस्थिति में होता है। इस मॉडल को कभी-कभी सीखना या अधिगम सिद्धान्त मॉडल भी कहा जाता है। व्यवहारात्मक मॉडल में वैयक्तिक विभिन्नता तथा लोगों के बीच समानता की व्याख्या की जाती है। वैयक्तिक विभिन्नता का अर्थ है, इसकी व्याख्या व्यक्ति के सीखने के अपूर्व अनुभवों के रूप में की जाती है।

#### विशेषताएँ-

- व्यवहारात्मक मॉडल में व्यवहार के निर्धारण में पर्यावरणी कारकों पर अधिक बल डाला जाता है, न कि वंशानुगत एवं जैविक कारकों पर।
- व्यवहारात्मक मॉडल में नैदानिक मूल्यांकन के आधार पर यह पता लगाया जा सकता है कि रोगी के वर्तमान समस्या को कैसे सीखा और वह समस्या किस तरह से बनी हुई है, इसकी पहचान करके उसके व्यवहार को सुधारा जाता है।
- व्यवहारात्मक मॉडल में नैदानिक मूल्यांकन तथा उपचार दोनों एक दूसरे से जुड़े होते हैं।

#### व्यवहारात्मक मॉडल के रूपान्तरण

**1. क्रियाप्रसूत सीखना** -व्यवहारात्मक मॉडल के क्रियाप्रसूत रूपान्तर का विकास बी0एफ0 स्कीनर द्वारा किया गया। स्कीनर का मत है कि किसी व्यवहार की उत्पत्ति, तथा उससे उत्पन्न परिवर्तन को समझने के लिए यह आवश्यक है कि पर्यावरणी उद्दीपकों तथा उससे उत्पन्न होने वाले व्यवहारों के बीच के संबंध को समझा जाए। इस उपागम में उद्दीपकों, अनुक्रियाओं एवं उनके परिणामों के कार्यवाही संबंध पर बल डाला गया है। उदाहरण-माना कोई व्यक्ति किसी परिस्थिति में आक्रामक व्यवहार करता है। इस उपागम में यह आक्रामक व्यवहार तथा उसके परिणाम के बीच संबंध जोड़कर उसकी व्याख्या की जाएगी। इस आक्रामक व्यवहार के बाद

उसे पुरस्कार मिलता है या उसे किसी प्रकार का लाभ होता है अर्थात् उसका परिणाम सुखद होता है, तो उसकी व्याख्या यह होगी कि व्यक्ति ने आक्रामक व्यवहार करना सीख लिया है।

**2. क्लासिकी अनुबंधन या प्रतिवादी सीखना** - इसे पैवलव द्वारा प्रतिपादित किया गया। व्यवहारात्मक मॉडल के इस रूपान्तर का उपयोग अधिकतर दुष्चिन्ता विकृतियों से उत्पन्न समस्याओं को दूर करने में किया गया है। इस रूपान्तर में अनुबंधित उद्दीपक तथा स्वाभाविक उद्दीपक के बीच साहचर्य के सीखने पर बल डाला जाता है। इस तरह के सीखने की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें अनुबंधित उद्दीपक द्वारा ही अनुक्रिया की उत्पत्ति होती है। इसके अनुसार व्यक्ति अंधेरे से डरना इसलिए सीख जाता है, कि व्यक्ति में अंधेरे में तरह-तरह के डर-उत्पन्न करने वाले उद्दीपक जैसे डरावना स्वप्न, डरावना स्वप्नचिन्तन आदि उत्पन्न होने लगते हैं।

जैसे यदि कोई व्यक्ति सामाजिक परिस्थिति से अपने आप को डर से दूर रखता है, तो इसका कारण ऐसी परिस्थिति में उसमें उत्पन्न नकारात्मक एवं दर्दनाक अनुभव हो सकते हैं। (जैसे-ऐसी सामाजिक परिस्थिति में यदि पहले उसका काफी मजाक उड़ाया गया हो) यह क्रिया प्रसूत अनुबंधन का उदाहरण होगा। परन्तु उसमें इस तरह की सामाजिक परिस्थिति से डर इसलिए भी उत्पन्न हो सकता है क्योंकि हो सकता है कि ऐसी अनुभवों से उत्पन्न बेचैनी का सम्बन्ध या साहचर्य सामाजिक पार्टी के साथ स्थापित हो चुका हो। यह क्लासिकी अनुबंधन का उदाहरण होगा।

स. सामाजिक सीखना या संज्ञानात्मक व्यवहारपरक सीखना - इस मॉडल का प्रतिपादन अलवर्ट वैण्डुरा तथा वाल्टर मिसकेल ने किया था। उन्होंने अपने उपागम में प्रेक्षणात्मक सीखने पर बल डाला है। वैण्डुरा का मत है कि व्यक्ति न केवल क्रियाप्रसूत एवं क्लासिकी अनुबंधन द्वारा प्रत्यक्ष रूप से सीखता है बल्कि जब वह दूसरों के व्यवहारों को प्रेक्षण करता है, उसके द्वारा भी सीखता है। इन्होंने अपने एक प्रयोग में दिखलाया है कि जब मानव प्रयोज्य को मॉडल दिखाया जाता है तो वह उसके व्यवहार को केवल देखकर ही सीख लेते हैं। इसके लिए किसी अभ्यास या पुरस्कार की भी जरूरत नहीं पड़ती है। **वैण्डुरा, रॉस एवं रॉस (1963)** ने अपने अध्ययन में पाया है कि जिन बच्चों ने मॉडल को 'बोबो' नामक गुड़िया के प्रति आक्रामक व्यवहार करते पाया, वे उसके प्रति वैसा ही व्यवहार करना सीख गये तथा जिन बच्चों ने मॉडल को बोबो के प्रति शांतिपूर्ण व्यवहार करते हुए देखा, वे उसके प्रति वैसा ही व्यवहार करना सीख गये।

इस मॉडल की नैदानिक हस्तक्षेप अर्थात् उपचार में महत्वपूर्ण भूमिका है। व्यवहारात्मक मापन में व्यवहारात्मक साक्षात्कार, रेटिंग मापनी, आत्म रिपोर्ट प्रश्नावली, प्रत्यक्ष प्रेक्षण तथा मनोदैहिक अनुक्रियाओं के द्वारा व्यवहार की माप की जाती है। व्यवहारात्मक मापन का मुख्य कार्य व्यवहार चिकित्सा में मदद पहुँचाना होता है।

**गुण:-**

- इस मॉडल की विश्वसनीयता तथा वैधता अधिक है क्योंकि इसके द्वारा व्यवहार की उत्पत्ति तथा परिवर्तन की व्याख्या वस्तुनिष्ठ एवं प्रयोगात्मक ढंग से की गयी है
- इस मॉडल में जितने भी संप्रत्यय लिये गये हैं उन्हें अनुभव के आधार पर इसके अन्तर्गत रखा गया है।

**दोष-**

- a) व्यवहारात्मक मॉडल में वैयक्तिक व्यवहार की व्याख्या की जाती है परन्तु स्वयं व्यक्ति की उपेक्षा की जाती है।
- b) व्यवहारात्मक मॉडल में जो भी कार्यविधि एवं परीक्षण का उपयोग किया जाता है, वे कम वैध एवं वैज्ञानिक है।

### 5.4.1.3 परिघटनात्मक मॉडल

परिघटनात्मक मॉडल के अनुसार वातावरण में मौजूद उद्दीपकों को प्रत्यक्षीकरण के आधार पर मानव व्यवहार का निर्धारण होता है। इस मॉडल में इस बात पर बल डाला जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति वातावरण को अपने-अपने ढंग से देखता है और उसके व्यवहार में इसकी छवि साफ दिखाई देती है। इसे एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझाया जा सकता है-मान लिया जाय कि दो छात्र शिक्षक का भाषण सुन रहे है। हो सकता है कि इसमें एक को वह भाषण काफी रुचिकर लगा तथा दूसरे को उस भाषण में नीरसता का अनुभव हुआ। परिघटनात्मक मॉडल के अनुसार ऐसा इसलिए होता है क्योंकि प्रत्येक छात्र ने शिक्षक के भाषण को अपने-अपने ढंग से सुना और महसूस किया।

#### गुण-

- a) मानव एक सक्रिय चिन्तनशील प्राणी होता है और वह स्वयं, अपने द्वारा किये गये कार्यों के लिए जवाबदेह होता है। वह अपने व्यवहार के बारे में पूरी तरह से सचेत होकर कोई निर्णय लेता है।
- b) कोई भी व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के व्यवहार को तभी समझ सकता है जब उसमें उस दूसरे व्यक्ति की आँखों से वातावरण को देखने की क्षमता होती है। इसका मतलब मानव व्यवहार तभी समझने योग्य होता है जब उसे उस व्यक्ति के नजर से देखा जाय जिसका प्रेक्षण किया जा रहा है।

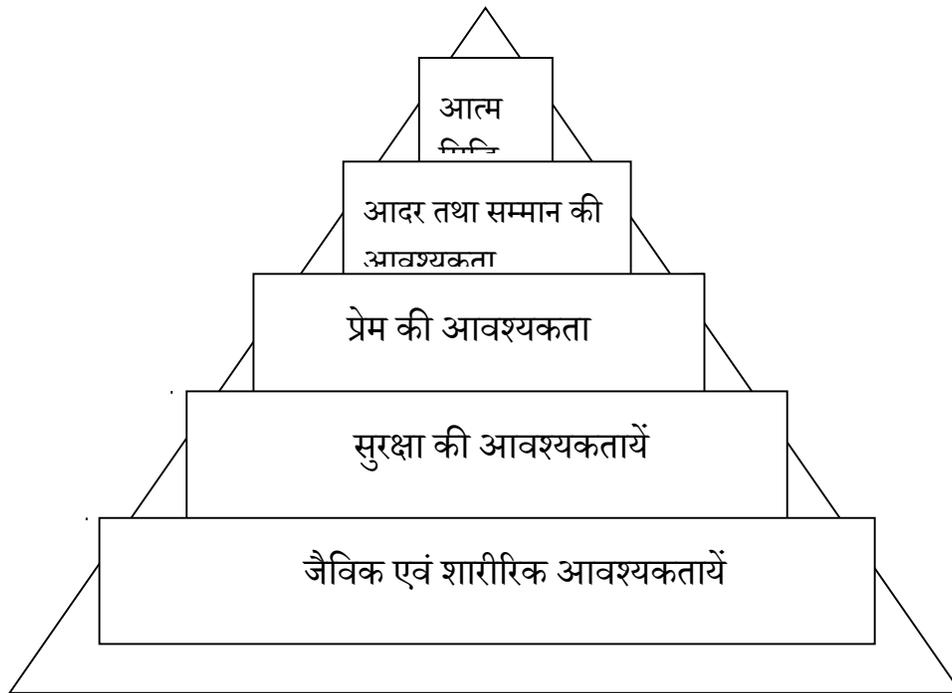
**स्रोत:-** परिघटनात्मक मॉडल के निम्नलिखित स्रोत है-

- a) रोजर्स का आत्म-सिद्धि उपागम -** प्रत्येक व्यक्ति में वृद्धि करने एवं आगे की ओर बढ़ने की एक जन्मजात प्रवृत्ति होती है। इसी अभिप्रेरण से मानव के सभी तरह के व्यवहार प्रेरित होते है। इस अभिप्रेरण को आत्म-सिद्धि कहा जाता है। इस तरह का प्रयास व्यक्ति जन्म से ही करता है और पूरी जिन्दगी चलते रहता है। रोजर्स के अनुसार व्यक्ति का सबसे प्रमुख अभिप्रेरण, आत्म-सिद्धि अभिप्रेरण होता है। इस तरह के अभिप्रेरण द्वारा दो तरह की आवश्यकताओं की उत्पत्ति होती है-

**1. स्वीकारात्मक सम्मान की आवश्यकता:** स्वीकारात्मक सम्मान से तात्पर्य दूसरों के द्वारा स्वीकार किये जाने, दूसरों का स्नेह पाने एवं उनके द्वारा पसंद किये जाने की इच्छा से होती है। ऐसी आवश्यकता तब देखने को मिलती है जब दूसरों से सम्मान मिलता है और संतुष्टि होती है और जब ये सम्मान नहीं मिलता है तो व्यक्ति में असंतोष होता है। **2. दूसरे व्यक्तियों से सम्मान:** आत्म सम्मान से तात्पर्य इस बात से होता है कि व्यक्ति में अपने आप को सम्मान एवं स्नेह देने की आवश्यकता होती है। व्यक्ति में जब अच्छे या सुखद अनुभव होते है तब यह आवश्यकता उत्पन्न होती है। जब व्यक्ति को समाज में कुछ महत्वपूर्ण व्यक्तियों से मान-सम्मान मिलता है, तो इसमें धनात्मक आत्म-सम्मान की भावना या प्रेरणा उत्पन्न होती है।

रोजर्स के अनुसार, यदि व्यक्ति की अनुभूतियों एवं आत्म-संप्रत्यय में संगति या समानता होती है तो इससे एक स्वस्थ व्यक्तित्व का विकास होता है और वह सामान्य सामाजिक व्यवहार करेगा। इस तरह के स्वस्थ व्यक्तित्व को रोजर्स ने एक सफल व्यक्ति कहा। यदि व्यक्ति की अनुभूतियों एवं आत्म-संप्रत्यय में असंगति होती है या अंतर होता है, इससे उसने चिन्ता उत्पन्न होती है और व्यक्ति के व्यवहार में असामान्यता आने लगती है।

**b) मैसलो का मानवीय अभिप्रेरणा का सिद्धान्त -** मैसलो के अनुसार मानव व्यवहार का कोई ना कोई लक्ष्य या उद्देश्य होता है। एक स्वस्थ व्यक्ति अपने लक्ष्यों को इस प्रकार प्राप्त करता है, कि उसके जीवन में व्यक्तित्व में समायोजन बना रहे। जब कोई व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति ठीक तरह से नहीं कर पाता है तो उसमें मानसिक तनाव, चिन्ता तथा अन्य मानसिक विकृतियों आदि की सम्भावना बढ़ जाती है। मैसलों ने इस सिद्धान्त में मानव के धनात्मक एवं सर्जनात्मक पहलू पर बल डाला है। उन्होंने अपने सिद्धान्त में पाँच तरह की मुख्य आवश्यकताओं को बताया है। इन आवश्यकताओं को उन्होंने एक पदानुक्रम (बढ़ते क्रम में) बताया है।



मैसलो के अनुसार आवश्यकताओं की पदानुक्रमिक व्यवस्था

मैसलो के अनुसार

पहले स्तर पर व्यक्ति की जैविक एवं शारीरिक आवश्यकतायें होती है। जैसे-भूख, प्यास काम (सेक्स) सम्बन्धी आवश्यकतायें। सबसे पहले व्यक्ति इन आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

दूसरे स्तर पर सुरक्षा की आवश्यकतायें होती हैं। जब प्रथम स्तर की आवश्यकतायें पूरी हो जाती हैं, तब उसे अपनी शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक सुरक्षा की आवश्यकता पड़ती है। जैसे- मकान, वस्त्र आदि।

तीसरे स्तर पर मैस्लो ने प्रेम की आवश्यकता को रखा। जब व्यक्ति की प्रथम व द्वितीय स्तर की आवश्यकतायें पूरी हो जाती हैं, तब उसे प्रेम की आवश्यकता होती है। जैसे - मित्र, सम्बन्धी एवं जीवन साथी आदि।

चौथे स्तर पर व्यक्ति अपने अन्दर आदर तथा सम्मान की आवश्यकता की पूर्ति चाहता है। इसके लिए वह समाज में सम्मान एवं प्रतिष्ठा पाने के लिए प्रयास करता है।

पाँचवे तथा अन्तिम स्तर पर मैस्लो ने आत्म सिद्धि (आत्म वास्तविकरण) को स्थान दिया है। ये व्यक्ति के जीवन का चरम बिन्दु है। एक परिपक्व व्यक्ति में आत्म सिद्धि के लक्षण होते हैं और ये बहुत ही कम व्यक्तियों के अन्दर मिलते हैं। इसके लिए मैस्लो ने उन व्यक्तियों का अध्ययन किया था, जिन्होंने अपनी क्षमताओं को पूर्ण रूप से पहचाना था। जैसे- एब्राहम लिंकन, बीथोवेन, रूजवेल्ट, आइस्टीन आदि।

मैस्लो ने आत्मसिद्धि आवश्यकता को उच्च स्तर की माना है। व्यक्ति की ऊपरी आवश्यकताओं की पूर्ति तब संभव हो पाती है, जब तक की उसकी निचले स्तर की आवश्यकतायें पूरी न हो जायें। उन्होंने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति में सम्पूर्ण सिद्धि की अन्तःशक्ति होती है। फिर भी व्यक्ति इस स्तर पर तब तक नहीं पहुँच सकता जब तक उसके निचले स्तर की आवश्यकतायें पूरी ना हो जायें।

**c) केली का वैयक्तिक संरचना उपागम-** केली के अनुसार मानव व्यवहार की व्याख्या व्यक्तिगत संरचना के आधार पर की। वैयक्तिक संरचना से तात्पर्य एक ऐसे साधन से होता है जिसके सहारे व्यक्ति अपने वातावरण की घटनाओं की व्याख्या करता है तथा उसे समझने की कोशिश करता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यवहार के परिणाम को ध्यान में रखता है और उसे पूरा करता है। व्यक्ति अपनी जिन्दगी की घटनाओं को समझने की कोशिश करता है तथा उसके बारे में पूर्वानुमान लगाता है। जब कुछ कारण से व्यक्ति अपनी सामाजिक अनुभवों के बारे में गलत एवं दोषपूर्ण संरचना विकसित कर लेता है तो उसका व्यवहार समस्यात्मक हो जाता है। यदि किसी व्यक्ति में व्यक्तिगत संरचना की संख्या कम है तो वह कुछ सीमित संरचनाओं की ही घटनाओं को ही समझकर उनका अनुमान लगा पायेगा और सही व्यवहार नहीं कर पायेगा। केली के अनुसार व्यक्ति में अपने इस व्यक्तिगत संरचना को बदलने की भी क्षमता होती है और व्यक्ति इसमें परिवर्तन करके उपयुक्त व्यवहार कर सकता है।

**गुण:-**

- परिघटनात्मक मॉडल व्यक्ति के अनुभवों को काफी महत्त्व देता है।
- परिघटनात्मक मॉडल में मानव जीवन की अन्तःशक्ति तथा उसके आगे बढ़ने की क्षमता पर बल डाला गया है।

**दोष:-**

- इस मॉडल में चेतन अनुभूति पर अधिक बल डाला है तथा अचेतन, अभिप्रेरण, परिस्थिति के प्रभाव तथा कुछ जैविक कारकों की अनदेखी की गयी है।
- परिघटनात्मक मॉडल के अनुसार आत्म-सिद्धि व्यक्ति की एक जन्मजात प्रवृत्ति होती है, इससे विकास के कारण का तो पता चला है परन्तु उसके विकास की व्याख्या नहीं हो पायी है।

### 5.4.1.4 अन्तर्वैयक्तिक मॉडल

इस मॉडल के अनुसार रोगी की नैदानिक समस्या की व्याख्या उसके भूत एवं वर्तमान के सम्बन्धों के आधार पर और रोगी की अन्य व्यक्तियों के साथ सम्बन्धों के आधार पर की जाती है। व्यक्ति अन्तर्वैयक्तिक (आपसी) समायोजन के माध्यम से अन्तःक्रियाओं को करता है।

अन्तःवैयक्तिक समायोजन का तात्पर्य दो व्यक्तियों के बीच एक समायोजन से होता है। वे दो व्यक्ति आपस में संचार एवं अन्तःक्रिया का एक विशेष पैटर्न बना लेते हैं। ये पैटर्न उन्हें लक्ष्य की प्राप्ति तथा आवश्यकताओं की पूर्ति में तथा आवसी सम्बन्ध बनाने में मदद करता है। जब व्यक्ति के यह अन्तःवैयक्तिक सम्बन्ध किसी कारणवश खराब या दोषपूर्ण हो जाते हैं, तो उसमें कई तरह की मानसिक समस्याएँ उत्पन्न होने लगती हैं।

बचपन में जब माता-पिता बच्चों में आत्म-प्रत्यय (स्वयं को पहचानने की क्षमता) को ठीक तरह से विकसित नहीं होने देते हैं, तो ऐसे बच्चे दूसरों के साथ स्वस्थ सम्बन्ध नहीं बना पाते हैं और उनमें असमायोजित व्यवहार विकसित हो जाता है। जब व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के व्यवहार के बारे में दोषपूर्ण पूर्वकल्पना बना लेता है तो उसके अन्तःवैयक्तिक सम्बन्ध कमजोर हो जाते हैं और उसके इस गलत विश्वास के कारण उसके अन्दर कई समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

जब व्यक्ति को ऐसा लगता है कि वह समाज के साथ समायोजन नहीं कर पा रहा है। जबकि वह सामाजिक भूमिकाओं का पूरी तरह से निर्वाह कर रहा है तो उससे उसके समाज के अन्य लोगों के साथ अन्तःवैयक्तिक सम्बन्ध कमजोर पड़ जाते हैं और कई मानसिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

इस मॉडल के आधार पर जो चिकित्सा की जाती है उसे अन्तःवैयक्तिक चिकित्सा कहते हैं। इसका उपयोग व्यक्तित्व विकृतियों, विषाद आदि के रोगियों के उपचार में किया जाता है। इस चिकित्सा पद्धति में रोगी की उन समस्याओं पर विचार किया जाता है कि रोगी कि वे कौन-कौन सी समस्याएँ हैं जिनके कारण उसके अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध खराब हो गये हैं? रोगी को कुछ ऐसे तरीकों को बताया जाता है जिनके द्वारा वे इन सम्बन्धों को सुधार सकें।

इस मॉडल का प्रतिपादन फ्रायड के शिष्य अल्फ्रेड एडलर, इरिक फोम, कैरेन हार्नी, सुलिमान तथा इरिक इरिक्सन ने किया। इसमें मनोवैज्ञानिकों ने इस बात पर बल डाला कि नैदानिक समस्याओं की उत्पत्ति में सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों की मुख्य भूमिका होती है।

**गुण:-**

- अन्तर्वैयक्तिक मॉडल में व्यक्ति के निकट व्यक्तिगत संबंध पर ध्यान दिया जाता है और उसकी समस्याओं को समझने की कोशिश की जाती है। इसलिए इस मॉडल की व्यवहारिक उपयोगिता अधिक है।
- इस मॉडल में व्यक्ति की सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों को ध्यान में रखा जाता है और उसकी समस्याओं का उपचार किया जाता है।

**दोष:-**

- a) अन्तर्वैयक्तिक मॉडल अन्तर्वैयक्तिक संबंधों के बारे पूरी जानकारी नहीं देता है इसलिए इस मॉडल द्वारा नैदानिक समस्याओं की व्याख्या पूरी तरह नहीं होती है।
- b) इस मॉडल द्वारा नैदानिक समस्याओं एवं उसके उपचार की विधियों की जो व्याख्या होती है उसमें वस्तुनिष्ठता कम है।

### 5.5 मनोविश्लेषणवादी या मनोगत्यात्मक चिकित्सा

मनोपचार की सबसे पुरानी चिकित्सा विधि है। फ्रायड को मनश्चिकित्सा का संस्थापक कहा जाता है। फ्रायड ने अपने रोगियों को गहन निरीक्षण किया। इस निरीक्षण के आधार पर उन्होंने मानव संरचना, मनोविकृति के स्वरूप तथा मनोवैज्ञानिक उपचार के बारे में बहुत सी उपकल्पनाएँ बनाईं। उन्होंने अपने इस प्रयास के द्वारा मनोविश्लेषण को मनोपचार की एक महत्वपूर्ण प्रविधि के रूप में विकसित किया। इसके सन्दर्भ में 1990 में उसकी पुस्तक “दी इन्टरप्रेटेशन ऑफ ड्रीम” प्रकाशित हुई।

मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा का मुख्य लक्ष्य रोगी को अपने आप को उत्तम ढंग से समझने में मदद करने से होता है ताकि वह रोगी पहले से अधिक समायोजी ढंग से सोच सके तथा व्यवहार कर सके। इस चिकित्सा में पूर्वकल्पना यह होती है कि जब रोगी यह देख पाता है कि कुसमायोजी ढंग से व्यवहार करने का क्या वास्तविक कारण है (जो प्रायः अचेतन में होते हैं) तथा जब वे यह देखते हैं कि वे कारण बहुत ठोस एवं वैध नहीं हैं, तो वे अपने आप कुसमायोजी ढंग से व्यवहार करना बंद कर देते हैं। इस तरह से रोगी को लक्षण अपने आप दूर हो जाता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार मानव व्यक्तित्व का केन्द्रीय आधार बिन्दु इदम या इड है। इसका मूल स्वभाव काम (सेक्स) सम्बन्धी इच्छाओं तथा आवेशों को पूरा करना है। यह सुखवादी सिद्धान्त पर कार्य करता है अर्थात् केवल खुशी चाहता है। यह व्यक्ति के व्यवहार को अचेतन रूप से अभिप्रेरित करता है।

जैसे शिशु बड़ा होता जाता है तो वह अपने जीवन की वास्तविकताओं को समझने लगता है। वह अपने संवेगों व आवेशों पर नियंत्रण करना सीखता है और उसमें अहम या इगो विकसित होता है। इससे वह अपने परिवार तथा समाज के प्रति समायोजन करना सीखता है। आगे चलकर व्यक्ति के पराहम या सुपर इगो का विकास होता है जो व्यक्ति के व्यवहार का नैतिक कसौटी पर मूल्यांकन करता है। यह व्यक्ति को अनैतिक व्यवहार या समाज द्वारा वर्जित व्यवहार करने की अनुमति नहीं देता है। परन्तु व्यक्ति के इन व्यवहारों या आवेशों का मूल स्रोत इदम होता है। इसलिये पराहम चेतन स्तर पर से उसकी इन सभी अनैतिक इच्छाओं या आवेशों को दबा देता है और अचेतन भाग में डाल देता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार, अचेतन मन में जाकर भी व्यक्ति की ये अनैतिक इच्छायें या आवेश समाप्त नहीं होते हैं और विभिन्न तरह से इन्हें व्यक्त करते रहते हैं। ये इच्छायें पराहम को चकमा तथा झांसा देने लगती हैं।

फ्रायड के अनुसार, जब एक सामान्य व्यक्ति की अनैतिक इच्छायें या आवेश इसके अहम तथा पराहम के नियंत्रण में नहीं आते और उन्हें चकमा देने लगते हैं तो वह पराहम के डर से भी चिन्तित होने लगता है और उसमें समाज के डर के कारण चिन्ता उत्पन्न होने लगती है। यदि किसी व्यक्ति में ऐसा मानसिक संघर्ष (अनैतिक इच्छाओं की तीव्रता तथा पराहम के प्रबल रूप के कारण) लगातार चलता रहता है, तो उसकी चिन्ता धीरे-धीरे दुश्चिन्ता तंत्रिका ताप का रूप ले लेती है।

फ्रायड के अनुसार मनोविश्लेषणात्मक परिस्थिति कुछ ऐसी होती है। रोगी का अहम् उसके आन्तरिक मानसिक संघर्षों या द्वंद्वों से कमजोर पड़ जाता है। इन मानसिक संघर्षों में इदम की नाजायज माँग (मूलप्रवृत्तिक माँग) और पराहम की नैतिकतापूर्ण माँग का ही जोर रहता है। इन्हीं संघर्षों से निबटने के लिए व्यक्ति को चिकित्सक की आवश्यकता पड़ती है। इसमें चिकित्सक तथा रोगी एक दूसरे को मदद करते हैं तथा अपना कार्य प्रारम्भ कर देते हैं। इदम तथा पराहम के संघर्षों के कारण व्यक्ति का अहम बीमार पड़ जाता है। रोगी चिकित्सक के सामने उन सभी सामग्रियों को रख देता है जो उसे परेशान करती हैं। चिकित्सक उन सभी अचेतन मन की सामग्रियों को रोगी के सामने रखकर उनकी व्याख्या करता है। इससे रोगी की उसकी बातें समझ में आने लगती हैं और अपनी भूल तथा अज्ञानता का अहसास होने लगता है। अन्त में चिकित्सक की मदद से अन्त में रोगी के अहम् को अपनी खोई हुई मानसिक ऊर्जा पर नियंत्रण करना आ जाता है और उसका व्यवहार सामान्य होने लगता है।

### 5.5.1 मनोविश्लेषणात्मक उपचार के निम्नांकित तीन मुख्य उद्देश्य हैं-

- रोगी के समस्यात्मक व्यवहार को समझकर उसमें बौद्धिक एवं सांवेगिक सूझ विकसित करना।
- रोगी में सूझ विकसित होने के बाद उस सूझ के कारण के बारे में पता लगाना।
- धीरे-धीरे रोगी के इदम तथा पराहम की क्रियाओं पर अहं के नियंत्रण को बढ़ाना।

### 5.5.2 मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा के चरण-

इस चिकित्सा में ऐसे संघर्ष, इच्छायें, डर आदि जो रोगी के अचेतन मन में होते हैं उन्हें बाहर निकालकर उसमें सूझ विकसित करने की कोशिश की जाती है ताकि उससे उत्पन्न होने वाले संवेगात्मक एवं समायोजन संबंधी कठिनाइयों को रोगी ठीक ढंग से सुलझा सके। इस प्रविधि में चिकित्सक को मनोविश्लेषक कहा जाता है तथा इस विधि को निर्देशात्मक चिकित्सा भी कहा जाता है। इनमें प्रमुख चरण निम्नांकित हैं-

**1) स्वतंत्र साहचर्य की अवस्था -** फ्रायड की चिकित्सा प्रणाली की सबसे पहली अवस्था स्वतंत्र साहचर्य की होती है। रोगी को एक मन्द प्रकाश कक्ष या कमरा में एक आरामदेह एवं गद्दीदार कोच पर लेटा दिया जाता है तथा चिकित्सक रोगी के पीछे बैठ जाता है। चिकित्सक रोगी से कुछ देर तक सामान्य ढंग से बातचीत करता है और रोगी से यह अनुरोध करता है कि उसके मन में जो कुछ भी आता जाए, उसे वह बिना किसी संकोच के कहता जाए, चाहे वे विचार सार्थक हों या निरर्थक हों, नैतिक हों या अनैतिक हों। रोगी की बातों को चिकित्सक ध्यानपूर्वक सुनता है। इस प्रविधि की स्वतंत्र साहचर्य की विधि कहा जाता है जिसका उद्देश्य रोगी के अचेतन में छिपे अनुभवों, मनोलैंगिक इच्छाओं एवं मानसिक संघर्षों को कुरेदकर चेतन स्तर पर लाना होता है।

**2) प्रतिरोध की अवस्था -** प्रतिरोध की अवस्था स्वतंत्र साहचर्य की अवस्था के बाद उत्पन्न होती है। रोगी जब अपने मन में आने वाले विचारों को कहकर चिकित्सक को सुनाता है, तो इसी प्रक्रिया में एक ऐसी अवस्था आ जाती है जहाँ वह अपने मन के विचारों को व्यक्त नहीं करना चाहता है और वह या तो अचानक चुप हो जाता है या कुछ बनावटी बात जान-बूझकर करने लगता है। इस अवस्था को प्रतिरोध की अवस्था कहा जाता है। प्रतिरोध की अवस्था तब उत्पन्न होती है जब रोगी के मन में शर्मनाक एवं चिन्ता उत्पन्न करने वाली बात आ जाती है जिसे वह चिकित्सक को नहीं बतलाना चाहता है। चिकित्सक इस प्रतिरोध की अवस्था को खत्म करने

का प्रयास करता है ताकि चिकित्सा को आगे बढ़ाया जा सके। प्रतिरोध को खत्म करने के लिए वह सुझाव, सम्मोहन, लिखकर विचार व्यक्त करने, पेंनिंग, चित्रांकन आदि का सहारा लेता है। वह रोगी के साथ से घनिष्ठ संवेगात्मक संबंध स्थापित कर लेता है। चिकित्सक रोगी का विश्वासपात्र बनता है ताकि प्रतिरोध की इच्छाओं को आसानी से व्यक्त कर सके। प्रतिरोध समाप्त करना चिकित्सक के लिए चुनौतीपूर्ण कार्य होता है, जिसे काफी सावधानीपूर्वक करना होता है।

**3) स्वप्न-विश्लेषण की अवस्था** -रोगी के अचेतन में जो दमित इच्छायें, बाल्यावस्था की मनोलैंगिक इच्छाएँ एवं मानसिक संघर्ष होते हैं उन्हें विश्लेषण स्वप्न का अध्ययन करके बाहर लाने का प्रयास करता है। फ्रायड के अनुसार स्वप्न में व्यक्ति अपने अचेतन की दमित इच्छाओं को पूरा करता है। इसलिए रोगियों के स्वप्नों का विश्लेषण करके चिकित्सक उसके अचेतन के संघर्षों एवं चिन्ताओं के बारे में जान पाते हैं। रोगी के स्वप्नों के अव्यक्त विषयों के अर्थ को विश्लेषक समझता है जिससे रोगी के मानसिक संघर्ष एवं संवेगात्मक कठिनाई के वास्तविक कारण को समझने में मदद मिलती है।

**4) स्थानान्तरण की अवस्था** -जैसे-जैसे रोगी एवं चिकित्सक के बीच विश्वास एवं लगाव हो जाता है उनके बीच सांवेगिक नये संबंध भी उभर कर सामने आ जाते हैं। रोगी के जैसे संबंध या मनोवृत्ति अपने शिक्षक, माता या पिता के प्रति होती है, वैसी ही मनोवृत्ति या संबंध वह चिकित्सक के प्रति विकसित कर लेता है। इसे ही स्थानान्तरण कहा जाता है। स्थानान्तरण विकसित होने से रोगी शांत मन से एवं पूर्ण विश्वास के साथ अपने विचारों की अभिव्यक्ति करता है। उसे यह विश्वास हो जाता है कि चिकित्सक एक ऐसा व्यक्ति है जिनके सामने वह अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं एवं मानसिक द्वन्दों के बारे में खुलकर अभिव्यक्ति कर सकता है।

स्थानान्तरण के तीन प्रकार होते हैं।

**a) धनात्मक स्थानान्तरण** -इसमें रोगी चिकित्सक के प्रति अपने स्नेह एवं प्रेम की प्रतिक्रियाओं को दिखलाता है। इसमें चिकित्सा का वातावरण पहले से और भी अधिक सौहार्द्रपूर्ण बन जाता है और रोगी सुरक्षित अनुभव करता है तथा वह अचेतन की दमित इच्छाओं की अभिव्यक्ति खुलकर करता है।

**b) ऋणात्मक स्थानान्तरण** -इसमें रोगी चिकित्सक के प्रति अपनी घृणा एवं संवेगात्मक अलगाव की प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति करता है। चिकित्सक रोगी के घृणा एवं आक्रामक व्यवहारों का केन्द्र होता है। इसलिए यहाँ उन्हें काफी सूझ-बूझ से काम लेना पड़ता है तथा वह रोगी का विश्वासपात्र बनकर उसके घृणा भावों को समझता है ताकि चिकित्सा आगे की ओर बनी रहे।

**c) प्रति स्थानान्तरण** -इसमें विश्लेषक ही रोगी के प्रति स्नेह, प्रेम एवं संवेगात्मक लगाव दिखाता है। प्रतिस्थानान्तरण की स्थिति से चिकित्सक की अक्षमता का पता चलता है और ऐसे चिकित्सक के बारे में फ्रायड ने कहा है कि उन्हें पहले अपना मनोविश्लेषण करवा लेना चाहिए। ऐसे विश्लेषक या चिकित्सक को आदर्श नहीं माना जाता है।

**d) समापन की अवस्था** -चिकित्सा के अन्त में विश्लेषक के सफल प्रयास के बाद रोगी को अपने संवेगात्मक कठिनाई एवं मानसिक संघर्षों के अचेतन कारणों का एहसास होता है। जिससे रोगी में सूझ का विकास होता है। सूझ का विकास हो जाने से उसके आत्म प्रत्यक्षण तथा सामाजिक प्रत्यक्षण में परिवर्तन आ जाता है। इससे रोगी की मनोवृत्ति, विश्वास एवं मूल्यों में धनात्मक परिवर्तन होता है। जब रोगी में सूझ का विकास हो जाता

है, तब चिकित्सक रोगी से धीरे-धीरे संबंध-विच्छेद करने का प्रयास करता है। यहाँ चिकित्सक को सावधानी बरतनी पड़ती है कि वह संबंध-विच्छेद अचानक न करे क्योंकि ऐसा करने से कभी-कभी रोगी में नये लक्षण प्रकट को जाते हैं।

#### गुण:-

- मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा द्वारा चिकित्सा अचेतन की दमित इच्छाओं, संघर्षों एवं उलझनों को सुलझाया जाता है, इसलिए इससे जो उपचार होता है, वह अधिक स्थायी होता है। इस विधि में अचेतन की गहराइयों में जाकर उसे कुरेदा जाता है तथा संवेगात्मक कठिनाइयों एवं मानसिक उलझनों के कारण का पता लगाया जाता है, इसलिए इसे गहरी चिकित्सा भी कहा जाता है।
- इस विधि द्वारा मानसिक रोग के कारण का पहले पता लगा लिया जाता है और बाद में उसका उपचार उसी के अनुसार किया जाता है। इसी कारण यह विधि चिकित्सा की अन्य विधियों से उत्तम मानी जाती है।
- यह प्रविधि हिस्ट्रीरिया, विषाद, अन्तर्मुखी तथा कम अभिप्रेरित रोगियों के लिए सबसे अधिक प्रभावकारी माना गया है।

#### दोष:-

- इस विधि द्वारा उपचार में काफी समय लगता है। समय अधिक लगने के कारण रोगी चिकित्सा से उबने लगता है और उसकी कठिनाइयाँ घटने के बजाय बढ़ने लगती हैं।
- इस उपचार विधि में समय अधिक लगने से विश्लेषक अधिक रोगियों का उपचार चाह कर भी नहीं कर पाता है।
- यह विधि खर्चीली भी काफी अधिक है।
- इस विधि का उपयोग काफी छोटे बालकों या काफी बूढ़े लोगों पर सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता है क्योंकि इस तरह के लोग चिकित्सा के दौरान उतना सहयोग नहीं कर पाते हैं जितनी जरूरत पड़ती है।
- इसके लिए विश्लेषक को कुशल एवं प्रशिक्षित होना अनिवार्य है। सभी तरह के चिकित्सक इस विधि का संचालन सही-सही ढंग से नहीं कर पाते हैं।

#### स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

- मनोविश्लेषणवादी चिकित्सा को .....भी कहा जाता है।
- मनोचिकित्सा .....के उपचार की विधि है।
- मनोविश्लेषणवादी चिकित्सा का प्रतिवादन.....ने किया।
- व्यवहारात्मक माँडल में व्यवहार के निर्धारण में .....पर बल डाला जाता है।
- मैसलों ने.....उपागम का प्रतिपादन किया।

## 5.6 सारांश

1. मनोपचार या मनश्चिकित्सा एक उपचार पद्धति है। जिसमें मानसिक एवं सांवेगिक रूप से अस्वस्थ व्यक्तियों का उपचार किया जाता है।
2. मनोपचार के तीन महत्वपूर्ण पहलू होते हैं। 1. सहभागी 2. चिकित्सकीय सम्बन्ध 3. मनचिकित्सा की प्रविधि
3. नैदानिक मनोविज्ञान में कई तरह के माँडल हैं। जिनमें प्रमुख रूप से चार हैं। 1. मनोगत्यात्मक माँडल 2. व्यवहारात्मक माँडल या अधिगम सिद्धान्त माँडल 3. परिघटनात्मक माँडल 4. अन्तवैयक्तिक माँडल
4. प्रत्येक माँडल द्वारा नैदानिक समस्या के स्वरूप को समझने तथा उसका उपचार करने में विशेष योगदान दिया जाता है।
5. मनोगत्यात्मक माँडल के अनुसार सामान्य तथा असामान्य व्यवहार दोनों की उत्पत्ति मन के भीतर होने वाले मानसिक संघर्षों, दमित इच्छाओं तथा आवेगों द्वारा होती है।
6. व्यवहारात्मक माँडल की मान्यता यह है कि मानव व्यवहार अधिगम (सीखना) द्वारा प्रभावित होता है। जो एक विशेष सामाजिक परिस्थिति में होता है।
7. परिघटनात्मक माँडल के अनुसार व्यक्ति अपने वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों का जिस तरह से प्रत्यक्षण करता है। उसका व्यवहार उसी तरह का होता है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति वातावरण के उद्दीपकों का प्रत्यक्षण अपने-अपने ढंग से करता है।
8. अन्तवैयक्तिक माँडल के अनुसार जब व्यक्ति की सामाजिक अंतःक्रिया दोषपूर्ण हो जाती है। अर्थात् जब उसके समाज के खास व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध असंतोषजनक हो जाते हैं तो उसमें असमायोजित व्यवहार उत्पन्न हो जाता है।
9. मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा का प्रतिपादन फ्राइड ने किया। इसमें व्यक्ति की दमित इच्छाओं, चिन्तन एवं डर को अचेतन स्तर से बाहर निकालकर उसमें सूझ विकसित की जाती है।

## 5.7 शब्दावली

1. स्नायु विकृति या चिन्ता विकृति - साधारण मानसिक विकृति है। इससे पीड़ित व्यक्ति का मुख्य लक्षण चिन्ता है। वह चिन्ता से ग्रस्त रहता है परन्तु उसका कारण उसे पता नहीं रहता है।
2. हिस्टीरिया - एक मानसिक रोग है। इससे व्यक्ति एक या अधिक शारीरिक लक्षणों से पीड़ित होता है। परन्तु इसके कायिक आधार नहीं पाये जा सकते हैं।
3. रक्षा प्रक्रम - ये मानसिक प्रक्रियाएँ हैं। जब इस (मनोरचनायें) तथा पराहम् की खीचतान के कारण व्यक्ति में मानसिक संघर्ष उत्पन्न होते हैं, तब इस मनोरचनाओं के माध्यम से इगो अपने आपको चिन्ता या तनाव से बचाने का प्रयास करता है।
4. स्वाभाविक उद्दीपक - जो उद्दीपक बिना किसी पूर्व प्रशिक्षण के प्राणी में अनुक्रिया उत्पन्न करता है। जैसे भोजन एक स्वाभाविक उद्दीपक है।

- 
5. अनुबन्धिक उद्दीपक - एक ऐसा उद्दीपक जिसे स्वाभाविक उद्दीपक के साथ लगातार कुछ प्रयासों तक दिया जाता है, तो वह स्वाभाविक उद्दीपक के समान ही अनुक्रिया करने लगता है।
  6. अनुबन्धित उद्दीपक - एक ऐसा उद्दीपक जिसे स्वाभाविक उद्दीपक के साथ लगातार कुछ प्रयासों तक दिया जाता है तो वह स्वाभाविक उद्दीपक के समान ही अनुक्रिया करने लगता है। जैसे- भोजन के साथ यदि घंटी को लगातार बजाया जाये।
- 

### 5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

---

- |                          |                                   |
|--------------------------|-----------------------------------|
| 1. मनोगत्यात्मक चिकित्सा | 2. कुसमायोजी एवं मानसिक विकृतियों |
| 3. फ्रायड                | 4. पर्यावरणीय कारको               |
| 5. मानवतावादी            |                                   |
- 

### 5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

---

1. उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह-मोतीलाल बनारसीदास
  2. आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञान- डा०एच०के० कपिल-हर प्रसाद भार्गव
- 

### 5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

---

1. मनोचिकित्सा से क्या समझते हैं? इसके उद्देश्यों एवं चरणों का वर्णन करियें।
2. मनोविश्लेषणवादी चिकित्सा का अर्थ बताइये। इस चिकित्सा के चरणों एवं गुण दोषों की व्याख्या करियें।
3. नैदानिक हस्तक्षेप के माँडलों से क्या तात्पर्य है? इनके विभिन्न प्रकारों का सविस्तार वर्णन करिये।

---

**इकाई 6. व्यवहार चिकित्सा: क्रमबद्ध असंवेदीकरण, संज्ञानात्मक-व्यवहार, रोगी-केन्द्रित, गेस्टाल्ट एवं अस्तित्ववादी चिकित्सा (Behavior Therapy: Systematic Desensitization, Cognitive Behavior, Client-Centered, Gestalt and Existential Therapy)**

---

**इकाई संरचना**

- 6.1 प्रस्तावना
- 6.2 उद्देश्य
- 6.3 व्यवहार चिकित्सा
  - 6.3.1 क्रमबद्ध असंवेदीकरण
  - 6.3.2 संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा
    - 6.3.2.1 रैसनल इमोटिव चिकित्सा
    - 6.3.2.2 बैक की संज्ञानात्मक चिकित्सा
    - 6.3.2.3 तनाव टीका चिकित्सा
    - 6.3.2.4 बहुआयामी चिकित्सा
- 6.4 मानवतावादी-अनुभवात्मक चिकित्सा
  - 6.4.1 कलायट या रोगी केन्द्रित चिकित्सा
  - 6.4.2 गैस्टाल्ट चिकित्सा
  - 6.4.3 अस्तित्ववादी
- 6.5 सारांश
- 6.6 शब्दावली
- 6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 6.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

---

**6.1 प्रस्तावना**

---

व्यवहार चिकित्सा नैदानिक मनोविज्ञान में प्रयोग की जाने वाली एक लोकप्रिय पद्धति है। ये रूसी मनोवैज्ञानिक पैवलोव के सिद्धान्तों पर आधारित है। इस चिकित्सा पद्धति आधारभूत मान्यता है कि असामान्य व्यवहार का कारण व्यक्ति के द्वारा अपेक्षित समायोजनपूर्ण प्रतिक्रियाओं को न सीख पाना है। इस चिकित्सा पद्धति में रोगी को सही प्रकार की प्रतिक्रियाओं को सिखाया जाता है। जिससे वह छूटी हुई सही प्रतिक्रियाओं को सीख सके। इसमें रोगी के उपचार के लिये उसके लक्षणों को दूर करने का सीधा प्रयास किया जाता है। इसके द्वारा असमायोजित (गलत) आदतों को कमजोर किया जाता है और उनको त्याग दिया जाता है।

इसमें समायोजित (सही) आदतों की शुरूआत की जाती है तथा उन्हें मजबूत किया जाता है। इस पूरी प्रक्रिया के पीछे अनुबन्धन की विधि को अपनाया जाता है।

संज्ञानात्मक चिकित्सा में रोगी के संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को ध्यान में रखकर उसे चिकित्सा दी जाती है। रोगी के गलत संज्ञान या चिंतन को दूर करके उसकी जगह पर सही चिंतन को विकसित किया जाता है ताकि वो समायोजी व्यवहार कर सके।

व्यवहार चिकित्सा को व्यवहार परिमार्जन भी कहते हैं अर्थात् इसमें रोगी का उपचार उसके व्यवहार में परिवर्तन करके किया जाता है।

## 6.2 उद्देश्य

इस इकाई के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य हैं-

- व्यवहार चिकित्सा का अध्ययन करना।
- संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा के प्रकारों का अध्ययन करना।

## 6.3 व्यवहार चिकित्सा -

इस चिकित्सा के अनुसार अतीत में (पहले) सीखी गई असमायोजित अनुक्रियाओं को भुलाया जा सकता है या सुधारा जा सकता है। व्यवहार चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य ऐसी समायोजी अनुकूलित अनुक्रियायें उत्पन्न करना है जो रोगी की कुसमायोजी अनुक्रियाओं का स्थान ले सके। व्यवहारवादी चिकित्सक विशेष रूप से नये अधिगम (सीखना) पर बल देते हैं, ताकि रोगी कुसमायोजी अनुक्रियाओं को भूल जायें और नई समायोजी अनुक्रियायें सीख लें।

व्यवहार चिकित्सा में कुसमायोजित व्यवहार के जगह पर समायोजित व्यवहार को मजबूत करने की कोशिश की जाती है ताकि व्यक्ति सामान्य ढंग से जीवन निर्वाह करें। कुसमायोजित व्यक्ति वैसे व्यक्ति को कहा जाता है जो जिन्दगी की समस्याओं से निबटने के लिए पर्याप्त सामर्थ्य किसी कारणवश नहीं विकसित कर पाये या ना सीख पाये।

व्यवहार चिकित्सा के उद्देश्य:-

- व्यवहार चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति द्वारा किये गए असमायोजित व्यवहार को बदलना होता है।
- व्यवहार चिकित्सा में रोगी के वर्तमान समस्याओं पर बल डाला जाता है न कि उसके बचपन के अनुभव पर।

व्यवहार चिकित्सा पद्धति में अनेक निम्नलिखित प्रतिक्रियाओं का उपयोग किया जाता है-

1. सरल क्लासिकल अनुबन्धन:- इसमें दो असम्बन्धित उत्तेजनाओं को जोड़ने का प्रयास किया जाता है। उदाहरण- जिन बच्चों को नींद में पेशाब करने की आदत हो जाती है, उनके लिये यदि उसी वक्त बिजली का हल्का झटका घंटी के साथ दिया जाता है। लगातार ऐसा करने से धीरे-धीरे उसकी बिस्तर गीला करने की आदत छूट जाती है। इसमें उसके मूत्र त्याग का सम्बन्ध उस घंटी के साथ जुड़ जाता है।

**2. आपरेन्ट अनुबन्धन:-** इसमें व्यक्ति के सामने कई प्रलोभन (लालच) प्रस्तुत किये जाते हैं जिससे वह सही प्रतिक्रियाओं को सीख कर उन्हें मजबूत कर सके। उदाहरण:- गम्भीर मानसिक रोगियों पर एक अध्ययन किया गया। जिसमें ऐसे रोगी थे जो बिना किसी की सहायता के भोजन नहीं कर पाते थे। उन्हें स्वयं खाना खाने की आदत के लिए भोजन के समय नर्स सूचना देती थी कि “भोजन तैयार है” और साथ ही भोजन कक्ष का दरवाजा खोल दिया जाता था, 30 मिनट के बाद दरवाजा बन्द कर दिया जाता है, उसके बाद कोई रोगी खाना नहीं खा सकता था। इन रोगियों को बार-बार याद दिलाने और जबरदस्ती भोजन के लिये ले जाने वाला व्यवहार छोड़ दिया गया। धीरे-धीरे भोजन कक्ष का दरवाजा केवल 20 मिनट, फिर 10 मिनट और 5 मिनट के लिए खुला रखा। इसका परिणाम यह हुआ कि केवल 3-4 दिन में ही सभी रोगी स्वयं जाकर भोजन करने लगे।

**3. विरक्ति:-** इसमें किसी दण्ड के माध्यम से व्यक्ति के व्यवहार में सुधार किया जाता है। इसमें व्यक्ति का व्यवहार किसी पुरस्कार से नहीं बल्कि दण्ड या कष्ट से सम्बन्धित हो जाता है।

उदाहरण: यदि किसी बच्चे में मिट्टी खाने की आदत पड़ जाती है तो उसकी मिट्टी में मिर्च या कोई कड़वी वस्तु मिला दी जाती है। जिससे वह धीरे-धीरे अपनी मिट्टी खाने की आदत छोड़ देता है।

**4. आदान प्रदान अवरोधन उपचार पद्धति:-** इस चिकित्सा पद्धति के प्रतिपादक जे. ओल्प है। उनके अनुसार रोगी द्वारा व्यवहार में परिवर्तन करने का निश्चय व विश्राम के माध्यम से रोग को दूर किया जा सकता है। इस पद्धति में रोगी के सामने समायोजित प्रतिक्रिया की ठीक विरोधी प्रतिक्रिया को उपस्थित किया जाता है। जिससे वह असमायोजित प्रतिक्रिया को पूरा ही न कर पाये।

उदाहरण:- जोन्स (1924) ने एक प्रयोग किया है जिसमें एक बच्चा जिसे जानवरों से डर लगता था, उसके सामने भोजन करते समय एक जानवर को बन्द पिज्डों में रखकर लाया जाता था। धीरे-धीरे उसे उस बच्चे के नजदीक लाया गया। कुछ दिनों के बाद बच्चे का भय उस जानवर के प्रति खत्म हो गया।

### 6.3.1 क्रमबद्ध असंवेदीकरण

व्यवहार चिकित्सा की यह विधि सबसे लोकप्रिय एवं महत्त्वपूर्ण विधि है जिसका प्रतिपादन **साल्टर (1949)** तथा **ओल्प (1958)** द्वारा किया गया। इस विधि का उपयोग तब किया जाता है जब रोगी में परिस्थिति के प्रति ठीक तरह से अनुक्रिया करने की क्षमता होती है। क्रमबद्ध असंवेदीकरण मुख्य रूप से चिंता कम करने की एक प्रविधि है जो इस नियम पर आधारित है कि एक ही समय में व्यक्ति चिंता तथा विश्राम दोनों की अवस्था में एक साथ नहीं हो सकता है। इसमें रोगी को पहले विश्राम की अवस्था में होने का प्रशिक्षण दिया जाता है और जब वह इस विश्राम की अवस्था में होता है, तो उसमें चिंता उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों को बढ़ते क्रम में दिया जाता है। अन्त में, रोगी चिंता उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों के प्रति असंवेदित हो जाता है क्योंकि रोगी उन्हें विश्राम की अवस्था में उन्हें ग्रहण करने का अनुभव प्राप्त कर चुका होता है।

क्रमबद्ध असंवेदीकरण की प्रक्रिया द्वारा व्यवहार में परिवर्तन करने के निम्नलिखित चरण हैं:-

**1. आराम करने का प्रशिक्षण** - इस अवस्था में रोगी को विश्राम करने का प्रशिक्षण दिया जाता है। यह कार्य चिकित्सा के पहले 5-6 सत्रों में पूरा किया जाता है। इस सत्रों में रोगी को अपनी मांशपेशियों को संकुचित

करने और अचानक उन्हें ढीला करने का प्रशिक्षण तब तक दिया जाता है जब तक कि रोगी पूरी तरह से विश्राम में नहीं आ जाता है। क्रमिक विश्राम प्रशिक्षण को जैकोवसन द्वारा 1938 में प्रतिपादित किया गया था। इस विधि में विभिन्न तरह के अभ्यासों के माध्यम से रोगी को मानसिक एवं शारीरिक रूप से आराम करने का प्रशिक्षण दिया जाता है।

**2. चिंता सूची का निर्माण** - इस अवस्था में चिकित्सक उन उद्दीपकों की एक सूची तैयार करता है जिनसे रोगी में चिंता उत्पन्न होती है। इस सूची में चिन्ता उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों को बढ़ते हुए क्रम में रखा जाता है। अर्थात् सबसे कम चिंता उत्पन्न करने वाले उद्दीपक को सबसे नीचे, उससे अधिक चिंता उत्पन्न करने वाले उद्दीपक या परिस्थिति को उससे ऊपर और इसी तरह क्रमिक रूप से एक के बाद एक करते हुए सबसे अधिक चिंता उत्पन्न करने वाले उद्दीपक या परिस्थिति को सबसे ऊपर में रखा जाता है।

**3. असंवेदीकरण की कार्य-विधि** - इसमें रोगी को आराम से आँख बन्द करके कुर्सी पर बैठा दिया जाता है। इसके बाद उसके सामने चिकित्सक चिन्ता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति का वर्णन करता है और रोगी से कहा जाता है कि वह उस परिस्थिति में अपने आपको रखकर उसकी कल्पना करे ! उसे बताया जाता है कि उस परिस्थिति की कल्पना करके यदि उसे डर लगने लगे तो वह अपना दायां हाथ उठाये ! यदि रोगी हाथ उठाता है तो चिकित्सक उसे उस परिस्थिति की कल्पना बन्द करने का आदेश देता है। इससे उसमें शारीरिक शिथिलता आ जाती है। थोड़ी देर बाद फिर उससे थोड़ा बड़ी हुई चिन्ताजनक परिस्थिति की कल्पना करने को कहा जाता है तो वह चिन्ता उत्पन्न करने वाली स्थिति के प्रति असंवेदीकरण हो जाता है। चिकित्सक तब तक अपने सत्र को जारी रखता है जब तक रोगी पूरी तरह से उस परिस्थिति में शान्त रहने में सफल नहीं हो जाता है। जिससे सबसे अधिक चिन्ता उसमें उत्पन्न हो जाती है।

उदाहरण: यदि किसी व्यक्ति को पानी से डर लगता है तो चिकित्सक सबसे पहले उसे एक आरामकुर्सी में बैठाकर उससे 10-15 सेकेण्ड तक ये कल्पना करने को कहता है कि वह पानी में है! उसे कई दिनों तक इसी तरह की कल्पना करायी जाती है। फिर धीरे-धीरे समय को बढ़ा दिया जाता है! धीरे-धीरे उसके सामने चिन्ता स्तर को भी बढ़ा दिया जाता है अर्थात् उससे कहा जाता है कि वो कल्पना करें कि वह डूब रहा है! यदि इस परिस्थिति में उसे डर लगता है तो उसे फिर से पुरानी स्थिति में ले आते हैं। इस तरह कई सत्र करवाये जाते हैं और धीरे-धीरे वह पानी के प्रति असंवेदनशील बन जाता है और उसका डर खत्म हो जाता है।

।

असंवेदीकरण प्रविधि के दो मुख्य रूप हैं-

**1. सामूहिक असंवेदीकरण** - इस प्रारूप में कई रोगियों को जिनके लक्षण लगभग समान होते हैं एक साथ बिठाकर चिन्ता उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों या उद्दीपकों का एक सामान्य बढ़ते क्रम में तैयार किया जाता है। पदानुक्रम में ऊपर की ओर बढ़ना उस बिन्दु पर रोक दिया जाता है जब उन रोगियों में से सबसे कम चिन्तित रोगी को सफलता मिल जाती है।

**2. इन विवो असंवेदीकरण** - यह एक बहुत लोकप्रिय प्रारूप है जिसमें जीवन की वास्तविक परिस्थिति में विभिन्न तरह के चिन्ता उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों से क्रमिक ढंग से रोगी का सामना कराया जाता है। इसमें मांशपेशियों को नरम करने का प्रशिक्षण चिकित्सक देते हैं जो रोगी को विभिन्न तरह के वातावरण में ले जाकर

चिंता कम कराने का कार्य करते हैं। इस प्रारूप का उपयोग दुर्भीति (डर) के गंभीर रोगी के उपचार में काफी किया है।

#### गुण -

1. क्रमबद्ध असंवेदीकरण की प्रविधि एक लाभदायक चिकित्सीय विधि है। इस प्रविधि का उपयोग उन चिन्ता समस्याओं को दूर करने के लिए किया जाता है जिनमें चिन्ता करने वाली परिस्थिति या उद्दीपक स्पष्ट होता है। इसलिए दुर्भीति के रोगियों के उपचार में इस विधि को काफी सफलता मिली है ओल्फ ने 91 प्रतिशत रोगियों को इस विधि द्वारा रोगमुक्त किया !

2. क्रमबद्ध असंवेदीकरण का उपयोग उस परिस्थिति में भी किया जाता है जहाँ व्यक्तियों में चिन्ता स्पष्ट न होकर छिपी होती है। जैसे व्यक्ति को ध्यान केन्द्रित करने में कठिनाई होना, खराब स्मृति, बोलने में धाराप्रवाहिता की कमी, लैंगिक अनिच्छा, पेशीय कार्यों की असंगतता आदि है। इन लक्षणों के उपचार में क्रमबद्ध असंवेदीकरण का उपयोग किया जाता है।

#### दोष-

1. सभी तरह के रोगियों की चिन्ताओं तथा डर का उपचार नहीं किया जा सकता है।
2. ऐसी रोगी जिन्हें विश्राम की अवस्था में आने में काफी कठिनाई महसूस होती है।
3. ऐसे रोगी जो चिन्ता उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों के बारे में वास्तविक सूचना न देकर गलत सूचना देते हैं।
4. ऐसे रोगी जिनकी कल्पना शक्ति कमजोर होती है।

### 6.3.2 संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा

व्यवहार चिकित्सा में रोगी का उपचार उसके व्यवहार में परिवर्तन करके किया जाता है परन्तु रोगी के आंतरिक घटनाओं जैसे उसके चिंतन, प्रत्यक्षण, मूल्यांकन तथा आत्म-कथनों आदि पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा में रोगी की इन संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को ध्यान में रखते हुए चिकित्सा की जाती है। यह एक ऐसी व्यवहार चिकित्सा है जिसमें मानसिक रोग का कारण संज्ञान या चिन्तन माना जाता है। इसमें रोगी गलत चिन्तन तथा विश्वास का त्याग करके उसकी जगह पर उपयुक्त चिन्तन एवं विश्वास अपनाता है और समायोजी व्यवहार करने में सफल हो पाता है।

#### स्वरूप -

संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा में असामान्य या कुसमायोजित व्यवहार का कारण गलत संज्ञान या चिंतन माना जाता है।

1. इस चिकित्सा में रोगी के इस गलत संज्ञान या चिंतन को दूर करके उसके जगह पर सही संज्ञान या चिंतन विकसित करने की कोशिश की जाती है। जिसे संज्ञानात्मक पुनर्संरचना कहा जाता है।

#### लक्ष्य

1. रोगी के लक्षणों को दूर करके उन्हें समस्या समाधान में मदद करना।

2. रोगी में कुछ इस ढंग की युक्तियाँ विकसित की जाती हैं, जिसके सहारे वह अपने भविष्य की समस्याओं से निबट सके।
3. रोगी को इस ढंग से मदद करना ताकि वह अपने अतार्किक तथा आत्म-हीनता की सोच से हटकर तार्किक तथा धनात्मक विचारों पर अपना ध्यान लगा सके।

### संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा के प्रकार

1. रैसनल-इमोटिव चिकित्सा
2. बेक का संज्ञानात्मक चिकित्सा
3. तनाव-टीका चिकित्सा
4. बहुआयामी चिकित्सा

#### 6.3.2.1 रैसनल-इमोटिव चिकित्सा

इस चिकित्सा विधि का प्रतिपादन एल्वर्ट इल्लिस (1958, 1973, 1975) द्वारा किया गया। इसे संक्षेप में RET कहा जाता है। इस चिकित्सा विधि की पूर्वकल्पना यह होती है कि रोगी का सांवेगिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं का कारण आंतरिक एवं अतर्कसंगत विचार एवं विश्वास होते हैं। यह विश्वास तथा विचार व्यक्ति में होता है तथा जो उन्हें यह सोचने के लिए मजबूर करता है कि उनकी खुशी के लिए उनकी इच्छाओं को पूरा करना जरूरी है। यहाँ चिकित्सक रोगी के ऐसे अविवेकपूर्ण व्यवहार तथा विश्वासों की खोजबीन करता है, चिकित्सक रोगी के मन में ऐसे विश्वासों को हटाकर उनमें नया विश्वास तथा आशा विकसित करता है ताकि वह फिर से समायोजित या अनुकूलित व्यवहार करने लगे। इस तरह से चिकित्सक रोगी के विश्वास तथा आत्म कथनों को बदलकर फिर से बनाने का प्रयास करता है।

1. पहली विधि तो यह है जिसमें रोगी के सामने विवेकपूर्ण तथ्य लाये जाते हैं और उसके गलत विश्वासों और नकारात्मक सोच को बदला जाता है
2. दूसरी विधि वह है कि जिसमें चिकित्सक रोगी को कुछ सजृनात्मक कार्य करने को देता है जिससे उसके व्यवहार एवं चिन्तन में परिवर्तन आता है। जैसे-चिकित्सक रोगी को गृह-कार्य के रूप में कुछ कार्य या अभ्यास करने को दे देता है। अपने गलत विश्वास के विरुद्ध कार्य करते समय रोगी को मन-ही-मन यह सोचने के लिए कहा जाता है, " मैं सचमुच में एक अच्छा काम कर रहा हूँ"

#### गुण:-

- I. RET अत्यधिक क्रोध, विषाद तथा समाज-विरोधी व्यवहार को कम करने में प्रभावी होता है।
- II. RET द्वारा उन लोगों की भी मदद की जाती है जो सांवेगिक रूप से बीमार न होकर स्वस्थ है परन्तु दिन-प्रतिदिन की समायोजन में कुछ सामान्य कठिनाई होती है।

**दोष:-**

1. सामाजिक चिन्ता को कम करने में RET अन्य दूसरी प्रविधि जैसे-क्रमबद्ध असंवेदीकरण की तुलना में कम लाभदायक है।

**6.3.2.2. बेक का संज्ञानात्मक चिकित्सा**

इस चिकित्सा विधि का प्रतिपादन ए0टी0 बेक (1979) द्वारा विषादी रोगियों के चिन्ता विकृतियों तथा दुर्भ्रंति के उपचार के लिए किया गया था। बेक की इस चिकित्सा पद्धति की पूर्वकल्पना यह है कि जब रोगी का स्वयं अपने बारे में, अपने वातावरण के बारे में तथा अपने भविष्य के बारे में अतार्किक चिन्तन होता है तो विषाद जैसी समस्या उत्पन्न होती है। इस तरह की अतार्किक चिन्तन रोगी को अपने बारे में, अपनी दुनिया के बारे में तथा अपने भविष्य के बारे में निराशावादी ढंग से सोचने के लिए मजबूर करता है। बेक ने इन तीन तरह के अतार्किक एव गलत चिन्तन को 'संज्ञानात्मक त्रिक' कहा है।

विषादी रोगियों में विकृत चिन्तन के कई प्रकारों का वर्णन किया है, जिनमें निम्नांकित प्रमुख है।

1. **मनचाहा अनुमान-** इसमें रोगी अपर्याप्त या अतर्कसंगत सूचनाओं के आधार पर अपने बारे में अनुमान लगाता है। जैसे-यदि किसी व्यक्ति को यह विचार आता है कि वह बेकार है क्योंकि उसे किसी शादी में नहीं बुलाया गया तो यह मनचाहा अनुमान का उदाहरण होगा।
  2. **आवर्धन-** इसमें रोगी किसी छोटी घटना को बढ़ा-चढ़ा कर सोचता है और बताता है। जैसे-यदि कोई व्यक्ति यह सोचता है कि उसके द्वारा बनाया गया मकान बेकार हो गया क्योंकि उसमें पूजाघर के लिए कोई जगह नहीं बच सका, तो इस तरह का चिन्तन आवर्धन का उदाहरण होगा।
  3. **न्यूनीकरण-** इसमें रोगी बड़ी घटना को बहुत छोटा कर उसके बारे में विकृत ढंग से सोचता है। यह आवर्धन के विपरीत है। जैसे-यदि कोई छात्र यह सोचता है कि वह केवल भाग्य के भरोसे परीक्षा में सफल हो पाया है जबकि वह मूर्ख एवं बुद्धिहीन है, तो यह न्यूनीकरण का उदाहरण होगा।
- इस चिकित्सा में रोगी को कुछ ऐसे व्यवहार करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है जिसमें वे अपने बारे में कुछ ऐसी सूचना इकट्ठा कर सके जिससे वे स्वयं ही अपने गलत विश्वास को हटा सके। संज्ञानात्मक चिकित्सा में रोगी के निम्न उपायों पर बल डाला जाता है।

1. संज्ञान, संवेग तथा व्यवहार के बीच संबंधों की पहचान करना।
2. गलत विश्वासों एवं विकृतियों में परख करना।
3. कुछ 'गृह-कार्य' को करना जिससे रोगी में निराशावादी सोच नहीं आ पाती और वह नये चिन्तन उपायों का रिहर्सल करता है।

**6.3.2.3. तनाव-टीका चिकित्सा**

यह चिकित्सा विधि एक तरह का आत्म-निर्देशन विधि है। इस चिकित्सा में पूर्वकल्पना यह होती है कि रोगी की समस्या का मूल कारण उसके व्यर्थ या बेकार के विश्वास होते हैं जो व्यक्ति में नकारात्मक सांवेगिक अवस्था एवं कुसमायोजित व्यवहार उत्पन्न करते हैं। इस चिकित्सा विधि में यह निश्चित किया जाता है कि रोगी किन-किन

तरह के तनावों से ग्रस्त रहा है। उसके संज्ञान में किस तरह से परिवर्तन लाया जा सकता है ताकि वह इन तनावों के साथ ठीक ढंग से समायोजन करके चिन्तामुक्त हो सके।

चरण: इस चिकित्सा विधि के निम्नलिखित चरण हैं:-

1. **तैयारी की अवस्था** - इस अवस्था में चिकित्सक तथा रोगी एक साथ मिलकर समस्या या तनाव उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों या परिस्थितियों का पता लगाते हैं चिकित्सक एवं रोगी दोनों मिलकर कुछ ऐसे नये आत्म-कथन तैयार करते हैं जो रोगी के लिए अधिक समायोजी साबित होता है
  2. **अभ्यास की अवस्था** - इस अवस्था में रोगी समायोजित आत्म-कथनों को सीखता है तथा तनाव उत्पन्न करने वाली काल्पनिक परिस्थिति में ही अभ्यास करता है।
  3. **उपयोग एवं अभ्यास की अवस्था** - इस अवस्था को इस ढंग से व्यवस्थित किया जाता है कि रोगी को पहले हल्का-फुल्का तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थिति में रखा जाता है और जैसे-जैसे उसमें आत्म-विश्वास आता जाता है, उसे गंभीर रूप से उत्पन्न करने वाले तनाव में रखकर उसमें आत्म-विश्वास एवं नये-नये समायोजी विश्वास उत्पन्न करने की कोशिश की जाती है।
- तनाव टीका चिकित्सा का सफलतापूर्वक उपयोग कई तरह की नैदानिक समस्याओं के उपचार में किया गया है। जैसे-मैकेनवाम (1975) ने इस विधि का उपयोग चिन्ता के उपचार में टर्क (1974) ने इसका उपयोग दर्द निवारण में उपचार में सफलतापूर्वक किया है।

#### 6.3.2.4. बहुआयामी चिकित्सा

इस तरह के संज्ञानात्मक-व्यवहारपरक चिकित्सा पद्धति का विकास **लेजारस (1973,1989)** द्वारा किया गया है। इस चिकित्सा पद्धति में नैदानिक मनोवैज्ञानिक कई तरह की चिकित्सीय पद्धतियों को एक साथ मिलाकर रोगी का उपचार करते हैं। लेजारस के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में निम्नलिखित सात विमायें होती हैं।

1. व्यवहार
2. भावनात्मक प्रक्रियाएँ
3. संवेदन
4. प्रतिमा
5. संज्ञान
6. अन्तर्वैयक्तिक संबंध
7. औषध

इन सातों का संक्षेप में लेजारस ने **BASIC ID** के रूप में बताया है। लेजारस के इस चिकित्सा पद्धति की मान्यता यह है कि एक चिकित्सक को इन सातों या उनमें से कुछ क्षेत्रों की समस्याओं की पहचान करके उसी के अनुसार चिकित्सा पद्धति का उपयोग करना चाहिए। सबसे पहले चिकित्सक इस समस्याओं की पहचान करता है और उन्हें एक क्रम में व्यवस्थित करता है। उसके बाद इनके समाधान के लिये चिकित्सा विधि को अपनाता है।

**लाभ-**

- a) बहुआयामी चिकित्सा का एक प्रमुख लाभ यह है कि इसमें रोगी की समस्याओं की पहचान अलग-अलग विमाओं के आधार पर की जाती है और उसी के अनुरूप चिकित्सा की जाती है। इसलिये इससे रोगी की समस्याओं का उपचार पूरी तरह से सम्भव हो पाता है।
- b) इससे रोगी पर स्थायी प्रभाव पड़ता है और उसमें समायोजी लक्षण तेजी से विकसित होते हैं।

**6.4 मानवतावादी-अनुभवात्मक चिकित्सा -**

मानवतावादी-अनुभवात्मक चिकित्सा एक सूझ केन्द्रित चिकित्सा है। इस चिकित्सा पद्धति में व्यक्ति को एक लगातार आगे बढ़ने वाला प्राणी माना जाता है। इसके अनुसार व्यक्ति अपने भीतर छिपी अन्तःशक्ति का अनुभव करके अपने व्यवहार का मार्गनिर्देशन भी करते रहता है। जब उसकी इस समझ में गड़बड़ी उत्पन्न होती है तो व्यक्ति में असामान्य व्यवहार की उत्पत्ति होती है।

**उद्देश्य-**

- a) इस चिकित्सा में क्लायंट या रोगी को एक व्यक्ति के रूप में पहचानने व आगे बढ़ने पर बल डाला जाता है। इसमें चिकित्सक रोगी को उसके अन्दर की शक्ति को पहचानने पर बल देते हैं एवं उस तक पहुँचने में उसे मदद करते हैं।
- b) इस चिकित्सा में क्लायंट तथा चिकित्सक के बीच का संबंध एक मुख्य कारक होता है जिसके सहारे धीरे-धीरे रोगी में सुधार होता है। यह एक वास्तविक आपसी संबंध होता है।
- c) क्लायंट के भविष्य के लिए उसके बीते अनुभव महत्वपूर्ण नहीं होते हैं केवल वर्तमान को ध्यान में रखा जाता है।
- d) अधिकतर क्लायंट सामान्य लोगों के ही समान होते हैं। परन्तु वातावरण के प्रति उनका प्रत्यक्ष (नजरिया) भिन्न होता है और वे वैसा ही व्यवहार करते हैं। चिकित्सक वातावरण को रोगी की नजरों से देखकर ही उनकी समस्याओं को समझने की और समाधान का प्रयास करते हैं।

मानवतावादी-अनुभवात्मक चिकित्सा के अन्तर्गत निम्नलिखित तीन चिकित्सा पद्धतियाँ हैं-

- a) क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा
- b) गेस्टाल्ट चिकित्सा
- c) अस्तित्ववादी चिकित्सा

**6.4.1. क्लायंट-केन्द्रित चिकित्सा**

इस चिकित्सा का प्रतिपादन कार्ल रोजर्स ने 1940 में किया था। इसे “व्यक्ति केन्द्रित चिकित्सा” या “अनिर्देशित चिकित्सा” भी कहा जाता है।

रोजर्स के अनुसार

- a) स्वस्थ लोग अपने व्यवहार से पूरी तरह अवगत होते हैं।

- b) स्वस्थ लोग जन्मजात रूप से समायोजित एवं प्रभावी होते हैं। वे तभी असमायोजित एवं अप्रभावी हो जाते हैं जब उनके सीखने में कहीं गलती हो जाती है।
- c) स्वस्थ लोगों का जीवन उद्देश्यपूर्ण तथा लक्ष्य निर्देशित होता है।
- d) चिकित्सक को क्लायंट को स्वतंत्र होकर निर्णय लेने के लिए तैयार करना चाहिए।

### चिकित्सक के गुण:-

अगर चिकित्सक द्वारा सही एवं ठीक परिस्थिति या अवस्था उत्पन्न की जाती है, तब क्लायंट में परिवर्तन होगा। रोजर्स के इस चिकित्सा पद्धति के दौरान ऐसी छह विमाएँ हैं जिनमें चिकित्सा के वक्त परिवर्तन होते हैं।

- a) **आत्मअभिज्ञा में वृद्धि-** इसमें क्लायंट अपनी वर्तमान अनुभूतियों पर ध्यान केन्द्रित करता है और उन भावों को समझने व पहचानने लगता है जिसका उसे पहले ज्ञान नहीं था। इससे क्लायंट में आत्म-ज्ञान में काफी बढ़ोत्तरी होती है।
- b) **स्वयं को स्वीकार करना-** रोजर्स की इस चिकित्सा के दौरान धीरे-धीरे क्लायंट अपने भावों एवं व्यवहारों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना अधिक शुरू कर देता है तथा अन्य लोगों तथा परिस्थिति पर दोष मढ़ना धीरे-धीरे कम कर देता है।
- c) **सोच में बदलाव-** इस चिकित्सा पद्धति में रोगी की पुरानी सोच में बदलाव लाकर नई सोच विकसित की जाती है। जब व्यक्ति वातावरण को एक निश्चित तरीके से देखता है, तो इससे समस्या उत्पन्न होती है इसमें चिकित्सक द्वारा रोगी को उसकी परिस्थिति के अनुसार देखने व सोचने को कहा जाता है।
- d) **आराम में वृद्धि-** रोजर्स द्वारा प्रतिपादित चिकित्सा में जैसे-जैसे चिकित्सीय बढ़ता जाता है, क्लायंट को अपने अन्दर बदलाव दिखाई देता है और वह आराम या सुख-चैन का अनुभव करता है।
- e) **आत्म-निर्भरता में वृद्धि-** जैसे जैसे चिकित्सा सत्र आगे बढ़ता है, क्लायंट दूसरों पर निर्भरता कम होने लगती है तथा उसे अपनी क्षमताओं पर विश्वास होने लगता है।
- f) **क्लायंट के व्यवहारों में परिवर्तन-** क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा में क्लायंट के व्यवहारों में काफी परिवर्तन आ जाते हैं। वह स्वयं को पहचान कर, अपने बारे में सोचने लगता है। धीरे-धीरे उसके व्यवहार में तनाव की कमी देखी जाती है।

### गुण:-

1. क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा पद्धति सरल होती है। इसमें क्लायंट या रोगी की ही व्यक्तिगत पहल रहती है और उसमें सुधार आने लगता है।
2. साधारण कुसमायोजित व्यवहार के लिए नैदानिक मनोविज्ञानिकों द्वारा एक उत्तम प्रविधि मानी गयी है।

### दोष:-

- a) क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा गंभीर मानसिक रोगों के लिए ठीक नहीं होती है। उनमें व्यक्तिगत पहल एवं स्वयं को पहचानने की क्षमता नहीं होती है।

b) इसमें क्लायंट की समस्याओं का समाधान गहराई तक नहीं हो पाता है। इस कारण क्लायंट के रोग के लक्षण को फिर से लौट आने की संभावना होती है।

### 6.4.2. गेस्टाल्ट चिकित्सा

गेस्टाल्ट चिकित्सा का प्रतिपादन **फ्रेडेरिक एस0 (फ्रिज) पर्स (1967, 1970)** द्वारा किया गया है। 'गेस्टाल्ट' पद का अर्थ होता है-सम्पूर्ण (whole)। रोजर्स के समान पर्स का भी यह विश्वास था कि व्यक्ति में एक जन्मजात अच्छाई होती है और उसकी इस प्रकृति को अभिव्यक्त करने का मौका दिया जाना चाहिए। जब व्यक्ति किसी कारण से इस जन्मजात गुण को अभिव्यक्त नहीं कर पाता तो वह कुंठित हो जाता है, जिसके कारण अनेक मनोवैज्ञानिक समस्याएँ होने लगती हैं।

#### लक्ष्य -

गेस्टाल्ट चिकित्सा का मुख्य लक्ष्य रोगी को आगे बढ़ने की प्रक्रिया को फिर से चालू करना होता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति दो तरह से की जाती है।

- रोगी अपनी आवश्यकताओं, इच्छाओं को समझे व स्वीकार करे।
- इसमें व्यक्ति द्वारा उन्हें दूसरे लोगों से लिये गये अनुभवों तथा मूल्यों को बताया जाता है जो कि उनके व्यक्तित्व का एक हिस्सा बन जाते हैं।

गेस्टाल्ट चिकित्सा में वर्तमान अनुभवों पर बल डाला जाता है न कि दमित आवेगों या स्मृतियों की प्राप्ति पर तथा भविष्य के बारे में अनुमान लगाने पर।

पर्स के अनुसार रोगी के वास्तविक जिन्दगी को खुशहाल बनाने एवं चिकित्सा में विकास के लिए यह आवश्यक है कि रोगी को वर्तमान की अनुभूतियों के बारे में जानकारी बढे। वे अपने कार्यों के उत्तरदायित्व को समझें।

गेस्टाल्ट चिकित्सा के तीन निम्नलिखित संप्रत्यय हैं -

- वर्तमान के अनुभव-** गेस्टाल्ट चिकित्सा में वर्तमान महत्त्वपूर्ण होता है इस चिकित्सा का उद्देश्य इसी वर्तमान रोगियों के विश्वास को मजबूत करना होता है। चिकित्सा के दौरान चिकित्सक भरपूर यह कोशिश करता है कि रोगी का ध्यान उनके वर्तमान भावों, चिन्तनों एवं अनुभवों पर रहे।
- जानकारी-** जानकारी से तात्पर्य अनुभूतियों को स्वीकार करने की क्षमता से होती है।
- उत्तरदायित्व-** गेस्टाल्ट चिकित्सा का यह एक महत्त्वपूर्ण संप्रत्यय है जिसमें व्यक्ति अपनी क्रियाओं एवं भावों की जिम्मेदारी स्वयं लेता है।

**लेविटस्काई एवं पर्स (1970) के अनुसार गेस्टाल्ट चिकित्सा के प्रमुख नियम इस प्रकार हैं।**

- रोगी से केवल वर्तमान काल में बातचीत करने के लिए कहा जाता है। पुरानी यादों तथा भविष्य को लेकर कोई बातचीत नहीं की जाती है।
- बातचीत किसी के बारे में नहीं बल्कि समानान्तर स्तर पर की जाती है।

- c) रोगी में उत्तरदायित्व (जिम्मेदारी) का भाव उत्पन्न करने के लिए उसे 'मैं' शब्द का प्रयोग अधिक-से-अधिक करने के लिए कहा जाता है।
- d) रोगी से लगातार केवल वर्तमान अनुभवों पर ध्यान लगाने को कहा जाता है।
- e) कोई गप-शप या इधर-उधर की बात नहीं की जाती है।
- f) यह कोशिश की जाती है कि रोगी कोई प्रश्न न करें क्योंकि प्रश्नों के माध्यम से वह अपने पुराने विचारों को व्यक्त कर सकता है।

### गुण-

- a) गेस्टाल्ट चिकित्सा में वर्तमान अनुभव तथा जानकारी पर ध्यान दिया जाता है रोगी के व्यवहार में परिवर्तन करने के लिए उसके पुरानी अनुभूतियों का विश्लेषण आवश्यक नहीं है।
- b) गेस्टाल्ट चिकित्सा की संचालन विधियाँ काफी सरल एवं सुगम है इसका परिणाम यह होता है कि इस तरह की चिकित्सा बहुत उपयोगी सिद्ध होती है।

### दोष

- a) इस चिकित्सा की विधि में बहुत अधिक विभिन्नता है इसलिये इसके आधार पर सही एवं वस्तुनिष्ठ आँकड़े प्राप्त करने में मुश्किल आती है।
- b) गेस्टाल्ट चिकित्सा में रोगी के वर्तमान पर बल डाला जाता है तथा उसके भूत एवं भविष्य पर ध्यान नहीं दिया जाता है।

### 6.4.3. अस्तित्ववादी चिकित्सा

इस चिकित्सा विधि का प्रतिपादन **विन्सवैनर (1942)** तथा **मे, एन्जिल एवं एलेनवर्गर (1958)** ने किया। इसमें व्यक्ति की वैयक्तिकता तथा उसके मूल्यों एवं भावों को समझा जाता है और रोगी के स्वस्थ अस्तित्व के लिए एक माहौल तैयार किया जाता है। इसमें व्यक्ति की स्वतंत्र इच्छाओं तथा उत्तरदायित्व पर अधिक बल डाला जाता है। अस्तित्ववादी मनोवैज्ञानिकों का मत है कि आधुनिक मनुष्य वास्तविकताओं से बहुत दूर चला गया है, उसका परम्परागत विश्वास खत्म हो चुका है और उसके अस्तित्व की क्षति हुई है। मनुष्य के सामने अनेक कठिनाईयाँ तथा समस्याये है परन्तु वह फिर भी स्वयं के अस्तित्व के प्रति जागरूक है, यह विशेषता केवल मनुष्य के पास है उसमें चिन्तन की योग्यता है और यह उसे स्वयं निर्णय करना है कि उसे किस तरह का व्यक्ति बनना है। मनुष्य का मुख्य उद्देश्य है जीवन मूल्यों की खोज करना।

अस्तित्ववादी मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्ति को जीवित रहने के लिए अस्तित्ववादी चिन्ताओं से अवगत कराना पड़ता है। ये चिन्तार्ये निम्न है-

- a) कि हमलोग एक दिन मर जाएंगे, अस्तित्ववादी चिन्ता उत्पन्न करता है।
- b) कि हमलोग अकेले है, अस्तित्ववादी चिन्ता उत्पन्न करता है।
- c) आकस्मिक परिस्थितियों जैसे दुर्घटना आदि के साथ हमलोग लड़ नहीं सकते है, अस्तित्ववादी चिन्ता उत्पन्न करता है।

d) आगे हमें अपनी जिन्दगी को सँवारना है, अस्तित्ववादी चिंतन उत्पन्न करता है। चिकित्सा का उद्देश्य व्यक्ति को इस तरह की चिंताओं से मुक्त करना होता है। यहाँ चिकित्सक रोगी को उसके आस-पास की वास्तविकताओं पर ध्यान देने को कहते हैं और व्यक्ति को उसके आंतरिक पहलुओं पर ध्यान देने तथा सुधारने में मदद करते हैं।

#### लक्ष्य -

- चिकित्सक उसे जिन्दगी के सही अर्थ समझाते हैं। वह क्लायंट के पुराने एवं वर्तमान पसंदगियों या चयनों से रोगी को सामना कराते हैं। इन दोनों में से रोगी के वर्तमान चयनों को वे अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं।
- अस्तित्ववादी चिकित्सक रोगी या क्लायंट को एक खुला एवं स्नेहपूर्ण वातावरण में रहने तथा दूसरों के साथ मधुर सम्बन्ध रखने की प्रेरणा देते हैं ताकि रोगी की यह चिन्ता दूर हो सके कि वह अकेला है।
- अस्तित्ववादी चिकित्सा का लक्ष्य रोगी को उसके भीतर छिपी हुई अन्तःशक्ति से पहचान कराना है।

#### गुण-

- अस्तित्ववादी चिकित्सा पहली चिकित्सा है जिसमें रोगी को अपने भीतर छिपी अन्तःशक्ति की पहचान करायी जाती है और जीवन का अर्थ बताया जाता है।
- इस तरह की चिकित्सा में क्लायंट अपने अस्तित्व को वास्तविक ढंग से समझने की कोशिश करता है इसलिए इससे अस्तित्ववादी स्नायुविकृति के लक्षणों को दूर करने में काफी मदद मिलती है।
- इसमें चिकित्सक व्यक्ति के जीवन मूल्यों पर ध्यान देते हैं तथा व्यक्ति को सार्थक जीवन बिताने में सहायता करते हैं।

#### दोष

- इस चिकित्सा की इस आधार पर आलोचना की है कि इसके पीछे कोई व्यवस्थित वैज्ञानिक आधारशिला नहीं है।

#### स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

- व्यवहार चिकित्सा में ..... व्यवहार को परिवर्तित करके उसकी जगह पर ..... व्यवहार को सिखलाने का प्रयत्न किया जाता है।
- व्यवहार चिकित्सा का सबसे पहला सैद्धान्तिक स्रोत ..... द्वारा प्रतिपादित सीखने का सिद्धान्त है।
- क्रमबद्ध असंवेदीकरण चिकित्सा विधि का प्रतिपादन ..... ने किया था।
- संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा में रोगात्मक व्यवहार का कारण ..... माना जाता है।
- रैसनल इमोटिव चिकित्सा का प्रतिपादन ..... ने किया।

6. बेक चिकित्सा पद्धति का प्रतिपादन .....रोगियों के उपचार में किया जाता है।

### 6.5 सारांश

1. व्यवहार चिकित्सा में मानसिक रोगियों का उपचार ऐसी प्रविधियों से किया जाता है जिसका आधार पैवलोव व स्किनर का अनुबन्धन सिद्धान्त है।
2. क्रमबद्ध असंवेदीकरण चिकित्सा विधि का प्रतिपादन साल्टर तथा ओल्फ ने किया। इसमें रोगी को पहले विश्राम की अवस्था में लाने का प्रशिक्षण दिया जाता है और इसके बाद चिन्ता उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों को बढ़ते क्रम में दिया जाता है। अन्त में वह चिन्ता वाले उद्दीपकों के प्रति असंवेदीकृत हो जाता है।
3. संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा पद्धति भी व्यवहार चिकित्सा के सिद्धान्तों पर आधारित है। इसमें संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं (चिन्तन, कल्पना) पर विशेष रूप से बल दिया गया है। इसके प्रमुख प्रकार हैं
  - a) रैसनल इमोटिव चिकित्सा
  - b) बेक संज्ञानात्मक चिकित्सा
  - c) तनाव टीका चिकित्सा
  - d) बहुआयामी चिकित्सा।

### 6.6 शब्दावली

1. एगोरोफोबिया- जिसमें खुले या सार्वजनिक स्थान से भय लगता है।
2. आत्म अभिज्ञा- स्वयं के बारे में अवगत होना अर्थात् अपने भावों तथा अनुभूतियों को समझना।
3. अनुबन्धन- ये एक ऐसी प्रक्रिया है। जिसके द्वारा उद्दीपको तथा अनुक्रिया के बीच एक सम्बन्ध स्थापित होता है।
4. स्नायुविकृति- इसे चिन्ता विकृति कहा जाता है। यह एक साधारण मानसिक विकृति है। इसमें व्यक्ति की ज्ञानात्मक, संवेगात्मक तथा क्रियात्मक प्रतिक्रियाओं में साधारण सी असामान्यता आ जाती है।

### 6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. असमायोजित, समायोजित
2. पैवलोवियन अनुबन्धन
3. साल्टर तथा वोल्फ
4. गलत संज्ञान या चिन्तन
5. एल्बर्ट एलिस
6. विषाद, चिन्ता एवं दुर्भीति

### 6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह-मोतीलाल बनारसीदास

---

2. आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञान- डा0एच0के0 कपिल-हर प्रसाद भार्गव

3. असामान्य मनोविज्ञान- विषय और व्याख्या- डा0मुहम्मद सुलेमान, डा0 मुहम्मद तौवाव -मोतीलाल बनारसीदास

---

### 6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

---

1. व्यवहार चिकित्सा क्या है? क्रमबद्ध असंवेदीकरण चिकित्सा की व्याख्या करिये।
2. संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा से क्या समझते है? यह व्यवहार चिकित्सा से किस प्रकार भिन्न है।
3. संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कीजिए।
4. गैस्टाल्ट चिकित्सा की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करिये।
5. रोगी केन्द्रित चिकित्सा के चरणों को समझाइये तथा उसके गुण व दोषों की व्याख्या करिये।
6. अस्तित्ववादी चिकित्सा क्या है? इसके गुण व दोषों का वर्णन करिये।

**इकाई 7. चिंता विकृतियाँ:- भीषिका, दुर्भीति, सामान्यीकृत चिंता; मनोग्रस्तता-बाध्यता एवं उत्तर आघातीय तनाव विकृति (Anxiety Disorder:- Panic and Phobias, Generalized Anxiety disorder; Obsessive Compulsive Disorder and Posttraumatic Stress disorder)**

### इकाई संरचना

- 7.1 प्रस्तावना
- 7.2 उद्देश्य
- 7.3 दुश्चिंता विकृति
- 7.4 भीषिका विकृति
- 7.5 दुर्भीति विकृति
- 7.6 सामान्यीकृत दुश्चिंता विकृति
- 7.7 मनोग्रस्त बाध्यता विकृति
- 7.8 तीक्ष्ण प्रतिबल विकृति
- 7.9 उत्तर अभिघातजन्य प्रतिबल विकृति
- 7.10 दुश्चिंता विकृति के कारण
- 7.11 दुश्चिंता विकृति के उपचार
- 7.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
- 7.13 सारांश
- 7.14 प्रश्नों के उत्तर
- 7.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 7.16 निबन्धात्मक प्रश्न

### 7.1 प्रस्तावना

दुश्चिंता विकृति से तात्पर्य व्यक्ति की उन मानसिक विकृतियों व समस्याओं से होता है जिसके कारण व्यक्ति में चिंता व तनाव का स्तर इतना अधिक बढ़ जाता है जिससे व्यक्ति अपनी वास्तविक जिंदगी के साथ समायोजन नहीं कर पाता है। इन विकृतियों के कारण रोगी का व्यक्तित्व प्रभावित होता है जिससे व्यक्ति ठीक प्रकार से कार्य करने में सक्षम नहीं हो पाता है और उसका व्यवहार कुसमायोजित हो जाता है।

भीषिका विकृति (Panic Disorder) के व्यक्ति को दौरा पढ़ने लगते हैं जिससे रोगी की हृदय गति तीव्र चलने लगती है। हृदय गति के तीव्र होने से रोगी में शारीरिक परिवर्तन होने लगते हैं।

दुर्भीति विकृति में रोगी को अनेको प्रकार के डर व आशंकाएँ सताने लगती हैं जिससे रोगी अपनी समाजिक परिस्थितियों के साथ समायोजन करने में सक्षम नहीं हो पाता है। सामान्यीकृत दुश्चिन्ता विकृति से ग्रसित रोगी में

दुश्चिन्ता, डर आशंकाए आदि अत्यधिक होती है परन्तु वह इस डर, दुश्चिन्ता के कारणों का विश्लेषण उचित प्रकार से नहीं कर पाता है।

मनोग्रसित बाध्यता विकृति में रोगी न चाहते हुए विचारों को बार-बार दोहराता है। विचारों को अपनी इच्छा के विरुद्ध दोहराने की क्रिया में बाध्यता महसूस करता है। उत्तर अभिघातन प्रतिबल विकृति में रोगी को अत्यधिक आघात की स्थिति से गुजरना पड़ता है। इस विकृति में रोगी में प्रतिबल, तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसका कारण तीव्र आघात होते हैं। ये तीव्र आघात प्रियजन की मृत्यु, नौकरी छुटने व अत्यधिक गम्भीर रोग आदि भी हो सकते हैं जिससे रोगी अपनी वास्तविक जीवन में कुंठित व्यवहार की ओर अग्रसर हो जाते हैं।

## 7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अर्न्तगत दुश्चिन्ता विकृति के छः प्रकारों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

- दुश्चिन्ता विकृति
- भीषिका विकृति
- दुर्भीति विकृति
- सामान्यीकृत दुश्चिन्ता विकृति
- मनोग्रसित-बाध्यता विकृति
- उत्तर अभिघातजन्य प्रतिबल विकृति।

## 7.3 दुश्चिन्ता विकृति (Anxiety Disorder)

दुश्चिन्ता विकृति अत्यधिक मात्रा में लोको में पायी जाती है इस प्रकार की विकृति के मुख्य लक्षण आंशका, भय, दुश्चिन्ता आदि होते हैं। यदि व्यक्ति में दुश्चिन्ता की मात्रा तीव्र हो जाती है तो व्यक्ति को दौरा भी पड़ जाता है। दुश्चिन्ता के लक्षण साधारण व परिस्थिति जन्य होते हैं। क्योंकि प्रतिबल/ तनाव की स्थिति न रहने पर लक्षण स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं। दुश्चिन्ता के उत्पन्न होने का कभी भी कोई स्पष्ट कारण नहीं होता है। इन कारणों में परिवर्तन होता रहता है कभी एक कारण हो सकता है तो कभी दूसरा। इसे मुक्त प्रवाही दुश्चिन्ता (Free Floating Anxiety) भी कहा जाता है।

दुश्चिन्ता विकृति से तात्पर्य उन मानसिक विकृतियों व समस्याओं व विपदाओं से होता है जिसमें चिन्ता का स्तर इतना अधिक बढ़ जाता है कि व्यक्ति की वास्तविक जिंदगी प्रभावित होने लगती है। व्यक्ति के दिन प्रतिदिन के व्यवहार में परिवर्तन होने लगता है। व्यक्ति का वातावरण के साथ समायोजन कुप्रभावित होने लगता है।

दुश्चिन्ता प्रतिक्रिया के प्रत्यक्ष कारण के न होते हुए भी व्यक्ति में आशंका की स्थिति प्रतीत होती है। जिससे व्यक्ति में आन्तरिक तनाव उत्पन्न होने लगता है। इस तनाव को कम करने के लिए व्यक्ति शारीरिक क्रियाएं करता है, शारीरिक क्रियाएं करने के कारण व्यक्ति का शरीर भी प्रभावित होता है। व्यक्ति का तंत्रिका तंत्र भी एक प्रकार से

तनाव की स्थिति में आ जाता है। ऐसी स्थिति में पहुँचने से व्यक्ति अपनी पूरी कार्य कुशलता से कोई कार्य नहीं कर पाता है। उसमें कार्य करने की शक्ति धीरे-धीरे क्षीण व समाप्त होने लगती है।

दुश्चिन्ता विकृति से पीड़ित रोगी दुश्चिन्ता के अलावा तनाव, बैचेनी और घबराहट का निरन्तर अनुभव करता है। उसमें चिड़चिड़ापन, एकाग्रता में कठिनाई और अनिद्रा के लक्षण भी स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। व्यक्ति में जी मिचलाने, भूख न लगने, वजन कम होने जैसे लक्षण भी उभरने लगते हैं। बिना किसी कारण के हृदय गति भी तीव्र होने लगती है, रक्तचाप, नाडी गति बढ़ जाती है, रोगी का आत्म विश्वास काम होने लगता है। वह आंशका व डर से हमेशा भयभीत रहने लगता है।

### दुश्चिन्ता विकृति से संबंधित उदाहरण:-

एक नवयुवक को निरन्तर ये शिकायत रहती थी कि उसके साथ कुछ बुरा होने वाला है। वह बहुत महीनो से शारीरिक थकान का अनुभव कर रहा था। उसके सिर, कमर तथा पैरो में अति तीव्र दर्द रहने लगा। कभी-कभी उसे ऐसा महसूस होने लगता है कि उसके दिल की धड़कन तेज हो जाती है और उसका जीवन समाप्त होने वाला है।

मनोचिकित्सा का उपयोग करके रोगी के बारे में पता चला कि वह युवक अपने पिता के साथ व्यवसाय करता था उसे अपने पिता का कठोर तथा कटु व्यवहार बिल्कुल पसन्द नहीं था और इस कारण वह अपने पिता से आन्तरिक रूप से घृणा करता था। परन्तु पिता का सामना नहीं करने व उसकी दी हुई नौकरी को छोड़ने को साहस नहीं जुटा पा रहा था।

मनोचिकित्सा के अर्न्तगत जब रोगी को स्थिति का पता चला तब वह खुलकर अपने पिता से मिलने लगा व उनके द्वारा दी गई नौकरी छोड़कर अन्य नौकरी आरम्भ कर दी तब उसके रोग के लक्षण भी लुप्त होने लगे। यह युवक अचेतन रूप से तीव्र इडिपस मनोग्रन्थि (Oedipus Complex) से पीड़ित था अगर रोगी इडिपसी मनोग्रन्थि से पीड़ित न होता, तब इससे दुश्चिन्ता तंत्रिकाताप के विभिन्न शारीरिक लक्षण भी सम्भवता दृष्टिगत न होते हैं।

दुश्चिन्ता विकृति एक नैदानिक समस्या है (DSM-IV) के अनुसार दुश्चिन्ता विकृति के मुख्य छः प्रकार होते हैं के स्लर तथा उनके सहयोगियों के अनुसार व्यस्क जनसंख्या के करीब 15 से 16 प्रतिशत लोग दुश्चिन्ता विकृति के किसी न किसी प्रकार से आवश्यक ग्रस्त होते हैं। दुश्चिन्ता विकृति के छः प्रकार इस प्रकार हैं--

1. भीषिका विकृति।
2. दुभीति विकृति।
3. सामान्यीकृत दुश्चिन्ता विकृति।
4. मनोग्रन्थि बाध्यता विकृति।
5. उत्तर आधतीय तनाव विकृति।
6. तीक्ष्ण प्रतिबल विकृति।

#### 7.4 भीषिका विकृति (Panic Disorder):-

इस तरह की विकृति में रोगी के बार-बार तीव्र दौरे पड़ते हैं। इस तरह का दौरा पड़ने पर सावैंगिक रूप से तीव्र आंशका तथा भय के लक्षण विकसित हो जाते हैं। इस तरह के दौरा पड़ने पर व्यक्ति की हृदयगति तीव्र हो जाती है। हाथ-पाव ठंडा हो जाते हैं, सीने में दर्द होने लगता है, वह अपने पांव पर खड़ा नहीं हो सकता है। रोगी को ऐसा लगने लगता है कि जैसे वह मरने वाला है व कोई भयानक घटना घटने वाली है। इस प्रकार के दौरे पड़ने के कारण रोगी को लगता है कि उसे दिल का दौरा पड़ने वाला है, जिससे उसकी मृत्यु हो सकती है व उसका अपने शरीर के अंगों पर नियंत्रण खत्म होने लगता है। इस स्थिति में व्यक्ति को भीषिका का दौरा अचानक पड़ता है। कुछ सैकंड व कुछ घण्टों के भी हो सकता है। इसीलिए रोगी चीख चीखकर कर आसपास के लोगों को इक्कड़ा कर लेता है और डॉक्टर के उपचार को तुरन्त बुलाने के लिए कहता है। डॉक्टर के उपचार के बाद औषधि देने पर दौरे समाप्त होने लगते हैं पर रोगी को यह आशंका व डर हमेशा रहता है कि उसे दूसरा दौरा पड़ सकता है।

इस प्रकार के दौरे दिन में कई बार पड़ सकते हैं। यह महीने में एक दो बार भी पड़ सकते हैं। दौरों के बीच के अन्तराल में रोगी सामान्य स्थिति में भी बना रहता है। परन्तु उसमें चिन्ता की भावना पूर्णतः समाप्त नहीं हो जाती है बल्कि उसके जीवन का अभिन्न अंग बन जाता है जो दोबारा दौरा पड़ने पर स्वतः उभर आते हैं।

इस प्रकार के दौरे पड़ने पर रोगी अपनी वास्तविक, कल्पानिक, नयी पुरानी बातों, गलतियों की समीक्षा करता रहता है वह उन समस्याओं के बारे में सोचता रहता है जो अभी उसके सामने घटित भी नहीं हुई हैं। उनको लेकर हमेशा चिन्तित व आंशकाओं से घिरा रहता है।

#### भीषिका विकृति घटनाक्रम:-

मेयर्स तथा उनके सहयोगियों (1984) के अनुसार इस विकृति का दर पुरुषों में 0.7 प्रतिशत तथा महिलाओं में लगभग एक प्रतिशत होता है। पोलार्ड एवं कार्न (1989) के अनुसार इस विकृति की शुरुआत आरम्भिक अवस्था में होता है तथा इसका संबंध तनावपूर्ण जीवन की अनुभूतियों से होता है।

भीषिका विकृति के कारण:-

भीषिका विकृति के कारणों को दो भागों में बाटा जा सकता है।

1. जैविक कारक (Biological Factors)
2. मनोवैज्ञानिक कारक (Psychological Factors)

#### 1. जैविक कारक (Biological Factors):-

टारगेरसन (1983) के अनुसार भीषिका विकृति एंकागी जुड़वा (Identical Twin) बच्चों में भ्रातीय जुड़वा (Fraternal Twin) बच्चों की अपेक्षा काफी अधिक पाया जाता है।

चार्नी एवं हैनगर (Charney & Heinger)(1986) के अनुसार जब व्यक्ति के मस्तिष्क का वह सर्किट जो आपात कालीन प्रतिक्रिया को धीमा करना है या बंद करना है, की क्षमता कमजोर हो जाता है, तो इससे उसमें

भीषिका विकृति उत्पन्न होने की संभावना बढ़ जाती है रॉकिनस तथा उनके सहयोगियों (1986) के अनुसार भीषिका विकृति के रोगी के मस्तिष्क के कुछ हिस्सों में रक्त प्रवाह तथा आक्सीजन सामान्य से अधिक होता है। कुछ अध्ययनों से यह भी पता चला है कि जब श्वसन वायु में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा सामान्य से अधिक होती है तो इस कारण से भी भीषिका का दौरा पड़ता है। क्योंकि कि कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा अधिक होने से अतिश्वसन (Hyperventilation) अवस्था उत्पन्न होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

## 2. मनोवैज्ञानिक कारण (Psychological Factors):-

क्लार्क (1989) के अध्ययन के अनुसार भीषिका विकृति उत्पन्न होने की एक महत्वपूर्ण कारण है कि व्यक्ति अपने भीतर उत्पन्न शारीरिक संवेदनाओं का सही व्याख्या नहीं करता है। भीषिका विकृति वाले रोगी सामान्य चिंता अनुक्रियाओं जैसे तीव्र हृदयगति, दम फूलने की स्थिति तथा चक्कर आने की स्थिति को यह मान लेते हैं कि अब भीषिका दौरा पड़ने वाला ही है। जब कि वास्तविकता यह होता है कि यह अन्य कारकों से उसमें होता है। ऐसी भ्रान्तिपूर्ण व्याख्या से व्यक्ति में परेशानी और भी अधिक बढ़ जाती है और अंततोगत्वा उसमें पूर्ण रूप से भीषिका विकृति उत्पन्न हो जाता है। इस बात का समर्थन होल्ट एवं एण्डरसन (1989) ने भी किया। अध्ययनों से यह भी पता चला है कि भीषिका विकृति में प्रत्यक्षित नियंत्रण का पर्याप्त महत्त्व होता है।

### भीषिका विकृति के उपचार:-

इस विकृति के उपचार के लिए कुछ औषध का उपयोग किया जाता है इसमें ट्राईसाईक्लिक विषाद विरोधी औषध (Tricyclic antidepressant drugs) तथा चिन्ता विरोधी औषध ((anti-anxiety drug) जैसे:- (Alprozalam) इस विकृति के रोगियों के उपचार में कुछ मनोवैज्ञानिक चिकित्साओं का भी उपयोग किया जाता है। क्लोसको एवं उनके सहयोगियों (1990) के अनुसार यदि शारीरिक संवेदनाओं की भ्रान्त व्याख्या को यदि बदल दिया जाये जो इससे विकृति अपने आप दूर हो जायेगी।

## 7.5 दुर्भीति विकृति:-

दुर्भीति विकृति एक ऐसी नैदानिक समस्या है जिसमें व्यक्ति को विशिष्ट वस्तु क्रिया या परिस्थिति से सतत एवं असंगत डर होता है। इसमें किसी भी छोटे बालक को रात के समय अचानक अंधेरे के हो जाने से भयभीत होना या बालक के अकेले हाने पर किसी भयानक पशु को देखने से भयभीत होना एक सामान्य घटना है परन्तु जब कभी एक स्वस्थ किशोर अथवा प्रौढ़ व्यक्ति रात को थोड़े अंधेरे में अपने घर में अत्यधिक भयभीत होने लगते व तालाब कुँए, नदी आदि को देखकर काँपने लगे व पालतु गाय, कुत्ते, बिल्ली को पास आता देखकर आंतक जैसी प्रतिक्रिया करने लगे तब व्यक्ति का व्यवहार निश्चयतः आसामान्य होता है। व्यक्ति के ऐसे अनियन्तीत अनैच्छिक, असंगत तथा अविवेकपूर्ण भय को दुर्भीति ही कहते हैं।

दुर्भीति विकृति के मुख्य तीन श्रेणी होती है। **एगोराफोबिया, सामाजिक दुर्भीति तथा विशिष्ट दुर्भीति। एगोराफोबिया** में व्यक्ति ऐसे सार्वजनिक जगहों में जाने से डरता है जिससे दूर रहना सम्भव नहीं है।

**सामाजिक दुर्भीति** में व्यक्ति वैसी सामाजिक परिस्थिति में जाने से डरता है जहाँ वह यह समझता है कि उसका मूल्यांकन किया जा सकता है। ऐसे लोग जन समूह के सामने बोलने या कुछ भी करने से घबराते हैं। ऐसे लोग शौचगृह का इस्तेमाल करने से डरते हैं। ऐसे व्यक्ति सामाजिक संबंधों से दूर रहना चाहते हैं।

**विशिष्ट दुर्भीति** वैसी होती है। जिसमें व्यक्ति कुछ लोग विशेष तरह के पशु पक्षी या कीड़े मकोड़े से काफी डरते हैं। उदाहरण स्वरूप एरेकनोफोबिया अर्थात् मकड़ा से डर, साइनोफोबिया-कुत्ते का डर, टोनिट्रोफीबिया अर्थात् आधी तूफान से डर आदि विशिष्ट दुर्भीति के कुछ उदाहरण हैं।

दुर्भीति प्रतिक्रियाएं अन्य आयु वर्गों की अपेक्षा प्रोढ़ावस्था के आरंभ में अधिक होती हैं यह पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक होती है।

इसमें रोगी में दुर्भीति के अलावा कुछ शारीरिक लक्षण भी पाये जाते हैं। जैसे सिर का दर्द पेट में गडबड़ सिर चकराना, हीनता भावना, किसी गंभीर शारीरिक रोग की आशंका, अनिद्रा का मुक्त संबंधी कठिनाइया आदि। कुछ रोगियों में दुर्भीति प्रतिक्रियाओं की प्रकृति मनोग्रस्ति संबंधी होती है। मनोग्रस्ति संबंधी होती है। इसमें व्यक्ति के अचेतन में दमित अर्न्तद्धन्द्र से संबंधित तनाव व दुश्चिन्ता के प्रबल भाव तथा भय के लक्षण के रूप में एक दम फूट पड़ते हैं।

दुर्भीति उद्वीपक स्थिति से संबंधित व्यक्ति पलायन का भरसक प्रयास करते देखा जाता है तथा वह जितनी देर तक ऐसी स्थिति में अपने को फंसे देखता है उसके भय के लक्षण उतने ही अधिक उग्र होते ही चले जाते हैं।

दुर्भीति के लक्षणों के उत्पन्न होने का व्यक्ति की बौद्धिक तथा सामाजिक व आर्थिक स्थिति से कोई विशेष संबंध नहीं होता, परन्तु कुछ विशेष प्रकार की दुर्भीति की उत्पत्ति में आयु की विशिष्ट भूमिका आवश्यक देखने में आती है। जैसे पशु दुर्भीति की उत्पत्ति विशेषतः शैशवकाल तथा बाल्यकाल में देखने में आती है जब कि खुले स्थान की दुर्भीति विशेषता लड़कियों में यौवनारम्भ के समय पर देखने में आती हैं।

### **दुर्भीति का उदाहरण:-**

एक स्वस्थ युवा लड़की को बहते हुए पानी से डर लगता था। भय का कारण समझने में असमर्थ थी। 7 से 20 वर्ष की आयु तक यह स्थिति बिना सुधार के ऐसी ही बनी रही। इस लड़की को बहते पानी की ध्वनि से भय लगता था। जैसे नहाने के लिए टब में पानी भरा जाता है था तो उसकी ध्वनि से दूर रहने के लिए घर से बाहर चली जाती थी। उसके परिवार के सदस्यों को काफी प्रयास करना पड़ता था। स्कूल में वह बहते हुए पानी की आवाज सुनकर मुचर्छित हो जाती थी। इस प्रकार के भय के कारण उसको अपना जीवन व्यतीत करने में कठिनाई हो रही थी।

इस दुर्भीति का कारण यह था कि जब लड़की 7 वर्ष की थी तो वह अपनी माँ तथा मौसी के साथ पिकनिक पर गयी। शाम को जब माँ घर वापस आने लगी तो लड़की ने यह आग्रह किया कि वह कुछ दिन और अपनी मौसी के साथ रहना चाहती है। उसने अपनी माँ को वचन दिया कि वह मौसी की आज्ञा के बिना कुछ नहीं करेगी। परन्तु कुछ समय बाद लड़की वचन तोड़कर अकेले घूमने चली गयी, काफी दूढ़ने के बाद वह लड़की झरनों के बीच में पत्थरों के नीचे फसी हुई मिली। झरने का पानी ठीक उसके सिर पर गिर रहा था। जिससे भयभीत होकर चीख रही

थी। घर आते समय उसकी मौसी ने वचन दिया कि वह उसकी माँ से शिकायत नहीं करेगी। परन्तु लड़की ने इस बात पर विश्वास नहीं किया और घर वापस आते ही वह सो गयी और रात को ही उसकी मौसी चली गयी। दूसरे दिन से उसमें बहते हुए पानी की दुर्भीति उत्पन्न हो गयी। 13 वर्ष तक निरन्तर बनी रहने वाली दुर्भीति मौसी के केवल एक वाक्य पर समाप्त हो गयी मौसी ने लड़की से सिर्फ इतना कहा था मैंने कुछ नहीं बताया।

आर्डडसन (1968) के अनुसार तंत्रिकातापी विकारों से पीडित व्यक्तियों में से लगभग 8 प्रतिशत से लेकर 12 प्रतिशत व्यक्ति दुर्भीति के प्रतिक्रिया से पीडित पाये जाते हैं। युवा रोगियों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या अधिक रहती है। मार्क्स (1969) के अनुसार विभिन्न प्रकार की दुर्भीतियों में से पशु दुर्भीति से लगभग 95 प्रतिशत स्त्रियां पीडित पायी जाती है जबकि खुले स्थानों की दुर्भीति में उसकी संख्या 75 प्रतिशत तथा सामाजिक दुर्भीति से 60 प्रतिशत स्त्रियां पीडित पायी जाती है। स्त्रियों में भयभीत होने की क्रिया अधिक मान्य तथा स्वीकार्य है।

#### कारण:-

दुर्भीति प्रतिक्रियायें अनेक व्यक्तित्व विकारों और मानसिक रोगों में पायी जाती हैं दुर्भीतियाँ आन्तरिक अथवा बाह्य खतरों का सामना करने के ऐसे प्रयास हैं जिनसे इन खतरनाक पस्थितियों को उत्पन्न होने से रोका जाये या सावधानी पूर्वक उनसे बचा जाये। दुर्भीति के उत्पन्न होने के निम्न कारण हो सकते हैं।

#### 1. अनुकूलन:-

अनुकूलन सिद्धान्त के अनुसार जब कोई तटस्थ उद्दीपक उस समय उपस्थित हो जाये जब व्यक्ति किसी दूसरे कारण से भयभीत हो तो इस तटस्थ उद्दीपक में भी बाद के अवसरों पर भय उत्पन्न करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

#### 2. भयप्रद आवेगों के विरुद्ध सुरक्षा:-

व्यक्ति अपनी आक्रमता अथवा कामुक दमित इच्छाओं से उत्पन्न होने वाली दुश्चिन्ता से बचने और अपनी रक्षा के लिए दुर्भीति का सहारा लेता है। व्यक्ति जिस स्थिति से भयभीत होता है। वह भय का वास्तविक कारण नहीं होती। एक पति को नदी अथवा तालाब की दुर्भीति थी इसका कारण यह था कि उसके मन में अपनी पत्नी के डुबा देने की तीव्र इच्छा उत्पन्न होती रहती थी।

#### 3. दमित अन्तर्द्वन्द्व:-

दुर्भीति का मुख्य कारण व्यक्ति के अतीत के जीवन से संबंधित किसी एक घटना अथवा विषय वस्तु के प्रति दमित अन्तर्द्वन्द्व रहता है।

#### 4. प्रतिगामी व्यवहार:-

दुर्भीतिग्रस्त व्यक्ति का स्वभाव पलायनवादी तथा प्रतिगामी होता है। यद्यपि उसके प्रतिगमन का स्वरूप सामान्यतः आंशिक ही रहता है। परन्तु फिर भी इसके उसमें अविवेकपूर्ण अपरिपक्व तथा शैशवकालीन व्यवहार के लक्षण एक विशेष स्थिति में एक दम से देखने में आने लगते हैं। मनोवैज्ञानिक दुर्भीति की उत्पत्ति बाह्य तथा पर्यावरण संबंधी कारकों के अतिरिक्त शारीरिक कारकों में देखने का प्रयास करते हैं।

**उपचार:-**

दुर्भीति मनोविकार के उपचार के लिए उसकी गम्भीरता तथा संबंधित रोगी की सामान्य स्थिति को आंकने की आवश्यकता होती है। दुर्भीति का उपचार इस बात पर निर्भर करता है कि उसका वास्तविक कारण क्या है? यदि दुर्भीति का कारण कोई अभिघातपूर्ण अनुभव है तो उसका उपचार यह कि रोगी में इस अनुकूलन का विलोप अथवा विसंवेदन कर दिया जाये। यदि किसी बालक को कुत्ते ने काट लिया है और वह कुत्ते से भयभीत रहने लगता हो तो उसका उपचार है कि उसे बार बार आश्वस्त तथा प्रोत्सहित किया जाये ताकि वह किसी पालतू कुत्ते को छुने का साहस कर सके। यदि इस प्रक्रिया को बार बार दोहराया जाये तो वह कुत्ते की दुर्भीति से मुक्त हो जायेगा।

इससे व्यक्ति में एक निरपेक्ष घटना के प्रति भय उत्पन्न करने के स्थान पर मन पसन्द पुरस्कार देने की व्यवस्था की जाती है।

दुर्भीति ग्रस्त व्यक्ति की उपचार प्रक्रिया के लिए मनोचिकित्सक से लेकर व्यवहार रूपान्तरण तथा विद्युत आघात चिकित्सा तक की आवश्यकता पड़ सकती है। मनोचिकित्स के व्यवहार रूपांतरण से लाभ न मिलने पर विद्युत आघात चिकित्सा का उपयोग किया जाता है। ऐसी उपचार पद्धति का प्रयोग करने से उनमें रोग के तीव्र लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं और दुर्भीति तीव्र हो जाती है।

**7.8 सामान्यीकृत दुश्चिन्ता विकृति (Generalized Disorder or GAD):-**

सामान्यीकृत दुश्चिन्ता विकृति के अर्न्तगत रोगी लम्बी अवधि तथा सतत अवास्तविक या अत्यधिक चिन्ता से ग्रस्त रहता है। इस प्रकार की चिन्ता को स्वंत्रत प्रवाही चिन्ता (Free Floating Anxiety) भी कहाँ जाता है। इस विकृति से ग्रसित व्यक्ति हमेशा तनाव, दुश्चिन्ता एवं अवास्तविकता की दुनियाँ में खोया रहता है। (DSM-IV)के अनुसार यदि किसी व्यक्ति की जिन्दगी कम से कम छः माह ऐसे ही व्यतीत हुए हो जिसमें से अधिकांश अवधि में उसे अवास्तविक एवं अत्यधिक चिन्ता बना रहे तो निश्चित रूप से ऐसे व्यक्ति को सामान्यीकृत दुश्चिन्ता विकृति का रोगी ही कहा जायेगा।

**7.8.1 लक्षण (Symptoms):-**

सांवेगिक रूप से ऐसे रोगी बेचैन, तनावग्रस्त, दिखायी देता है। वह भविष्य में घटित हाने वाले खतरों या घटनाओं जैसे हृदय आघात, मृत्यु या नियंत्रण खोने आदि जैसी बातों के बारे में सोच-सोचकर काफी परेशान रहता है। संज्ञानात्मक रूप से वह सदैव कुछ बुरा होने की उम्मीद करते रहता है। परन्तु वह यह नहीं बता पाता है कि क्या बुरा होने वाला है। पसीना आना, हृदयगति तीव्र होना, पेट में गड़बड़ी होना, सिर दर्द, हाथ पैर ठण्डा हो जाना आदि जैसी आपातकालीन दैहिक प्रतिक्रियाएँ भी देखने में आती है। रोगी का व्यवहार बहुत ही असंयमित और चिड़ाचिड़ापन वाला हो जाता है ऐसे व्यक्ति बहुत जल्दी थकान अनुभव करते हैं। और स्वयं को एकाग्रचित नही कर पाते हैं। ऐसे व्यक्ति को किसी निर्णय पर पहुचने में अत्यधिक कठिनाई होती है।

**7.8.2 घटनाक्रम (Incidence):-**

रेपी ने (1991) के अनुसार यह विकृति सामान्य जनसंख्या के मात्र 4 प्रतिशत लोगों में ही होता है। बारलो 1996 के अनुसार इस विकृति की शुरुवात सामान्य: 15 साल की आयु में प्रारंभ हो जाता है लेकिन कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिन्हें यह समस्या पूरी जिंदगी के दौरान होता रहता है। यह विकृति पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में अधिक होता है।

### 7.8.3 कारण (Causes):-

#### 1) जैविक कारण (Biological Factors):-

कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार इस विकृति का कारण जैविक भी होता है। स्लेटर एवं षिल्ड (1969) ने एकांगी जुड़वा बच्चों के 17 युग्मों तथा भ्रातीय युग्मों के 28 जुड़वाँ युग्मों का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात यह परिणाम प्राप्त किया कि 49 प्रतिशत प्कमदजपबंस जूपदे बच्चों में सामान्यीकृत दुश्चिंता विकृति थी जबकि 4 प्रतिशत भ्रातीय जुड़वाँ में ही यह विकृति थी।

#### 2)) मनोविश्लेषणात्मक कारक ((Psychoanalytic Factors):-

इस सिद्धान्त के अनुसार म्हव की इच्छा एवं प्क की इच्छा में अचेतन संघर्ष के परिणाम स्वरूप इस विकृति की उत्पत्ति होती है। चूँकि इस प्रकार के चिंता का कारण अचेतन संघर्ष होता है, अतः बिना कारण जाने ही हमेशा चिंतित एवं आशकित रहता है।

#### 3) अधिगम सिद्धान्त:-

ओल्प्से (Wolpe) 1958, ने इस प्रकार की विकृति का कारण विकृत अधिगम माना है। यदि कोई व्यक्ति जागृत अवस्था में सामाजिक संपर्क को लेकर चिंतित रहता है और यदि वह इस बात को लेकर अन्य लोगों के साथ अपना अधिक से अधिक समय व्यतीत करता है तब ऐसे व्यक्ति में सामान्य दुश्चिंता विकृति होना पाया जाता सकता है। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति की चिंता बाह्य उद्दीपकों से अनुबंधित हो जाता है।

#### 4) संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक कारक:-

बारलों के अनुसार इस विकृति से ग्रस्त रोगी धमकी पूर्ण परिस्थितियों को अपने नियन्त्रण से परे मानते हैं जिसके कारण से उनमें अत्यधिक चिंता बना रहता है। केन्डाल एवं इनग्राम (1989) तथा बेक एवं उसके सहयोगियों में अनुसार जब व्यक्ति किसी साधारण एवं नयी परिस्थिति को भी तनावपूर्ण एवं धमकी भरा प्रत्यक्षण करता है तो उसमें उस व्यक्ति में अनावश्यक चिंता बढ़ जाती है। ऐसे रोगी भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं को लेकर इस प्रकार परेशान रहता है। बटलर एवं मैक्यूज (1983) के अनुसार इस प्रकार के रोगी अस्पष्ट उद्दीपकों को अधिक धमकी पूर्ण समझते हैं तथा स्वयं के साथ अशुभ घटनाओं के होने की अशांका से भयभीत रहते हैं।

### 7.8.4. उपचार -

इस विकार से ग्रसित रोगी के लिए मुख्यतः दो तरह की प्रविधियाँ अधिक लोकप्रिय हैं।

### 1. जैविक या मेडिकल प्रविधि ((Biological or Medical techniques):-

चिंता-विरोधी औषधि लेने से रोगी के लक्षणों में कमी हो जाती है लेकिन यह भी देखा गया है कि (anti-anxiety drug)को बन्द करने के पश्चात पुनः लक्षण दिखायी देने लगते हैं। रोगी फिर से सोचने लगता है कि उसके चिंता के लक्षण का स्वरूप कुछ ऐसा है जिस पर नियन्त्रण नहीं पाया जा सकता है। इस प्रकार की औषधि के सेवन से तत्कालिक लाभ तो मिल जाता है लेकिन स्थाई लाभ नहीं मिलता है।

### 2. संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक चिकित्सा (Cognitive Behavioral Therapy):-

प्रशान्तक औषधियों के सेवन से पश्चात मनोचिकित्सा के द्वारा ही व्यक्ति की दुश्चिंता के वास्तविकता कारणों को जानकर उसे दूर किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत व्यवहारात्मक चिकित्सा शिथिलीकरण, क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा, शाब्दिक निर्देश, माँडलिंग, क्रियाप्रसूत, जैसी प्रतिविधियों का उपयोग किया जा सकता है।

### 7.7 मनोग्रस्ति बाध्यता विकृति (Obsessive Compulsive Disorder) :-

मनोग्रस्ति और बाध्यता दो तरह की समस्याएं होती हैं। मनोग्रस्तता में रोगी बार-बार मन में आने वाले किसी अतार्किक एवं असंगत व अस्वागत योग्य विचारों को न चाहते हुए भी मन में दोहराता रहता है। रोगी ऐसे विचारों की अर्थहीनता, असंगतता एवं अतार्किक स्वरूप को भली भाँति समझता है और उनसे छुटकारा भी पाना चाहता है परन्तु वह ऐसा नहीं कर पाता है। औ एक ही विचार बार बार उसके मन में आते रहता है। जिससे उसकी मानसिक शांति इस हद तक क्षुब्ध हो जाती है कि उसके समायोजन में बाधा पहुँचाती है। दूसरी समस्या बाध्यता है यह एक क्रियात्मक प्रतिक्रिया होती है जहाँ रोगी अपनी इच्छा के विरुद्ध किसी क्रिया को बार-बार करने के लिए बाध्यता महसूस करता है। ऐसी क्रियाएँ अवांछित ही नहीं बल्कि अतार्किक एवं असंगत होती हैं साफ सुथरे हाथ को बार बार धोने की क्रिया, ताला ठीक से लगा देने पर भी उसे बार बार झकझोर का देखना, सड़क पर खड़े होकर आते जाते गड़ियों को नम्बर नोट करना आदि बाध्यता के कुछ उदाहरण हैं।

एक सामान्य व्यक्ति में भी कभी-कभी कुछ विचार अनैच्छिक रूप से निरन्तर आते जाते देखे जाते हैं। जैसे कि एक गृहणी सोने से पहले अपने घर के दरवाजे की सिटकनी बन्द करके बिस्तर पर चली जाती है। और फिर मन ही मन जब यह शंका करने लगती है कि उसने दरवाजे की सिटकनी को ठीक प्रकार से बंद नहीं किया है तब उसका फिर से बिस्तर से उठकर सिटकनी के लगे होने की पुष्टि कर लेना एक प्रकार से सामान्य व्यवहार ही है, परन्तु इस संबंध में पुष्टि के हो जाने के पश्चात भी गृहणी द्वारा रात में बार बार अपने बिस्तर से उठकर सिटकनी के बन्द होने को देखते रहना आसामान्य व्यवहार तथा उसकी आधाभूत असुरक्षा की भावना का ही प्रतीक है जिसके कारण उसमें ऐसी मनोग्रस्ति बाध्यता देखने में आती है।

मनोग्रस्ति-बाध्यता के दो मुख्य रूप होते हैं। प्रथम मनोग्रस्थित बाध्यता के वे रूप जिनमें व्यक्ति के विचार तथा व्यवहार नैतिक तथा सौर्दात्मक दृष्टिकोण से अवांछित तथा घृणित होते हैं। जैसे मानव हत्या संबंधी विचार, अनुचित काम संबंधी विचार, प्रतिशोध के घोर व क्रूर विचार, प्रियजनों को बुरी बुरी गाली देने के विचार आदि। दूसरे मनोग्रसित बाध्यता के कुछ ऐसे रूप भी होते हैं जिनका संबंध व्यक्ति को समाजिक व नैतिक विचारों तथा व्यवहारों से रहता है। ऐसी स्थितियों में व्यक्ति अपनी दमित पाप, अपराध भावनाओं के प्रति प्रायश्चित्त करते देखा

गया है या फिर उन क्रियाओं तथा पूर्व सावधानियों का सहारा लेते देखा जाता है जिनके द्वारा आन्तरिक तनाव कम हो जाते हैं।

मनोग्रस्ति बाध्यता से पीड़िता रोगियों की संख्या 4 प्रतिशत से लेकर 20 प्रतिशत तक देखने में आती है।

### 7.7.1 लक्षण:-

इस प्रकार के व्यक्तित्व विकार का मूल स्रोत व्यक्ति के अचेतन में दमित रहता है तथा इस अचेतन के कारण ही व्यक्ति चेतन स्तर पर अनेक निरर्थक लगने वाली क्रियाएँ करते देखा जाता है। मनोग्रस्ति बाध्यता के लक्षणों का संबंध व्यक्ति के दमित व अचेतन काम आवेगों, विरोध व धृणा के भावों, नैतिक व अनैतिक इच्छाओं, विचारों तथा विचित्र क्रियाओं से जुड़े होता है।

संशय तथा अनिश्चिता का दोष मनोग्रसित व्यक्ति में अत्यधिक पाया जाता है। ऐसे व्यक्तियों के मन में हमेशा डर व आशंका बनी रहती है जिसके कारण वह महत्वपूर्ण निर्णय नहीं ले पाते हैं और हमेशा शंकाओं से घिरा रहते हैं। मनोग्रस्ति व्यक्ति के मन में अनेक अनिष्ट विचार आते रहते हैं। वह इन विचारों के अन्तर्गत कुछ भी सोच सकता है, जैसे किसी पर आक्रमण करना, शत्रुता करना, घृणा करना, ऐसे ही अन्य आमानीय विचार विकसित करने का प्रयास करता है। इनका व्यवहार निरर्थक होने के साथ-साथ अनैच्छिक व पुनरावृत्तात्मक होता है। वह अपने निरर्थक व्यवहार की पुनरावृत्ति करते रहते हैं चाहे उनकी इच्छा न हो। ऐसी अवस्था में रोगी शैशवकाल की परिस्थिति का अनुभव करने लगता है। उसको असुरक्षा की भावना प्रतीत होती है। इसीलिए उसका व्यवहार बच्चों के समान बचकाना होने लगता है। मनोग्रस्ति-बाध्यता से पीड़ित व्यक्ति अपने अचेतन के वेदनापूर्ण तनाव को कम करने के लिए तथा अपने अहम् को विघटित होने से बचाने के लिए रक्षायुक्तियों को भी अपने व्यवहार में अनुप्रयुक्त करता है। इस स्थिति में व्यक्ति के व्यवहार में दोष घृणा व विरोध के भाव अत्यधिक प्रबल उठते हैं।

मनोग्रस्ति व्यक्ति की विभिन्न बाध्यताओं के लक्षणों का स्वरूप व्यक्तित्व के अन्य विकारों में भी मिलता है। बाध्यतामूलक क्रियाओं का संबंध प्रायः कामुकता और आक्रमकता से होता है। इनके अलावा मद्योन्माद, अग्निदहनों, माद, दर्शन रति विशिष्ट प्रकार की बाध्यताएँ हैं।

1. **मद्योन्माद बाध्यता (Dipsomania)** में संबंधित व्यक्ति में मद्यपान के लिए अतिशय सनक देखने में आती है तथा इसके लिए उसमें कभी-कभी दुश्चिन्ता जैसे दौर पड़ने लगते हैं।
2. **चौर्योन्माद ((Kleptomania)** विकार के अन्तर्गत व्यक्ति कुछ विशेष वस्तुओं की चोरी के लिए आन्तरिक रूप से अति विवश रहता है। यद्यपि उसके पास वस्तु का कोई भी अभाव नहीं होता है।
3. **अग्निदहानोमाद ((Pyromania)** से पीड़ित रोगी के विचारों में आग लगाने की तीव्र इच्छा होती है। सम्पत्ति को ऐसे जलाने के उसे एक विशेष प्रकार की आनन्द की अनुभूति होती है।
4. **फीटिशपरायणता ((Fetishism):** इसके अन्तर्गत व्यक्ति विभिन्न कर्म काण्डों व भूत प्रेत की पूजा आदि करने के प्रति अभिप्रेरित रहता है।

**5. दर्शनरति ((Voyeurism) -**इस मनोग्रस्ति के अर्न्तगत व्यक्ति विशेषतः पुरुष युवतियों व युवा महिलाओं को देखने व उनके शरीर के विभिन्न उद्दीपक अंगों पर ही आसामान्य रूप से मोहित रहने की बाध्यता होती है।

### 7.7.2 मनोग्रसित बाध्यता के कारण:-

मनोग्रस्ति बाध्यता तंत्रिकाताप के अनेक कारण हो सकते हैं जो निम्न प्रकार से हैं।

#### 1. दमित संवेगात्मक अनुभव व काम संबंधी प्रबल तनाव:-

मनोग्रस्ति व्यक्ति अपने अचेतन में दमित काम संबंधी आवेगों के तनाव से अत्यधिक पीड़ित रहता है। इसके कारण उनका दोषपूर्ण दमन करता रहता है। दोषपूर्ण दमन के कारण आवेग अभिव्यक्ति के लिए निरन्तर लालायित रहते हैं जिससे व्यक्ति में प्रबल तनाव बना रहता है। एक पति को यह विचार बार-बार सताता है कि उसकी पत्नी वफादार और चरित्रवान नहीं है इसका कारण यह कि स्वयं पति अपनी पत्नी के प्रति वफादार नहीं था। व्यक्ति दमित आवेगों के मूल स्रोत को जान नहीं पाता है।

#### 2. दमित इच्छाओं के विस्फोट से रक्षा:-

व्यक्ति की दमित इच्छाएं अचेतन में सक्रिय होती हैं और निरन्तर यह प्रयास करती रहती हैं कि चेतन स्तर पर पहुँच जाये। ये अनैतिक अथवा भयानक इच्छाएँ चेतन स्तर पर न पहुँच सके इसके लिए रोगी अपने चेतन स्तर को ऐसी इच्छाओं द्वारा व्यस्त रखता है जो अपेक्षाकृत कम भयानक होती हैं।

#### 3. आत्म अवमूल्यन और अपराध भावना:-

जब कोई व्यक्ति ऐसा अनैतिक व्यवहार कर लेता है जो उसमें आत्म अवमूल्यन और अपराध भावना उत्पन्न कर दे तो मनोग्रसित बाध्यता के लक्षण इसी आत्म अवमूल्यन का कारण बन जाते हैं।

#### 4. विचार व व्यवहार का स्थिरीकरण:-

मनोग्रस्ति बाध्यता विकार के अर्न्तगत व्यक्ति के आंशिक प्रतिगमन का एक परिणाम यह होता है कि उसके विचार व व्यवहार में स्वच्छाता तथा गंदगी, नैतिकता तथा अनैतिकता, प्रेम तथा घृणा के विचारों के प्रति एक प्रकार की कठोरता देखने में आती है। इससे ही उसके व्यवहार में बार-बार हाथ धोने व अत्यधिक स्वच्छ करने की बाध्यता देखी जाती है।

#### 5. पाप तथा अपराध के लिए अचेतन स्वदंडन:-

ऐसे विकार से पीड़ित व्यक्ति में पराहम की कठोरता के कारण अपने पाप व अपराध के लिए दण्ड भोगने की तीव्र भय रहता है। जो कभी-कभी शारीरिक रोग के लक्षणों में भी परिवर्तित हो जाता है।

#### 6. तनाव और दुश्चिन्ता विपत्तियों से भय:-

मनोग्रस्ति बाध्यता से पीड़ित रोगी में दुश्चिन्ता व तनाव का भाव उत्पन्न होने लगते हैं। उसे सुरक्षा का आभाव व घोर विपत्तियों तथा क्षति होने का भय सताता रहता है। ऐसी संकट की स्थितियों से बचने के लिए अनेक अन्धविश्वासों का सहारा लेते हैं।

### 7. अत्यधिक कठोर व दोषपूर्ण समाजीकरण का प्रभाव:-

कैमरान के अनुसार व्यक्तित्व में मनोग्रस्ति बाध्यता की उत्पत्ति में उसकी दोषपूर्ण समाजीकरण की प्रक्रिया की भी विशिष्ट भूमिका होती है। दोषपूर्ण पारिवारिक स्थिति व सामजीकरण की प्रक्रिया के कारण भी व्यक्ति मनोग्रस्ति बाध्यता का शिकार हो जाता है, क्योंकि माता पिता के धैर्यहीन होने पर बालक भी अधीर अशान्त व शंका ग्रस्त रहने लगता है।

### 8. व्यक्तित्व के विशिष्ट घटक:-

मनोग्रस्ति से पीड़ित व्यक्ति में व्यक्तित्व कारक अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जैसे अर्न्तमुखिता, स्वघाती व्यवहार, आधारिक सुरक्षा का अत्यधिक अभाव, स्वदण्डन की अदम्य प्रवृत्ति, अंधविश्वासी व अपराध भाव से पीड़ित रहने का स्वभाव।

#### 7.7.3 उपचार:-

इस प्रकार के व्यक्तित्व विकार के उपचार के लिए मनोचिकित्सा की अति महत्वपूर्ण भूमिका होती है इसके अर्न्तगत पहले व्यक्ति के अचेतन मन के अध्ययन के लिए मनोविश्लेषण विधि के उपयोग की आवश्यकता होती है। जिससे व्यक्ति के आन्तरिक तनाव के मूलस्रोत का पता लग सके।

रोगी के आन्तरिक तनाव के अध्ययन में मनोविश्लेषण विधि सफल न होने पर नार्केशिस की आवश्यकता पड़ सकती है। इस स्थिति में रोगी के साक्षात्कार से महत्वपूर्ण सहायता मिलती है। इन सभी विधियों के विफल होने पर विद्युत आघात विधि तथा एक अन्य शैल्य चिकित्सा तथा प्रमस्तिष्क अंशोच्छेदन(टोपेक्तामी) का अन्तिम विकल्प के रूप में उपयोग किया जाता है। टोपेक्तामी चिकित्सा विधि के अर्न्तगत मस्तिष्क के उस विशेष अंग को विच्छेदित करके बाहर निकाल दिया जाता है जिसका संबंध मनोग्रस्ति विचार से पाया जाता है। मनोग्रस्ति बाध्यता के उपचार में व्यवहार चिकित्सा की भूमिका काफी महत्वपूर्ण होती है। व्यवहार चिकित्सा के तीन प्रविधियों क्रमशः माँडलिंग फ्लडिंग तथा अनुक्रिया निवारण को संयोजित करके मनोग्रसित-बाध्यता विकृति का उपचार किया जाता है। फोआ तथा कोजाक (1999) ने अपनी समीक्षा में 16 ऐसे अध्ययनों को सम्मिलित किया जिससे 300 रोगियों को व्यवहार चिकित्सा के इन तीनों प्रविधियों द्वारा उपचार किया गया था और परिणाम यह निकला कि उसमें से करीब 83 प्रतिशत रोगियों को ऐसे उपचार से काफी फायदा हुआ।

### 7.8 उत्तर अभिघातीय तनाव विकृति (Posttraumatic Stress Disorder):-

यह एक ऐसी दुश्चिंता या डर है जिसकी उत्पत्ति विशिष्ट घटना से होती हैं। जैसे प्राकृतिक आपदा, आगजनी, भूकंप, बाढ़, युद्ध आदि। इसके अतिरिक्त कुछ घटनाओं ऐसी होती हैं जिसके लिए व्यक्ति स्वयं जिम्मेदार होता है जैसे विवाह-विच्छेद, किसी को जान से मारना, बलात्कार आदि। ऐसी स्वभाविक या अस्वभाविक विशिष्ट घटना के बाद व्यक्ति में साँवैगिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण से व्यक्ति का व्यवहार कुसमयोजी हो जाता है। इस तरह की स्थिति को ही उत्तर अभिघातीय तनाव विकृति कहाँ जाता है।

### 7.8.1 लक्षण(Symptoms):-

PTSD के सम्बन्ध में (DSM-IV)में छः लक्षण या कसौटी बतलाया गया है जिसके आधार पर इसकी पहचान की जाती है।

- 1) व्यक्ति को अपने दिन-प्रतिदिन की जिन्दगी में गंभीर तनाव से उत्पन्न मानसिक आघात की याद बार-बार आती है। यह याद जागृत अवस्था में भी आ सकती या नींद में भी।
- 2)) व्यक्ति हमेशा उन उद्दीपकों से दूर भागने की कोशिश करता है। जो उस मानसिक आघात से उत्पन्न करने वाली घटनाओं से किसी न किसी रूप से साहचर्यित होता है क्योंकि इससे उनमें गंभीर चिंता उत्पन्न होती है।
- 3) व्यक्ति में हमेशा उच्चस्तरीय उत्तेजना जैसे चिरकालिक तनाव तथा चिड़चिड़ापन का अनुभव होता है। साथ ही साथ उसमें अनिद्र की शिकायत हो जाती है तथा उनमें चिड़चिड़ान या वेचैनी के स्तर को भी वह सहन नहीं कर पाता है।
- 4) व्यक्ति में एकाग्रता की शिकायत रहती है तथा स्मृति लोप तीव्र हो जाती है। इसके अतिरिक्त दर्द संबंधी संवेदनाओं के प्रति सुन्नता ;छनउड़पदहद्ध का गुण भी पाया जाता है।

अण् व्यक्ति में विषाद का स्तर बढ़ जाता है। वह अपने आप को सामाजिक संपर्क से दूर कर लेता है।

अ1) उपरोक्ता सभी लक्षण करीब एक माह से अधिक व्यक्ति में मौजूद हो।

### 7.8.2 कारण:-

उत्तर अघातीय तनाव विकृति के निम्न कारण हो सकते हैं।

#### 1. जैविक कारण ((Biological factors):-

क्रिस्टल एवं उनके सहयोगियों 1989,के अनुसार मानसिक आघात से नारएड्रीनरजिक तन्त्र ((Noradrenergic System) ) प्रभावित हो जाता है। जिससे रक्त में नोरइपाइफ्राइन ((Nor epinephrine) का स्तर बढ़ जाता है। जिसके कारण से व्यक्ति में उत्तेजना और आक्रमकता बढ़ जाती है। कोल्ब के अनुसार जब व्यक्ति में पुराने स्नायविक रास्ते नष्ट हो जाते हैं। जो व्यक्ति में उत्तरअभिघात तनाव के लक्षण उत्पन्न करते हैं।

#### 2. मनोवैज्ञानिक कारक ((Psychological Factors):-

ब्रेसलाऊ के अध्ययन से यह पता चला की माता-पिता से कम उम्र में ही बिछुड जाने पर विकृति का पारिवारिक इतिहास होने पर तथा महिलाओं में मानसिक आघात होने पर उत्तर अभितीय तनाव की विकृति को बढ़ने की संभावना अधिक हो जाती है। जोन्स एवं बारलो के अनुसार मानसिक आघात उत्पन्न होने के पहले जिन लोगो में मनोवैज्ञानिक कठिनाईया अधिक होती है उनमें PTSD के लक्षण अधिक विकसित होते है इस तरह के व्यक्तित्व को पूर्ण विकृत व्यक्तित्व ((Premorbid Personality) कहाँ जाता है।

मनोगतिकी मॉडल के ((Psychodynamic Model) अनुसार, तीव्र एवं गहरे मानसिक आघात से निबटने की आवश्यकता के कारण व्यक्ति दमन का सहारा लेता है जिससे उसमें प्रत्याहार एवं सुन्नता के लक्षण विकसित होते है। दूसरी तरफ जब दमन कमजोर पड़ जाता है। तब व्यक्ति पुनः उस मानसिक आघात को अनुभव करने लगता है। जोन्स एवं बारलो के अनुसार जब व्यक्ति में आत्मनिन्दा, भविष्य में होने वाले मानसिक आघात की प्रत्याशा तथा भय का विकास आदि मौजूद होते है। तो ऐसी स्थिति में PTSD के लक्षण विकसित होते है।

### 3. सामाजिक कारक:-

उत्तर अभिघात विकृति की उत्पत्ति में सामाजिक कारकों का भी योगदान होता है। इस क्षेत्र में किये गये अध्ययनों से पता चला है कि अधिक तीव्र एवं जान जाने वाली धमकी पूर्ण परिस्थितियों से भी PTSD के उत्पन्न होने की संभावना बढ़ जाती है। सामाजिक समर्थन की कमी से भी व्यक्ति में PTSD विकसित होता है। वियतनाम युद्ध से लौटने के बाद जिन सैनिको को सामाजिक तिरस्कार का सामना अधिक करना पड़ा, उनमें उत्तर अभिघात विकृति का विकास तेजी से हुआ।

### 7.8.3 उपचार:-

उत्तर अभिघात कारक तनाव के लिए कुछ आपातकालीन उपाय किये जाते है। इस आपाकलीन उपायों में गहरी वैयक्तिक परामर्श से लेकर सामूहिक परिचर्चा का सहारा लिया जाता है। इस प्रकार के आपातकालीन उपाय एक तरह से निवारण( Preventive) उपाय होते है। PTSD के उपचार में विभिन्न तरह के चिंता-रोधी औषध तथा विभिन्न प्रकार के विषाद-विरोधी औषध का उपयोग किया जाता है।

मनोचिकित्सकों ने इस विकृति के उपचार हेतु कुछ विशेष सुझाव दिया है। जिन्हे निम्नक्रमानुसार उपयोग किया जा सकता है।

- क्लायंट के साथ विश्वसनीय संबंध कायम करना।
- मनसिक आघात से निबटने की प्रक्रियाओं के बारे में क्लायंट को शिक्षा देना।
- मानसिक आघात को पुनः अनुभव करने का साहस उत्पन्न करना।
- क्लायंट के अनुभवों में मानसिक आघात से संबद्ध अनुभवो को समन्वित करना।

उपरोक्त क्रम को अपनाकर उपचार करने पर काफी सफलता मिलती है।

## 7.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

- . दुश्चिंता विकृति के मुख्य लक्षण कौन से हैं?
- . DSM का पूरा नाम क्या है?
- . DSM का चतुर्थ संस्करण किस सन् में प्रकाशित हुआ ?
- . DSM के अनुसार दुश्चिंता विकृति के कितने प्रकार हैं ?
- . भीषिका विकृति में दौरै पड़ने की गति कैसी होती है ?
- . दुर्भीति विकृति की तीन श्रेणियों के नाम को उल्लेखित करें ?
- . दुर्भीति विकृति के दो कारण बताइयें ?
- . मनोग्रस्ति-बाध्यता से पीड़ित रोगियों का प्रतिशत कितना है।
- . मनोग्रस्ति बाध्यता के दो कारण बताइये ?
- . टोपेकटामी चिकित्सा क्या है ?
- . दुश्चिंता विकृति के तीन कारण कौन-कौन से हैं?
- . दुश्चिंता विकृति के उपचार में कौन कौन सी विधियाँ सहायक हैं?

## 7.13 सारांश

दुश्चिंता विकृति के उत्पन्न होने के लिए व्यक्ति की व्यक्तिगत समस्याएँ उत्तरदायी होती हैं। व्यक्ति अपनी जीवन की अनेकों समस्याओं व विपदाओं के कारण एक ही ऐसी परिस्थिति में फँस जाता है जो उसमें दुश्चिंता उत्पन्न कर देती है जिसके कारण व्यक्ति अपने वातावरण के साथ समायोजन नहीं कर पाता है जिससे उसका व्यवहार कुसमायोजित हो जाता है। इस कुसमायोजित व्यवहार के कारण व्यक्ति में दुश्चिंता के लक्षण उत्पन्न होते देखे जाते हैं। दुश्चिंता विकृति के छः प्रकार होते हैं। भीषिका विकृति, दुर्भीति विकृति सामान्यीकृत दुश्चिंता विकृति मनोग्रस्तता बाध्यता विकृति, उत्तर अभितीय तनाव विकृति, तीक्ष्ण प्रतिबल विकृति भीषिका विकृति से पीड़ित व्यक्ति को अत्यधिक तीव्र दौरै पड़ते हैं। जिसके कारण व्यक्ति को हृदय गति आसामान्य हो जाती है, सांस थमने लगती है, चक्कर आना लगते हैं। रोगी को उपचार देने के पश्चात् ये दौरै सामान्य होने लगते हैं। दुर्भीति विकृति के अर्न्तगत रोगी को किसी वस्तु परिस्थिति व सार्वजनिक स्थानों पर जाने से असंगत डर लगता है। दुर्भीति विकृति के कारण रोगी वातावरण में घटने वाली घटनाओं से भयभीत रहता है। दुर्भीति विकृति के उत्पन्न होने के कई कारण होते हैं जैसे अनुकूलन भयप्रद आवेगों के विरुद्ध सुरक्षा, दमित अर्न्तद्धन्द प्रतिगामी व्यवहार आदि।

मनोग्रस्ति-बाध्यता में रोगी न चाहते हुए भी ऐसे कार्यों को करने के लिए विवश हो जाता है। जिनको वह करना नहीं चाहता है। इन कार्यों को करते समय जो न करने की इच्छा जागृत होती है इसे बाध्यता की प्रतिक्रिया कहते हैं।

मनोग्रस्ति-बाध्यता के कारण निम्नलिखित हैं जैसे दामित संवेगात्मक अनुभव, काम संबंधी प्रबल तनाव, दमित इच्छाओं के विस्फोट से रक्षा, आत्म अवमूल्यन और अपराध भावना, विचार व व्यवहार का स्थिरीकरण, पाप व अपराध के लिए अचेतन स्वदण्डन, तनाव और दुश्चिंता विपत्तियों से भय, अत्यधिक कठोर व दोषपूर्ण सामाजीकरण का प्रभाव आदि।

उत्तर अभिघात प्रतिबल विकृति में रोगी को अत्यधिक, घातक व विपत्ति जनक परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है इसमें रोगी की किसी व्यक्ति की मृत्यु व बीमारियों जैसी घटनाओं का सामना करना पड़ता है।

#### 7.14 स्वमूल्यांकन प्रश्न के उत्तर

1. दुश्चिंता विकृति के मुख्य लक्षण आशंका, भय, डर, चिंता आदि होते हैं।
2. डी0एस0एम0 का पूरा नाम डायनगोस्टिक एण्ड स्टैटिस्टिकल मैनुअल आफ मेन्टल डिसऑर्डर है।
3. डी0एस0एम0 के अनुसार दुश्चिंता विकृति के छः प्रकार हैं।
4. डी0एस0एम0 का चतुर्थ संस्करण 1994 में प्रकाशित हुआ।
5. भीषिका विकृति में दौरे पड़ने की गति तीव्र होती है।
6. दुर्भीति विकृति के तीन श्रेणिया के नाम निम्नलिखित हैं। एगोराफोबिया, सामाजिक दुर्भीति तथा विशिष्ट दुर्भीति।
7. दुर्भीति विकृति के दो कारण दमित अन्तर्द्वन्द्व तथा अनुकूलन।
8. मनोग्रस्ति बाध्यता से पीड़ित रोगियों का प्रतिशत असामान्य रोगियों में 4 से 20 प्रतिशत है।
9. मनोग्रस्ति-बाध्यता के दो कारण, 1. तनाव एवं दुश्चिंता विपत्तियों से भय। 2. कठोर एवं दोषपूर्ण सामाजीकरण।
10. टोपेक्वामी चिकित्सा का तात्पर्य यह है कि इनमें मस्तिष्क के विशेष अंग को विच्छेदित करके बाहर निकाल दिया जाता है जिसका संबंध मनोग्रस्ति विचार से होता है।
11. दुश्चिंता विकृति के तीन कारण निम्नलिखित हैं। 1. जैविक कारक 2. मनोवैज्ञानिक कारक सामाजिक-सांस्कृतिक कारक।
12. दुश्चिंता विकृति में वैयक्तिक चिकित्सा, व्यवहारात्मक चिकित्सा, बहुमाडल चिकित्सा का उपयोग किया जाता है।

---

### 7.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

---

- . Coleman, J.C. (1976) *Abnormal Psychology & Modern Life*, Taraporevala
- . Davidson & Neale (1974) *Abnormal Psychology*, John Wiley
- . Kapil, H.K. (2001) अपसामान्य मनोविज्ञान, भार्गव प्रकाशन, आगरा
- . मखीजा और मरखीजा (2001) पसामान्य मनोविज्ञान, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन आगरा।
- . सिंह ए.के. (2009) आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, बनारसी दास, दिल्ली.

---

### 7.16 निबन्धात्मक प्रश्न

---

1. दुश्चिंता विकृति से क्या तात्पर्य है दुश्चिंता विकृति के कारणों की विवेचना कीजिए ?
2. दुश्चिंता विकृति के प्रकारों का वर्णन कीजिए व उपचारों की व्याख्या प्रस्तुत कीजिए ?
3. दुर्भीति विकृति से क्या तात्पर्य है। दुर्भीति विकृति के कारणों व उपचारों का वर्णन कीजिए ?
4. मनोग्रस्ति-बाध्यता से क्या अर्थ है इनके कारणों सहित उपचार की विवेचना कीजिए ?
5. उत्तर अभिधात तनाव विकृति के कौन-कौन से कारण हैं इसकी उपचार प्रविधि का वर्णन कीजिए।

**इकाई 8. मनोविदलता: अर्थ, लक्षण एवं प्रकार; स्थिर-व्यामोही विकृतियाँ एवं व्यामोही विकृतियाँ, स्थिर-व्यामोह के लक्षण, हेतुकी एवं उपचार (Schizophrenia: Meaning and Symptoms and Types; Paranoid and Delusional Disorders:- Symptoms, Etiology and Treatment)**

### इकाई संरचना

- 8.1 प्रस्तावना।
- 8.2 उद्देश्य ।
- 8.3 मनोविदलता।
  - 8.3 मनोविदलता का अर्थ।
    - 8.3.1 मनोविदलता के लक्षण।
    - 8.3.3 मनोविदलता के प्रकार।
    - 8.3.4 मनोविदलता के कारण।
    - 8.3.5 मनोविदलता की उपचार प्रक्रिया।
    - 8.3.6 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न।
- 8.4 व्यामोह
  - 8.4 व्यामोह विकृति का अर्थ।
    - 8.4.1 व्यामोह विकृति के लक्षण।
    - 8.4.2 व्यामोह के प्रकार।
    - 8.4.3 व्यामोह के कारण।
    - 8.4.4 व्यामोह प्रतिक्रिया से प्रकार।
    - 8.4.5 व्यामोह की उपचार प्रक्रिया।
    - 8.4.6 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न।
- 8.5 सारांश
- 8.6 शब्दावली
- 8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 8.9 निबन्धात्मक प्रश्न

## 8.1 प्रस्तावना

मनोविदलता तथा व्यामोह दो ऐसे असामान्य मनोविज्ञान से संबंधित मनस्ताप है जो व्यक्ति के व्यवहारो को प्रभावित करते है। असामान्य मनोविज्ञान में इन दोनो ही विकारों की पूर्णत विवेचना की गई है।

मनोविदलता तथा व्यामोह जैसे रोग मनोस्तापों में सर्वोपरि रोग है, मनोविदलता एक बहुत ही अति गम्भीर जटिल, क्षतिजनक, विघटनकारी भयानक मानसिक रोग है। इस मानसिक रोग से व्यक्ति के व्यक्तित्व में विघटन उत्पन्न हो जाता है। यह व्यक्ति के व्यवहार के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं जैसे ज्ञानात्मक, क्रियात्मक भावात्मक व्यवहारात्मक पक्षों को प्रभावित करता है। जिससे व्यक्ति के व्यवहारों में विघटन आ जाता है। इस रोग से व्यक्ति में मानसिक संवेगात्मक विघटन तीव्र गति से होना प्रारम्भ हो जाते है।

मनोविदलता तथा व्यामोह दोनो ही मनस्तापों का संबंध चिन्तन प्रक्रिया से होता है। मनोविदलता में रोगी वास्तविक जीवन से हटकर काल्पनिक दुनिया में डूबने लगता है तथा व्यामोह से पीडित व्यक्ति में भ्रमासक्तियों की प्रतिक्रियाएँ देखने को मिलती है इसमें व्यक्ति का सामाजिक, आर्थिक जीवन व पास्परिक संबंध पूर्णत विकृति जन्य होने लगते है। ऐसे व्यक्ति मिथ्या धारणाओं पर अधिक विश्वास करते है और भ्रमासक्तियों से ग्रसित रहते है। इस रोग से व्यक्ति में अंहकारी और स्वार्थी हाने की भावना उत्पन्न हो जाती है।

## 8.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत हम मनोविदलता तथा व्यामोहों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान पायेंगे कि -

1. मनोविदलता का अर्थ क्या है
2. मनोविदलता के लक्षण
3. मनोविदलता के प्रकार
4. मनोविदलता के कारण
5. मनोविदलता का उपचार
6. व्यामोह विकृति के क्या कारण है
7. व्यामोह के प्रकार
8. व्यामोह विकृति के कारक
9. व्यामोह विकृति के उपचार।

### 8.3 मनोविदलता का अर्थ

मनोविदलता असाध्य मानसिक रोग है। जब व्यक्ति इस रोग के चूगल में फँस जाता है तो उसके लिए सामान्य स्वास्थ्य प्राप्त करना अत्यन्त जटिल हो जाता है।

सन् 1860 में बेल्जियम के मनोचिकित्सक ने 13 वर्षीय बालक का उदाहरण प्रस्तुत किया जिसमें यह बालक पहले अत्यधिक कुशाग्र बुद्धि वाला था परन्तु कुछ समय बाद उसकी रुचि पढ़ने में नहीं रही। वह दूसरों से खिंचा-खिंचा सा रहने लगा, अल्पभाषी हो गया, वह बिना संकोच के अपने पिता को मारने की बात करने लगा, बालक की इस तरह की स्थिति को मोरेल ने मानसिक हास कहा। क्रेपलिन ने इसे असामयिक मनोहास या डिमेन्सिया प्राईकोक्स (Dementia Praecox) का नाम दिया। 1911 में स्विस मनोचिकित्सक ब्लूलर ने इस रोग का नाम शिजोफेनिया रखा, जिसका अर्थ व्यक्ति के व्यक्तित्व में दरार पड़ना है या फिर खण्डित मन अथवा अत्याधिक विघटित व विभक्त व्यक्तित्व होता है।

मनोविदलता की स्थिति में व्यक्ति सांसारिक वास्तविकताओं से दूर हो जाता है और अनेकों मिथ्या विभ्रमों में लिप्त हो जाता है।

कोलमैन के शब्दों में मनोविदलता एक ऐसा विवरणात्मक शब्द है जिससे मानस्तापी विकारों के एक ऐसे समूह का बोध होता है जिससे व्यापक रूप से विकृतरूपों, प्रत्यक्षण, चिन्तन तथा संवेग के विघटन तथा खण्डन के साथ साथ सामाजिक अन्तःक्रिया से पलायन देखने में आता है।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि इससे व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों में विघटन उत्पन्न होता है, जिससे व्यक्ति का जीवन अस्त व्यस्त हो जाता है।

आयु की दृष्टि से यह रोग सभी उम्र के व्यक्तियों में पाया जाता है। इनमें से 75 प्रतिशत रोग प्रायः 15 वर्ष की आयु से लेकर 45 वर्ष की आयु तक के ही व्यक्ति के ही व्यक्ति रहते हैं। यह रोग स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में अधिक होता है यह नगर निवासियों तथा अविवाहित व्यक्तियों में अत्यधिक होता है।

#### 8.3.1 मनोविदलता के लक्षण:-

मनोविदलता एक एकल मनोरोग न होकर विभिन्न विकारों का सामूहिक रूप है मनोविदलता को लक्षणों का मंडल भी कहा जाता है।

##### 1. जीवन की वास्तविकता से पलायन:-

मनोविदलन की इस स्थिति में व्यक्ति अपने वास्तविक जीवन से दूर हटने का प्रयास करने लगता है। वह अपने आस पास रहने वाले लोगों से दूर होने लगता है व उनमें रुचि कम लेता है। उसे किसी भी बाहरी गतिविधि का कोई ज्ञान नहीं रहता है और वह धीरे धीरे सांसारिक सुखों से मुक्ति प्राप्त कर कल्पना की दुनिया में विलीन होने लगता है।

##### 2. स्वलीनता:-

मनोविदलता का रोगी बाह्य जगत से दूर होकर अपनी छोटी से स्वप्नमयी दुनिया बना लेता है और वह उसी में बना रहना चाहता है और उसी के अनुसार कार्य करता है ऐसी स्थिति में यदि रोगी को किसी भी प्रकार की क्षति होती है तो उसे, उस बात का अनुभव नहीं होता है या फिर कम होता है।

### 3. व्यापक मानसिक ह्रास तथा विघटन:-

मनोविदलता के रोगी में जब व्यक्तित्व का विघटन प्रारम्भ होता है तब व्यक्ति की मानसिक शक्तियों तथा उसके द्वारा अर्जित कुशलताओं का हास व विघटन तेजी से होने लगाता है जिससे व्यक्ति के व्यवहार में जैसे चिन्तन, प्रत्यक्षण, अवधान व साहचर्य संबंधी अनेक विकार प्रदर्शित होने लगते हैं।

### 4. व्यवहार की विसंगतियाँ:-

मनोविदलता के रोगी के व्यवहार में अनेको विकृतियाँ आने लगती हैं। इसमें रोगी को अपने बारे में कुछ ज्ञान नहीं होता है वह सब कुछ भूलने लगता है कि वह कौन है तथा क्या करता है। वह स्वयं को काफी धनवान समझने लगता है, तो वह सेठ की तरह व्यवहार करने लगता है और कभी-कभी वह अपने आप को गरीब समझने लगता है और भिखारियों जैसा व्यवहार करने लगता है। उसकी सोचने समझने की शक्ति क्षीण होने लगती है।

### 5. भ्रमासक्तियाँ और विभ्रम:-

इसमें रोगियों में अनेको प्रकार के विभ्रम पैदा हो जाते हैं जिससे उसे अपने जीवन में समयोजन बनाये रखने में कठिनाई उत्पन्न होने लगती है वह जीवन की वास्तविकता को समझने का प्रयास नहीं करता है और वह अपनी मिथ्यापूर्ण बातों को ही सच समझता है कभी कभी उसे ऐसा भी लगने लगता है कि मानो सभी उसके दुश्मन हैं और उसके विरुद्ध कोई षडयन्त्र बना रहे है। ऐसी ही भ्रमासक्तियों तथा विभ्रमों से व्यक्ति अन्य व्यक्तियों को अपना दुश्मन बना लेता है।

### 6. भाषा संबंधी विकार:-

मनोविदलता के रोगी में भाषा से संबंधी विकार उत्पन्न हो जाते हैं। क्योंकि मनोविदलता के रोगी होने के कारण उसकी सोचने समझने की शक्ति कम हो जाती है जिससे वह समझ नहीं पाता है कि वह क्या बोल रहा है। वह मनगढन्त कहानी बनाने लगता है। शब्दों का उच्चारण भी सही ढंग से करने में सफल नहीं हो पाता है। भाषा का सही प्रकार से उपयोग न होने पर उसके व्यवहार अमाननीय व अपमान जनक हो जाता है।

### 7. संवेगात्मक विमुखता तथा अनुपयुक्तता:-

ऐसे रोगियों की संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं का स्वरूप उदासीनता, विमुखता तथा अनुपयुक्तता का ही होता है। ऐसे व्यक्तियों को अपने वास्तविक जीवन से प्रेम नहीं रहता है उसका व्यवहार विच्छेदित हो जाता है, उसका अपने आपसी संबंधो पारिवारिक व व्यक्तिगत संबंधो के प्रति लगाव कम होने लगता है और वह अपने संबंधो को खत्म करने का प्रयास करने लगता है। जिससे उसमें उदासी की भावना उत्पन्न हो जाती है। उसका व्यवहार विचलित हो जाता है। वह सुखद परिस्थिति में भी दुख अनुभव करने लगता है और अति विचित्र प्रतिक्रियाएँ करने लगता है।

### 8.3.2. मनोविदलता के प्रकार –

अमेरिकन साइकियाट्रिक एसोसिएशन के अनुसार मनोविदलता के निम्नलिखित प्रकार होते हैं।

#### 1. सरल प्रारूप मनोविदलता:-

मनोविदलता के सरल प्रारूप के अन्तर्गत इसके लक्षण धीरे धीरे तथ शनै शनै क्रमिक रूप से उत्पन्न तथा विकसित होते हैं। इस प्रकार के मनोविदलता के रोगी की रुचियाँ, इच्छाएँ सकुचित होती हैं जो धीरे धीरे खत्म होने लगती हैं। ऐसे व्यक्ति अत्यधिक उदासीन रहने लगते हैं, जिससे उनके सामाजिक संबंध भी टूटने लगते हैं रोगी अपनी ही दुनिया में खोया रहने लगता है। उसे अपने जीवन से मोह कम होने लगता है। उसे अच्छे बुरे तक का भी ज्ञान नहीं रहता है। यहाँ तक कि उसे अपनी सफलता तथा असफलता की कोई परवाह नहीं होती है वह किसी भी कार्य को पूरा करने में असमर्थ होने लगता है। इस प्रकार के रोगी अपने बाल्यकाल में तो ठीक होते हैं और व्यवहार भी ठीक प्रकार से करते हैं। परन्तु धीरे धीरे उनके लक्षण बदलने लगते हैं। ऐसे व्यक्तियों को घर पर रखकर सुधारा जा सकता है। परन्तु कुछ रोगियों को कभी-कभी मानसिक चिकित्सालायों तथा सुधार गृहों में रखने की आवश्यकता होती है। इसी से संबंधित एक अध्ययन (ओ0 केन्ट 1948) में दर्शाया गया कि 64 रोगियों पर किया गया इस रोग के घटित होने का औसत आयु विस्तार 17-24 वर्ष था इन रोगियों के व्यवहार संबंधी प्रतिक्रियाएँ घटित होने का निम्न प्रतिशत था।

व्यवहार का प्रकार	घटित होने का प्रतिशत
आक्रमक व्यवहार	65.0
व्यामोह और/या विभ्रम	42.9
लैंगिक या मद्यपान संबंधी व्यवहार	39.07
अत्यन्त विघटित व्यवहार	34.09
अति स्वास्थ्य संबंधी चिन्ताएँ	30.2
संसार से अतिरिंजित विमुखता	22.3

इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि रोगी में आक्रमक व्यवहार की अभिव्यक्ति अधिक होती है।

एक नवयुवती हाईस्कूल पास करने के दो वर्ष उपरान्त पढ़ने के उद्देश्य से कालेज गई वह कालेज में चिन्तित एवं उदास रहती थी तथा व्यवहार विचित्र था। वह अपना कोई कार्य ठीक प्रकार से नहीं कर पाती थी। उसके अनुसार जब वह 16 वर्ष की थी, तब उसका परिचय एक नवयुवक से हुआ जिसने उसे घर पहुँचाया तथा विदाई लेते समय चुम्बन ले लिया। वह चाहती थी कि वह नवयुवक पुनः लौट आवे और उससे मिले। यह सरल प्रारूप मनोविदलता का स्पष्ट उदाहरण है।

#### 2. युवा विदलन (हीवी फ्रैनिक ) प्रारूप:-

हीवी फ्रैनिक प्रारूप का सर्वप्रथम वर्णन सन् 1871 में जर्मनी मनोरोग चिकित्सक एडवल्ड हैकर ने किया। हीवीफ्रैनिया शब्द ग्रीक भाषा से लिया गया है जिसका अर्थ है युवा मना। इस प्रकार की मनोविदलता कम आयु वालों को होती है। ऐसे व्यक्ति अजीब तथा विचित्र प्रकार व्यवहार करते हैं। ऐसे व्यक्तियों का व्यवहार सामान्य व्यक्तियों से भिन्न होता है जो स्वयं के लिए भी घातक हो जाता है। इस प्रकार के रोगी के प्रमुख लक्षण सर्वेगात्मक अस्थिरता, विभ्रम, भ्रान्ति व चिन्तन, वाकदोष तथा विघटित व्यक्तित्व होता है। जैसे-जैसे यह रोग बढ़ता जाता है रोगी में एक सर्वेगात्मक उदासीनता आनी प्रारम्भ हो जाती है।

इस प्रकार की अवस्था में रोगी को अत्यधिक विभ्रम घेर लेते हैं जिससे उसमें भ्रान्ति होना उत्पन्न हो जाती है रोगी को कभी कभी ऐसा लगने लगता है जैसे उसे किसी जहरीले कीड़े ने काट लिया है। जिससे उसके पेट के अन्दर विषाक्त गैस भरी रहती है। यदि वह मुँह खोलेगा तो लोग मर जायेंगे। इस प्रकार के रोगी का व्यवहार एक बच्चे के समान हो जाता है। ऐसी भ्रमासक्तियों के अनेक रूप होते हैं। धार्मिक भ्रमासक्त के कारण ऐसी स्थिति में रोगी अपने को एक दैविय अवतार ही समझने लगता है वह कभी कभी स्वयं को धार्मिक सुधार के ठेकेदार ही समझने लगता है।

### 3. कैटोटोनिक प्रारूप मनोविदलता (Catatonic Type):-

कैटोटोनिक मनोविदलता का सर्वप्रथम वर्णन जर्मनी चिकित्सक कार्ल कहलबॉम ने 1868, में किया था। इस प्रकार की मनोविदलता रोगी में अचानक ही तथा विचित्र ढंग से देखने को मिलती है। ऐसे रोगी वास्तविकता से बहुत दूर होते हैं। इस प्रकार की मनोविदलता की दो स्थितियाँ होती हैं -जडिमा अवस्था तथा उत्तेजना अवस्था। जडिमा अवस्था में रोगी अत्यन्त शान्त प्रकृति का हो जाता है जैसे उसकी चैतन्यता समाप्त हो गई हो। ऐसे रोगी एक ही स्थान पर कई घण्टों तथा कई दिनों तक बैठे रहते हैं जिससे उसके हाथ पैर नीले पड़ जाते हैं व सूजन आ जाती है। ऐसी स्थिति में रोगी के पेशीय तन्त्र में कठोरता तथा संवेदन हीनता आ जाती है। जिसके कारण यदि उसे उसको क्षति भी पहुँचाये जाये तो वह अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं कर पाता है उसे अपनी शारीरिक प्रतिक्रियाओं का भी ज्ञान नहीं रहता है ऐसी स्थिति में रोगी को कभी कभी लोग पागल भी कह देते हैं। ऐसे रोगी किसी से ज्यादा बोलना भी नहीं पसंद करते हैं।

#### उत्तेजना अवस्था:-

उत्तेजना अवस्था जडिमा अवस्था के विपरित होती है। इस अवस्था में रोगी अत्यधिक सक्रिय हो जाता है और जोर जोर से चीखने चिल्लाने लगता है वह स्वयं को हानि भी पहुँचा सकता है आत्महत्या भी कर सकता है तथा दूसरों की हत्या का प्रयास भी कर सकता है। वह अपने साथ-साथ दूसरों के लिए भी हानिकारक हो सकता है। मोरसिन (1973) ने 110 रोगियों के अध्ययन में देखा कि जडिमा अवस्था की प्रधानता वाले रोगियों के अध्ययन की संख्या सर्वाधिक होता है। उदाहरण: एक 19 वर्षीय युवती जो दो वर्ष पूर्व ही विधवा हो गई थी कुछ समय बाद उसने भोजन करना बन्द कर दिया। वह अवाजे सुनती थी। जब उसे चिकित्सालय में भरती कर दिया गया तब भी खाना नहीं खाती थी और अनेकों अजीबों गरीब हरकतें करती रहती थी। कभी कभी यह कहती थी कि

क्या मैंने आराम किया था। डाक्टर साहब मुझे क्षमा कर दीजिए। उसे वास्तविक दुनिया से कोई संबंध नहीं होता वह तो सदैव अपनी दुनिया में विचरण किया करती थी।

#### 4. व्यामोह (पैरानायड) प्रारूप मनोविदलता:-

इस प्रकार के रोगियों की संख्या अन्य मनोविदलता प्रारूप की तुलना में सर्वाधिक होती है। इस प्रकार के रोगियों में लक्षण संवेगात्मक अस्थिरता उदासीनता, संशय, भ्रमासक्तियाँ आदि होती है। इस रोग से ग्रसित व्यक्ति अत्यधिक शक्की प्रवृत्ति के होते हैं उनके अन्दर हमेशा यह भय सदैव बना रहता है कि कोई उन्हें मारने की कोशिश कर रहा है या उसके खिलाफ पंडयन्त्र रच रहा है। रोगी यह भी सोचने लगता है कि अन्य लोग उसकी निन्दा कर रहे हैं। मनोविदलता के रोगियों के व्यामोह अतार्किक एवं परिवर्तनशील होते हैं। वही पैरानोईया के रोगियों के व्यामोह तार्किक व स्थायी होते हैं। व्यामोह प्रारूप मनोविदलता का लक्षण व्यक्ति के जीवन की लगभग 35 वर्ष की अवस्था में उभरता है। उत्पीड़न भ्रमासक्ति (Delusion of Persecution) से ग्रसित रोगी को लगाता है कि उसके सगे संबंधी उसके दुश्मन हो गये हैं और वे उसे क्षति पहुँचाने को ताक में हमेशा रहते हैं, जब कि महानता भ्रमासक्ति (Delusion of Grandeur) से ग्रसित रोगी को ऐसा लगता है कि लोग उसकी महानता से जलते हैं क्योंकि वह एक महान अभिनेता या नेता है। इसी कारण से लोग उसे विष देकर मारना चाहते हैं तथा उसकी प्रत्येक गतिविधियों के बारे में विद्युतीय उपकरण के माध्यम से जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। उपरोक्त भ्रमासक्तियों के अतिरिक्त रोगी को श्रृवण, दृष्टि, त्वचा आदि से संबंधित विभ्रम भी होते हैं।

#### 5. बाल्यकालीन मनोविदलता प्रारूप (Childhood Type Schizophrenia):-

इस प्रकार की मनोविदलता का जन्म वाल्यावस्था से ही आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार के रोगियों में मुख्य लक्षण, लोगो से दूर भागना, विचार प्रक्रिया का विघटित होना, अनियंत्रित क्रम व आक्रामक प्रवाहो का होना, पारस्परिक संबंधो का अभाव, चिन्तन का विघटन, असंगत व्यवहार, भाषा संबंधी विकार जैसे धीरे धीरे बोलना और शब्दो का विरूपण और मनोग्रस्ता आदि। इसमें बालको का विकास अनियमित ओर मन्द गति से होता है। वास्तविकता का ज्ञान विकसित नहीं हो पाता तथा खाने, सोने आदि की आदतो में विध्न उत्पन्न हो जाता है। गोल्डफोर्ड (Goldford) (1961) के अनुसार इस रोग का मुख्य कारण बालक के मस्तिष्क का आँगिक रूप से क्षतिग्रस्त होना होता है।

#### 6. तीव्र अविभेदित प्रारूप मनोविदलन (Acute Undifferentiated type) :-

इस प्रारूप में मनोविदलता के लक्षण अचानक उत्पन्न हो जाते हैं जिसका कोई स्पष्ट कारण नहीं होता है, परन्तु कुछ समय बाद पुन उत्पन्न भी हो जाते हैं यह प्रारूप मनोविदलता की प्रारम्भिक अवस्था होती है। यदि इस रोग का समय से उपचार नहीं हो पाता, तब यह मनोविदलता के किसी एक मुख्य रूप में परिवर्तित हो जाता है।

#### 7. दीर्घकालिक अविभेदित प्रारूप मनोविदलन:-

दीर्घ कालिक प्रारूप के लक्षणों में विविधता होती है और ये लम्बे समय तक बने रहते हैं। मनोविदलता के लक्षण होते हुए भी रोगी किसी न किसी सीमा तक अपना समायोजन करने में सफल और जीविका को चलाता रहता है।

इसके अर्न्तगत सम्बन्धित रोगी के व्यक्तित्व में अनेक लक्षण जैसे- बौद्धिक ह्रास संवेगात्मक विकारो व व्यवहारगत विचलनों के लक्षण दिखायी देते है।

### 8. भाव प्रारूप मनोविदलता:-

इस प्रारूप मनोविदलता संबंधी लक्षणों के साथ साथ रोगी मे उल्लास व आवसाद संबंधी लक्षण देखने में आते है इस प्रारूप से पीड़ित व्यक्ति कभी उल्लास व उन्मादी लक्षण को दर्शाता हैं तथा साथ ही साथ भ्रमासक्तियाँ तथा विभ्रमों के लक्षण भी देखने को मिलते है।

### 9. अवशिष्ट मनोविदलता:-

इसमें वे रोगी आते है जो चिकित्सालयों के उपचार के बाद काफी ठीक हो जाते है परन्तु उनमें मनोविदलता के लक्षणों के कुछ अवशेष विद्यमान होते है।

#### 8.3.3. मनोविदलता के कारण:-

मनोविदलता के कारणो को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है जैविक कारक, मनोवैज्ञानिक कारक, एवं सामाजिक कारक।

#### 1. जैविक कारक:-

जैविक कारक के अर्न्तगत निम्न तत्व मुख्य रूप से आते है।

##### अ. आनुवंशिकता :-

कालमैन (1953) के अनुसार एक व्यक्ति जितना अधिक मनोविदलता के रोगी से रक्त के अधार पर संबंधित होगा उसमें मनोविदलता के रोग होने की सम्भावना उतनी ही अधिक होगी। समरूप ; प्कमदजपबंस जूपदद्ध यमज में यह सम्भावना 86.2 प्रतिशत है जबकि सगे भाई बहनों में यह केवल 10.2 प्रतिशत है।

##### ब. तन्त्रिका क्रियावृत्ति (Neurophysiology):-

आनुवांशिकता और पर्यावरण संबंधी कारको से प्रभावित व्यक्तियों के जीवन में जब तीव्र प्रतिबल उत्पन्न होता है तो उनके मस्तिष्क की तंत्रिका क्रियात्मक प्रक्रियाएँ प्रभावित हो जाती है। तुलाने (1954) के अनुसार जब स्वायत तंत्रिका तन्त्र के कार्य विकृत हो जाते है, तब उसके उच्चतर मानसिक कार्यों पर भी दूषित प्रभाव पडते देखा जाता है। होगलैण्ड (1954) ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह पाया कि एड्रीनल कार्टेक्स मनोविदलता के रोगियों में प्रतिबलक स्थितियों के सम्मुख अल्प मात्रा में ही कार्य करता है। जब कि सेक्लर (1952) के अनुसार (Adrenal cortex) की अत्यधिक क्रियाशीलता के कारण ही मनोविदलता के लक्षण उत्पन्न् होते देखे जाते है।

##### स. शरीर संरचना (Body Constitution):-

शरीर संरचना के सम्बन्ध में केशमर (1925) के अनुसार दुर्बलकाय (Aesthetic), सुडौलकाय (Athletic), लोग मनोविदलता से अधिक पीड़ित होते हैं। जब कि शैल्डन (1954) के अनुसार लम्बाकृतिक (Ectomorphic) तथा मध्याकृतिक (Mesomorphic) लोग अन्य मनस्तापों की अपेक्षकृत मनोविदलन से अधिक पीड़ित होते हैं। डेविडसन (1957) के अनुसार दुबले व पतले व्यक्तियों में दुश्चिन्ता और संवेदनशीलता अधिक होती है जिसके परिणाम स्वरूप वे सामान्य सामाजिक अन्तःक्रिया से दूर रहते हैं जो मनोविदलन उत्पन्न होने का प्रमुख कारण है।

## 2. मनोवैज्ञानिक कारण (Psychological Causes):-

कैपलिन तथा ब्लूलर ने मनोविदलता के उत्पन्न होने में मनोवैज्ञानिक कारणों पर बल दिया है-

अ. विकृतिजनक पारिवारिक प्रतिरूप:-

मनोविदलता की उत्पत्ति में उसके पारिवारिक पृष्ठभूमि का महत्वपूर्ण स्थान होता है। रोगी अपने परिवार से ही अनेक दोषपूर्ण अभिवृत्तियों, प्रतिक्रियाओं, दोषपूर्ण समाजिक कारण को सीखता है। माता पिता के अलावा परिवार के अन्य सदस्य भी व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करते हैं। फ्रोमरिकमान (Fromm-Reichmann 1948) ने मनोविदलता के रोगी की माँ के लिए विशेष पद जैसे मनोविदलतायी माँ (Schizophrenic mother) का प्रयोग किया ऐसी माताएँ अपने बच्चों की आवश्यकताओं के प्रति उदासीन, दंभ एवं अप्रभावशील आदि होती हैं। फ्रोमरिकमान के अनुसार ऐसी माताएँ ऊपर से अपने बच्चों के प्रति समर्पित दिखती हैं परन्तु सचमुच में वे ऐसा नहीं होती हैं और बच्चों का उपयोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए करती हैं। वे अपने बच्चों के प्रति अति सुरक्षात्मक एवं तिरस्कारात्मक मनोवृत्ति दिखाती हैं जिसके परिणाम स्वरूप बच्चों में मनोविदलता उत्पन्न होने की एक मजबूत पृष्ठभूमि तैयार होती है। वारिंग एवं रिक्स (1965) के अध्ययन के परिणाम में यह पाया गया कि मनोविदलता के रोगियों की माताएँ अत्याधिक भज्जालू, अपर्याप्त, प्रत्याहारी (Withdrawn), चिंतित शक्की एवं असंगत की जब कि सामान्य व्यक्तियों की माताओं में बहुत सारे वैसे गुण पाये गये जिसे फ्रोम रिभमान ने मनोविदलतायी माँ का गुण बतलाया था।

ब. आरम्भिक मानसिक आघात और वचन (Early psychic Trauma and Deprivation )-

मनोविदलन के रोगी अपनी वाल्यावस्था में अनेक तरह के कष्टकारी अनुभवों, दुखद, मानसिक आघात सह चुके होते हैं जिसमें उनका मानसिक गठन प्रायः अति निर्बल, संवेदनशील, पराजित तथा अपरिपक्व रह जाता है। ऐसी स्थिति में रोगी कई विकारों से ग्रस्त हो जाता है।

स. अत्यधिक प्रतिबल:-

मनोविदलन के उत्पन्न होने का एक कारण तीव्र प्रतिबल भी हो सकता है। तीव्र प्रतिबल की स्थिति में रोगी अपना मानसिक सन्तुलन खोने लगता है। किशोरवस्था और आरम्भिक प्रौढ़ावस्था के प्रतिबल का सम्बन्ध अधीनता, स्वाधीनता, आक्रमकता और कामुकता आदि से होता है। माता पिता द्वारा परस्पर विरोधी मांगें और अवास्तविकपूर्ण आकांक्षा स्तर प्रतिबल को और अधिक बढ़ा देता है। वह सामाजिक सहभागिता से दूर रहने का

प्रयास करता है, परन्तु यह उसका प्रत्यागमन भी उसके प्रतिबल के कम नहीं कर पाता है और वह धीरे धीरे वास्तविक संसार से दूर होने लगता है तथा मनोविदलन का शिकार हो जाता है।

### 3. सामाजिक कारण:-

कैरेन हार्नी ने मनोविदलता का कारण सामाजिक असमायोजन माना है। सामाजिक कारकोमेंगरीबी, वेकारी, असुरक्षा, सामाजिक विद्युतन, गन्दी बस्तियाँ तथा व्यक्तिगत समस्याएँ प्रमुख हैं। हालिगषेड व रेडलिक (1954) ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि मनोविदलता का रोग निम्न सामाजिक, तथा आर्थिक स्तर के व्यक्तियों में अधिक घटित होता है। बड़े बड़े नगरो की झुग्गी - झोपड़ियों में मनोविदलन के रोगी अधिक पाये जाते हैं और उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर की वस्तियों में कम होता है। न्यूयार्क के श्वेत नागरिकों की आपेक्षा नीग्रो नागरिकों में मनोविदलन अधिक पाया जाता है।

### 8.3.4 मनोविदलन का उपचार:-

मनोविदलता के उपचार के लिए प्रशान्तक औषधियों और ऊर्जावर्द्धक औषधियों का उपयोग किया जाता है। इन औषधियों द्वारा रोगियों की उत्तेजना, चिड़ापन चिन्तन विकार, दुश्चिन्ता घबराहट, तनाव आदि को नियंत्रित किया जाता है। यह औषधिया रोगी का मूड ठीक करने तथा वातावरण में रूचि उत्पन्न करने में सहायक होती है। प्रशान्तक औषधियों की सहायता से रोगी को तनाव मुक्त किया जा सकता है। इन औषधियों का उपयोग करने से व्यक्ति निद्रा की आवस्था में पहुँच जाता है। प्रशान्तक औषधियों के साथ साथ कुछ रोगियों को विद्युत आघात की चिकित्सा भी दी जाती है।

मनोविदलता के रोगियों के उपचार के लिए मुख्यतः आघात चिकित्सा, इन्सुलिन पद्धति, शल्य चिकित्सा, व्यावसायिक चिकित्सा सामाजिक चिकित्सा, मनो सामाजिक चिकित्सा पद्धति का उपयोग किया जाता है।

दीर्घकालिक रोगियों की अपेक्षा तीव्र रोगियों में औषधियों का प्रभाव अधिक पड़ता है। इन औषधियों द्वारा रोगियों की भ्रमासक्तियों और विभ्रमों में कमी आ जाती है। यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि औषधियों के सेवन से केवल ऊपरी लक्षणों का उपचार होता है। रोग के वास्तविक उपचार के लिए मनोचिकित्सा बहुत आवश्यक होता है। मनोचिकित्सा रोगी को इस योग्य बना देती है कि वह अपनी विरूपित अभिवृत्तियों को सही कर सकें और रोगी सामान्य व्यक्तियों की भाँति अपना जीवन व्यतीत कर सकें।

### 8.3.5 स्वःमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. मनोविदलता का अर्थ क्या है ?
2. मनोविदलता को मानसिक ह्रास के रूप में किसने प्रदर्शित किया?
3. मनोविदलता शब्द किस भाषा से लिया गया ?
4. क्रेपलिन ने मनोविदलता को क्या नाम दिया ?

5. ब्लूलर किस देश से संबंधित मनोचिकित्सक था ?
6. मनोविदलता कितने प्रकार का होता है ?

#### 8.4 व्यामोह विकृति का अर्थ:-

व्यामोह विकार से पीड़ित व्यक्तियों में विभिन्न प्रकार की व्यामोह प्रतिक्रियाएँ देखने को मिलती हैं इसमें व्यक्ति अपनी चिन्ता के दमित तीव्र तनाव को भ्रमासक्तियों द्वारा दूर करने का प्रयास करता है। व्यामोह शब्द दो ग्रीक शब्दों से (Para + Nous), मिलकर बना है जिसका अर्थ गलत और मन है यानि कि गलत मन है। प्राचीन काल से ही व्यामोह शब्द का प्रयोग मानसिक रोगों के लिए किया जाता है, हिप्पो क्रेटीज इस शब्द का प्रयोग सभी प्रकार के पागलपन और मानसिक रोगों के लिए करते थे। परन्तु आज के समय में व्यामोह केवल मानसिक रोगी तक ही सीमित हो गया है जिसमें व्यक्ति की मानसिक दशा तो ठीक होती परन्तु उसमें अनेक प्रकार भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं। व्यामोह का प्रमुख लक्षण उसका भ्रमासक्ति तन्त्र होता है जिसमें व्यक्ति को अपने जीवन की वास्तविकता को स्वीकारने के लिए अनेकों विभ्रमों से पीड़ित होता है। व्यामोह की स्थिति में भ्रमासक्तियों का स्वरूप अधिक तार्किक तथा स्थायी होता है।

**कैमरान (1963) के अनुसार:-** इस प्रकार का रोगी तनाव और चिन्ता से बचाव हेतु अस्वीकारीकरण और प्रेक्षणा करता है और फलस्वरूप इन रोगियों में व्यवस्थित व्यामोह के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। व्यामोह से पीड़ित संपूर्ण व्यक्तियों में केवल 1 प्रतिशत लोग ही मानसिक चिकित्सालयों में भर्ती होते हैं अन्य रोगी अपना उचार घर में रहकर ही करवाते हैं व्यामोह से पीड़ित व्यक्तियों की आयु 25 से 65 वर्ष होती है। व्यामोह रोग स्त्री एवं पुरुषों में लगभग बराबर मात्रा में घटित होता है।

#### 8.4.1 व्यामोह विकृति के लक्षण:-

1. व्यामोह विकृति के लक्षण एक व्यक्ति में सहसा ही उभरते नहीं देखे जाते बल्कि इन लक्षणों के उत्पन्न होने का प्रक्रम अति व्यवस्थित एवं दीर्घकालिक होता है। यह रोग रोगी के शैशवकालीन जीवन से संबंधित होता है।
2. इस रोग में रोगी को अपनी अविकसित क्षमताओं के प्रति मिथ्या धारणाओं पर अति अटूट विश्वास होता है वह अपनी मिथ्या धारणाओं को ही सही समझता है जिससे उसमें अहंकारी एवं स्वार्थी होने की भावना उत्पन्न हो जाती है। ऐसे व्यक्तियों का दूसरे व्यक्तियों पर विश्वास बहुत कम होता है और वह दूसरों को संदेह की दृष्टि से देखने लगता है।
3. व्यामोह के रोगी यह भी समझने लगते हैं कि इस संसार में रहने वाले सभी व्यक्ति स्वार्थी, कठोर निष्ठुर व निर्दयी हैं और उसे पीडा व कष्ट पहुंचाना चाहते हैं।
4. व्यामोह के रोगी में यह शंका उत्पन्न हो जाती है कि दूसरे व्यक्ति उसकी महान उपलब्धियों, योग्यताओं और महानता की अलोचना करते हैं व उसके प्रति षडयन्त्र बना रहे हैं उसकी उपलब्धियों की प्रशंसा न करके उससे ईर्ष्या करते हैं।

5. इस रोग से पीड़ित व्यक्ति के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर पर मूलरूप से पास्परिक संबंध भी अत्यधिक संवेदनशील, असंतोषजनक आक्रोश जनक व विकृति जन्य हो जाते हैं।

6. व्यामोह के रोगियों में भ्रमासक्तियों का जाल इतना सुव्यवस्थित, संगठित, तर्कपूर्ण होता है कि रोगी को विश्वास होने लगता है कि वह जो कुछ कह रहा है वही सब सत्य है और इसके अतिरिक्त सब कुछ गलत है।

7. व्यामोह के रोगी की भ्रमासक्तियों का संबंध जायदाद, धन, दौलत, महत्वपूर्ण पद, धार्मिक विश्वासों आदि से संबंधित होता है। उदाहरण: एक बार प्रोफेसर ब्राउन ने सड़क पर खड़े एक सैलानी को अपनी कार में स्थान दे दिया। रास्ते में बातचीत करते हुए सैलानी ने प्रोफेसर ब्राउन को बताया कि वह एक विश्वविद्यालय में अनुसंधानकर्ता है और बेरोजगारी की समस्या पर अनुसंधान कर रहा है प्रो० ब्राउन उस सैलानी की बातों से इतना प्रभावित हुए कि उन्होंने उसे अपनी कक्षा के सामने व्याख्यान करने का निमन्त्रण दिया। जब अनुसंधानकर्ता समय पर नहीं पहुँचा तो उन्होंने उसके विश्वविद्यालय को फोन किया विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने प्रो० को बताया कि इस नाम का कोई व्यक्ति यहाँ कार्य नहीं करता है इस कथन से स्पष्ट होता है कि वह सैलानी व्यामोह का रोगी और महानता भ्रमासक्ति से पीड़ित था।

व्यामोह अस्थायी मनस्पाती प्रायः तात्कालिक रूप से उत्पन्न हो जाती है। रोगी कुष्ठा, दृन्द्ध और दवाब से उत्पन्न प्रतिबल का सामना करने के लिए प्रतिरक्षा क्रिया तन्त्रों के रूप में असंगत भ्रमासक्तियाँ विकसित कर लेता है।

व्यामोह आवस्थी अनुस्तापी प्रतिक्रिया है जो प्रतिबल उपस्थित होने पर उत्पन्न हो जाती है और प्रतिबल के दूर हो जाने पर समाप्त हो जाते हैं।

#### 8.4.2 व्यामोह के सामान्य रूप:-

1. उत्पीड़न संबंधी व्यामोह:-

इस व्यामोह के अन्तर्गत रोगी में यह भ्रमासक्ति बनी रहती है कि उसके पड़ोसी, रिश्तेदार, व्यवसाय आदि से संबंधित व्यक्ति उसकी कुशलता और सफलता को देखकर तरह तरह की बातें बनाते रहते हैं और किसी गलत कार्य में फसा देना चाहते हैं। एक अटूट भ्रमासक्ति बन जाती है जिससे कभी कभी रोगी शत्रुता के विचार से उन पर आक्रमण कर देता है व उनकी हत्या करने का प्रयास करने की कोशिश करता है। इस प्रकार के रोगियों में उत्पीड़न व्यामोह की प्रधानता होती है।

2. रोगों से सम्बंधित व्यामोह:-

इस प्रकार के व्यामोह के रोगियों में यह विश्वास दृढ़ रूप से पाया जाता है कि उसे कोई असाध्य रोग हो गया है। वह यह सोचने लगता है कि उनका स्वास्थ्य गिरता जा रहा है वे रोग के उपचार के लिए अनेकों डाक्टरों के पास जाते हैं परन्तु उन्हें यह पूर्ण रूप से विश्वास जो जाता है कि कोई भी चिकित्सक उसके रोग का उपचार नहीं कर पायेगा।

3. महानता संबंधी व्यामोह:-

महानता से संबंधी व्यामोह सभी प्रकार के रोगियों में पाये जाते हैं। परन्तु कभी कभी रोग के आरम्भ से ही रोगी में विभिन्न प्रकार के महानता संबंधी विचारों का जन्म हो जाता है। इस प्रकार के रोगी अपने को महान् व्यक्ति समझने लगते हैं। इस व्यामोह से पीडित रोगी अपने आप को एक अति लोक प्रिय नेता, अभिनेता, गणितज्ञ, वैज्ञानिक डाक्टर, संगीतज्ञ, कलाकार, चित्राकार, इंजीनियर, व करोड़ पति व्यक्ति आदि बताते हुए सुना जाता है।

#### 4. कामुक व्यामोह (Erotic paranoia):-

ऐसे पीडित व्यक्ति में यह विश्वास दृढ़ हो जाता है कि विरोधी लिंग के व्यक्ति उसके ऊपर मोहित होते रहते हैं। इस प्रकार के रोगियों में लैंगिकता संबंधी व्यामोह की प्रधानता अधिक होती है। यह रोगी समझने लगते हैं कि उनसे कोई युवक या युवती प्रेम करने लगा है। उदा. फिशर ने इस प्रकार के रोगी का वर्णन प्रस्तुत किया है। एक व्यक्ति को व्यामोह हो गया कि एक उच्च कुल की युवती उससे प्रेम करने लगी है। उसने अपनी इस प्रेमिका को प्रेम पत्र लिखा परन्तु उसका कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ तब उसने सोचा कि वह युवती उससे विवाह करना चाहती है। अतः उसने अपनी तरफ से युवती के पिता को एक पत्र लिखा और कहा कि उनकी युवती उससे विवाह करना चाहती है। युवती के पिता ने इस युवक को मानसिक अरोग्यशाला में चिकित्सा हेतु भेज दिया।

#### 5. विवादी व्यामोह:-

इस प्रकार के व्यामोह में रोगी विवाद संबंधी परिस्थितियों में घिरा रहता है। उसमें यह भ्रसासक्ति विश्वास बना लेती है कि उसे अपने अधिकारों के लिए अन्य लोगों से लड़ते रहना आवश्यक है। ऐसे रोगी निरन्तर मुकदमों में लीन रहते हैं। इनको मुकदमों बाजी या कानूनी झगड़े करने का शौक होता है। वह अपने दोषों को अन्य लोगों पर आरोपित करते हैं।

#### 6. ईर्ष्यात्मक व्यामोह:-

इस प्रकार के व्यामोह में रोगी की यह धारणा बन जाती है कि वह एक महान व्यक्ति है। इसके कारण लोग उससे जलते हैं और प्रति ईर्ष्या की भावना रखते हैं। इस प्रकार के व्यामोह में पति पत्नी आपस में एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या की भावना रखते हैं।

#### 7. सुधारात्मक व्यामोह:-

इस प्रकार के व्यामोह रोगी में सुधार संबंधी व्यामोह पाये जाते हैं इन योगियों की दृष्टि से दुनिया संकट से घिरी हुई है तथा आर्थिक समाजिक व राजनैतिक रूप से शीघ्र सुधा होने की आवश्यकता है। रोगी यह मानता है कि वही इस संसार का सुधार कर सकता है।

#### 8. धार्मिक व्यामोह:-

धार्मिक व्यामोह के रोगी अपने को परमात्मा का अवतार या भगवान का दूत या धार्मिक सुधारक समझते हैं। वे रोगी यह सोचते हैं कि मेरा जन्म संसार की रक्षा करने के लिए हुआ है। यह रोगी दूसरे लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए धार्मिक उत्थान से संबंधित उपदेश भी देते रहते हैं। अनपढ अशिक्षित तथा पिछड़े हुए समाज के व्यक्ति ऐसे धार्मिक व्यामोह से पीडित व्यक्ति की बातें ध्यान से सुनते हैं।

### 8.4.3 व्यामोह के कारण:-

#### 1. जैविक कारण:-

कुछ विद्वाना का विचार है कि व्यामोह का कारण आंशुवशिकता और शरीर संरचना संबंधी कारक है परन्तु यह विचार त्रुटिपूर्ण है एक अध्ययन में यह देखा गया है कि व्यामोह और वशानुक्रम कोई संबंध नहीं है।

#### 2. मनोवैज्ञानिक कारण:-

व्यामोह के उत्पन्न होने में मनोवैज्ञानिक कारण अत्यधिक महत्वपूर्ण है-

##### 1. दोषपूर्ण व्यक्तित्व विकास:-

व्यामोह के रोगियों को बाल्यकाल में जब अत्यधिक संघर्षपूर्ण संवेगात्मक तनाव, चिन्ताये, दुविधापूर्ण स्थिति, विरोध प्रतिशोध जैसे कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है तो यह बाल्यावस्था की स्थिति में ही अधिक शक्की, जिद्दी, एकान्तप्रिय या क्रोधशील हो जाते हैं तथा बड़े होने पर वह जीवन की कदु स्थितियों के कारण चिडचिडे और कदु स्वभाव के हो जाते हैं। उसमें स्नेह पूर्ण संबंधो तथा दूसरो व्यक्तियों के प्रति विश्वास का अभाव होता है। ऐसे रोगियों की पारिवारिक पृष्ठभूमि अत्यधिक निरकुंशादी होती है तथा इनके घर का वातावरण भी अलोचनात्मक पूर्ण होता है। यह रोगी अपनी कमियों को दूसरो के ऊपर थोपता रहता हैं।

##### 2. सफलता और हीनता की भावना:-

व्यामोह से पीडित रोगी का जीवन असफलताओं से पूर्ण रहता है यह सफलताएँ सामजिक, आर्थिक, व्यावसाहिक आदि किसी भी क्षेत्र से संबंधित हो सकती है इन असफलताओं को कारण रोगी का अवास्तविक जीवन लक्ष्य तथा दूसरो के साथ मिलजुलकर न रह सकने की योग्यता आदि है।

नवफ्रायडवादियों के अनुसार व्यामोह का कारण असफलता, हीनता अपराध भावना है। ये रोगी अपनी हीनता भावना को छिपाने के लिए वह झूठी श्रेष्ठता भावना का जाल सा बना लेता है यह व्यक्ति दूसरे के मुख से अपनी प्रसन्नता सुनता चाहते हैं पर अलोचना सहन नहीं कर पाते है।

##### 3. लैंगिक असमायोजन या कुसमायोजन:-

व्यामोह के रोगियों के लक्षणों की उत्पत्ति का कारण उनका लैंगिक असमायोजन है। सामान्य लैंगिक समायोजन का अभाव व्यामोह से पीडित रोगियों में होता है यह रोगी उच्च नैतिकता के वातावरण में पले हुए होते हैं यह रोगी लैंगिक सन्तुष्टि को पापमय या घृणा की दृष्टि से देखते हैं ऐसे व्यक्ति यदि विवाह करते हैं तो बहुत ही जल्दी तलाक ले लेते हैं।

फॉयड ने व्यामोह का मुख्य आधार दमित समजाति लैंगिकता को बताया है।

##### 4. जीवन की वास्तविकता का अकुषल परीक्षण:-

बाल्यावस्था में जब व्यक्ति का जीवन की कठिनाइयों व कठोरताओं के प्रति परीक्षण अति निर्बल व निष्क्रिय रह जाता है, तब उसमें इस संबंध में आवश्यक व्यवहार कुशलताएँ विकसित नहीं हो पाती है ऐसी अकुशलता व अयोग्यता से उसमें आगे चलकर व्यामोह के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

#### 5. सुरक्षा का विस्तार:-

व्यामोह के रोगी में लक्षणों की उत्पत्ति तब होती है जब वह अपनी सुरक्षा का विस्तार करता है। व्यामोह से पीड़ित व्यक्तियों को हमेशा यह शंका रहती है कि कोई व्यक्ति उसका अहित न कर दें वह इसी भ्रम में दूसरों से दूर रहने लगता है जिससे उसे किसी प्रकार सहायता की आवश्यकता न पड़े।

#### सामाजिक कारण:-

व्यामोह से पीड़ित रोगी अधिकतर उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर के होते हैं इनका शैक्षिक स्तर भी उच्च होता है इनके जीवन लक्ष्य भी उच्च स्तर के होते हैं। जिनको कभी-कभी ये रोगी प्राप्त नहीं कर पाते हैं और इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए जूझते रहते हैं और व्यामोह जैसे मानसिक विकार से ग्रस्त हो जाते हैं। जब व्यक्ति सामाजिक व आर्थिक कठिनाइयों का सामना करने में असफल हो जाता है तो उसमें नैराश्य का भाव उत्पन्न हो जाता है जो आगे चलकर व्यामोह के लक्षण का रूप ले लेता है।

#### 8.4.4 व्यामोह का उपचार:-

व्यामोह आवस्थाएँ कुछ दिनों तथा सप्ताह में स्वतः समाप्त हो जाती है रोगी को दूर करने के लिए अनेक औषधियों का उपयोग किया जाता है। रोग की प्रारम्भिक अवस्था में मनोचिकित्सा व विधुत आघात चिकित्सा लाभदायक होती है परन्तु रोग के बढ़ जाने पर मनोचिकित्सा की कोई भी पद्धति लाभकारी सिद्ध नहीं होती है। ऐसे रोगियों की चिकित्सा के लिए इन्सुलीन व्यावसायिक प्रणाली सामूहिक चिकित्सा, औषधि चिकित्सा सामाजिक चिकित्सा आदि का प्रयोग किया जाता है।

व्यामोह के रोगी के रोगी ठीन होने की सम्भावना अपेक्षाकृत कम होती है व्यामोह के रोगियों को चिकित्सालय में भर्ती करना एक गम्भीर समस्या है उपचार काफी लम्बा चलता है। व्यामोह के रोगी को अस्पताल में रखना मुश्किल हो जाता है।

#### 8.4.5 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न:-

1. व्यामोह से क्या तात्पर्य है ?
2. व्यामोह का प्रमुख लक्षण क्या है ?
3. व्यामोह में पीड़ित व्यक्तियों का कितने प्रतिशत भाग चिकित्सालय में जाते हैं ?
4. व्यामोह की प्रारम्भिक अवस्था में कौन सी चिकित्सा लाभदायक है?

## 8.5 सारांश

- . मनोविदलता एक प्रकार का मानसिक रोग है जिसके प्रभाव से व्यक्ति के व्यक्तित्व का विघटन होना प्रारम्भ हो जाता है इसमें व्यक्ति को अपने बारे सोचने की शक्ति समाप्त होने लगती है वह यह समझ नहीं पाता है कि वह वातावरण में उचित व्यवहार नहीं कर रहा है।
- . स्विस मनोचिकित्सक ब्लूलर ने इस रोग को शिजोफ्रेनिया का नाम दिया। यह रोग एकल मनोरोग न होकर विभिन्न विकारों का सामूहिक रूप है।
- . मनोविदलता नौ (9) प्रकार की होती है:- 1. सरल प्रारूप मनोविदलता 2. युवा विदलन हीवीफ्रेनिक मनोविदलता 3. कैटाटोनिक प्रारूप मनोविदलता, 4. व्यामोह पैरानायड प्रारूप मनोविदलता, 5. बाल्यकालीन मनोविदलता, 6. तीव्र अविभेदित प्रारूप मनोविदलता, 7. दीर्घकालीन अविभेदित प्रारूप मनोविदलन, 8. भाव प्रारूप मनोविदलन, 9 अवशिष्ट मनोविदलता ।
- . मनोविदलता के कारण तीन प्रकार के होते हैं:- 1. जैविक कारक, 2. मनोवैज्ञानिक कारक, 3. समाजिक कारक।
- . व्यामोह विकार से ग्रस्त व्यक्ति अनेको प्रकार शंकाओं से ग्रस्त होता है। व्यक्ति तनाव की स्थिति में अनेक प्रकार भ्रमासक्तियों से ग्रसित हो जाता है जिनका दोषी दूसरे व्यक्तियों को ठहराता है के सामान्यतः आठ रूप होते हैं:- 1. उत्पीडन संबंधी व्यामोह, 2. रोगी से संबंधित व्यामोह, 3. महानता से संबंधी व्यामोह, 4. कामुक व्यामोह, 5. विवादी व्यामोह, 6. ईष्योत्मक व्यामोह, 7. सुधारात्मक व्यामोह, 8. धार्मिक व्यामोह ।

## 8.6 शब्दावली

- . मनोविदलता:-  
यह शब्द एक मानसिक रोग है जिससे तात्पर्य खण्डित मन तथा विभक्त व्यक्ति होता है।
- . भ्रमासक्तियाँ:-  
किसी विषय व तथ्य के बारे गलत विचार व धाराएँ भ्रमासक्तियाँ कहलाती हैं।
- . व्यामोह:-  
व्यामोह से पीडित रोगियों में तनाव, दुश्चिन्ता के कारण भ्रमासक्तियों उत्पन्न हो जाती हैं इसे व्यामोह विकार कहते हैं।

## 8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

- . मनोविदलता का अर्थ व्यक्ति के व्यक्ति में दरार पडना है या फिर खण्डितमन अथवा अत्यधिक विघटित व विभक्त व्यक्तित्व होता है।

- 
- . मनोविदलता का मानसिक हास के रूप में मोरेल ने प्रस्तुत किया।
  - . मनोविदलता 9 प्रकार के होते हैं।
  - . व्यामोह शब्द दो ग्रीक भाषा के शब्दों ; चतुर्जदवनेद्धसे मिलकर बना है जिसका अर्थ गलत और मन है यानि गलत मन है।
  - . व्यामोह का प्रमुख लक्षण भ्रमासक्तियाँ विभ्रम है।
  - . व्यामोह से पीडित व्यक्तियों का 1 प्रतिशत भाग ही मानसिक चिकित्सालय जाते हैं।
  - . व्यामोह 8 प्रकार के होते हैं।
  - . व्यामोह को प्रारम्भिक अवस्था में मनोचिकित्सा व आघात चिकित्सा अत्यधिक लाभदायक सिद्ध होती है।
- 

### 8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

---

- . Coleman, J.C. (1976) Abnormal Psychology & Modern Life, Taraporevala
  - . Davidson & Neale (1974) Abnormal Psychology, John Wiley
  - . Kapil, H.K. (2001) अपसामान्य मनोविज्ञान, भार्गव प्रकाशन, आगरा
  - . मखीजा और मरखीजा (2001) पसामान्य मनोविज्ञान, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन आगरा।
  - . सिंह ए.के. (2009) आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, बनारसी, दास दिल्ली।
- 

### 8.9 निबन्धात्मक प्रश्न

---

- . मनोविदलता से क्या तात्पर्य है मनोविदलता के लक्षणों का वर्णन **कीजिये** |
- . मनोविदलता कितने प्रकार की होती है मनोविदलता के उपचार की विधियों की विवेचना **कीजिये** |
- . व्यामोह को परिभाषित कीजिए व्यामोह के प्रकारों की उदाहरण सहित व्याख्या **कीजिये** |
- . व्यामोह के लक्षणों की विवेचित कीजिए तथा कारणों की विवेचना **कीजिये** |

## इकाई 9. व्यक्तित्व विकृतियाँ : अर्थ, स्वरूप, प्रकार, कारक एवं उपचार (Personality Disorders:- Meaning, Nature, Types, Factors and Treatment)

### इकाई संरचना

- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 उद्देश्य
- 9.3 व्यक्तित्व विकार का अर्थ एवं स्वरूप
- 9.4 व्यक्तित्व विकार के प्रकार
- 9.5 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
- 9.7 सारांश
- 9.8 शब्दावली
- 9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

### 9.1 प्रस्तावना

व्यक्तित्व एक ऐसा तंत्र है जिसके मानसिक या मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक दोनो ही पक्ष होते हैं यह तंत्र ऐसे तत्वों का एक गठन होता है जो आपस में अन्तर्क्रिया करते हैं व्यक्तित्व ना तो पूर्णत मानसिक या मनोवैज्ञानिक होता है और न पूर्णत शारीरिक ही। व्यक्तित्व इन दोनो तरह के पक्षों का मिश्रण है।

जब किसी भी व्यक्ति में शारीरिक व मानसिक रूप में विकार उत्पन्न होने लगते हैं तब ऐसे विकारों को व्यक्तित्व विकार के रूप में जाना जाता है।

व्यक्ति के व्यक्तित्व में विकार उत्पन्न होने का कारण केवल शारीरिक व मानसिक ही नहीं होता बल्कि व्यक्ति के व्यवहार पर निर्भर करता है कि व्यक्ति कैसा व्यवहार करता है व्यक्ति के व्यवहार में यदि असमायोजन अत्यधिक होता है तब व्यक्ति के व्यक्तित्व में विकार उत्पन्न होने लगते हैं। व्यक्तित्व विकृति वैसा विकृति है जो पर्यावरण को कुसमायोजित ढंग से प्रत्यक्ष करने तथा उसके प्रति अनुक्रिया करने की प्रवृत्ति की ओर इशारा करता है। इसके अन्तर्गत सम्बन्धित व्यक्ति जीवन में अपनी अत्यधिक सुःखवादी, आवेगी व समाज विरोधी इच्छाओं की पूर्ति निर्द्वन्द तथा निः कोच रूप से सम्पन्न करते देखा जा सकता है।

### 9.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत हम व्यक्तित्व विकार के स्वरूप व इनके प्रकारों, कारणों तथा उपचार का अध्ययन करेंगे-

- 
- a) व्यक्तित्व विकार का अर्थ।  
 b) व्यक्तित्व विकार के प्रकार।  
 c) समाज विरोधी व्यवहार, लक्षण, कारण, उपचार।  
 d) बाल अपराध, कारण एवं उपचार  
 e) प्रौढ़ अपरोध व नव अपराधी।  
 f) कामुक विचलन, कामुक विचलन के कारण, कामुक विचलन के प्रकार एवं उपचार।  
 g) मद्यव्यसनिता।  
 h) मद्यव्यसनिता के प्रकार।
- 

### 9.3. व्यक्तित्व विकार का अर्थ एवं स्वरूप

---

मनस्ताप तथा मनोस्नायुविकृति व मनोविक्षिप्तता आदि मानसिक रोगों की तरह विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व विकारों की प्रतिक्रियाएँ भी दोषपूर्ण व्यक्तित्व विकार के कारण उत्पन्न होती हैं मानसिक रोगों में अनेक प्रकार के मानसिक एवं संवेगात्मक लक्षण पाये जाते हैं परन्तु व्यक्तित्व विकारों में इन लक्षणों के स्थान पर कुसमायोजित बाह्य व्यवहार होता है। इसलिए व्यक्तित्व विकारों से ग्रस्त व्यक्तियों में न तो क्लेश अथवा विपत्ति की भावना रहती है और न ही वे स्वयं को मानसिक रोगी मानते हैं।

जब किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व में विकार उत्पन्न होने लगते हैं तो उसका व्यक्तित्व विघटित होने लगता है जिससे उनके शारीरिक एवं मानसिक स्थिति पर प्रभाव पड़ता है। परन्तु फिर भी यह व्यक्ति अपने आप को किसी भी तरह शारीरिक व मानसिक रूप से रोगी नहीं मानते हैं व्यक्तित्व में विकार आने के कारण इनके सामाजिक संबंधों में विखण्डन हो जाता है। परन्तु किसी भी प्रकार के भी विपत्ति के समय वह अडिग रहते हैं। और विपत्ति का सामाना करते रहते हैं।

किसी भी प्रकार के मनोस्नायुविकृति से ग्रस्त होने पर व्यक्ति की मानसिक स्थिति खराब होने लगती है उसी प्रकार व्यक्ति के व्यक्तित्व में विकार आ जाने पर उसके बाह्य व्यवहार में भी परिवर्तन आने लगता है। वह समाज विरोधी प्रतिक्रियाएँ करना आरम्भ कर देता है। जिससे उसका शारीरिक और मानसिक सन्तुलन बिगड़ने लगता है और उसका व्यक्तित्व विकारों से ग्रस्त होने लगता है। डेविसन और निल के अनुसार “व्यक्तित्व विकृति, विकृतियों का विषय समूह है जो जैसे व्यवहारों एवं अनुभूतियों का स्थायी एवं अनम्य पैटर्न होता है जो सांस्कृतिक प्रत्याशाओं से विचलित होता है और तकलीफ या हानि पहुंचाता है”।

### 9.4 व्यक्तित्व विकार के प्रकार

---

व्यक्तित्व विकारों को मुख्य रूप से पांच प्रकारों में बाटा जा सकता है।

1. समाज विरोधी विकृत प्रतिक्रियाएँ।

2. बालापचार
3. प्रौढ अपराध एवं नव अपराधी
4. कामुक विचलन
5. मद्यव्यसनिता

### 1. समाज विरोधी मनोविकृति प्रतिक्रियाएँ ((Anti Social Psychopathic Reactions):-

समाज विरोधी व्यक्ति के व्यक्तित्व से तात्पर्य वैसे व्यक्तित्व से होता है जो न तो स्नायुविकृत होते हैं और जो न ही मनोविकृत होते हैं, परन्तु यह सामाजिक रूप से अयोग्य होते हैं। इन व्यक्तियों का प्रमुख लक्षण दोषपूर्ण नैतिक विकास होता है वह सामाजिक नियमों के अनुसार कार्यन नहीं कर पाते हैं। वह समाज के अनुशासित नियमों पर नहीं चल पाते हैं और हमेशा किसी न किसी प्रकार की मुसीबतों व जोखिमों से घिरे रहते हैं। अतीत के बुरे कटु अनुभवों व दण्डों का भी ऐसी व्यक्तियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

सामान्य अवस्था में ऐसे व्यक्तियों को शारीरिक व मानसिक रूप से बीमार नहीं कहा जा सकता है परन्तु ऐसे व्यक्ति समाज में शांति भंग करने वाले दंगा करने वाले तथा सार्वजनिक सम्पत्ति को बर्बाद करने वाले होते हैं। कारसन तथा बुचर (1992) के अनुसार समाज विरोधी विकृति वाले व्यक्ति बिना पछतावा या किसी के प्रति निष्ठा दिखाये अपने आक्रमक एवं समाज विरोधी व्यवहार द्वारा दूसरों के अधिकारों का हनन करते हैं।

समाज विरोधी व्यक्तित्व के व्यक्ति बिना किसी अवरोध अनुभव किये ही समाज विरोधी कार्य करता है।

व्यक्तित्व विकारों से पीड़ित व्यक्तियों का अनुमान लगाना अत्यन्त कठिन होता है परन्तु ऐसे लोग छिपे रूप से समाज में रहते हैं और उनका पता नहीं लग पाता क्योंकि ऐसे अनेक व्यक्ति बाह्य रूप से कुशल कलाकारों व सफल नाटककारों, अनुत्तर दायी राजनीतिक, कपटी व्यापारियों, कपटी वकील, कुटिल वैश्याओं तथा ठग, चोर, बलात्कारी, एवं अपराधियों के रूप में समाज में खुले रूप से अपनी सम्बन्धित गतिविधियों में व्यस्त रहते हैं। महिलाओं की अपेक्षा पुरुष ऐसे विकृत व्यवहार से अधिक पीड़ित होते हैं यह व्यवहार प्रौढ़ व्यक्तियों की अपेक्षा किशोरों में अधिक पाया जाता है।

### समाज विरोधी मनोविकृत प्रतिक्रियाओं के लक्षण:-

समाज विरोधी व्यक्ति सामान्य तौर पर ऊपर से बुद्धिमान, चतुर, आकर्षक, ईमानदार दिखाई प्रतीत होता है परन्तु वे सही रूप में अपरिपक्व, अनुत्तर दायी और आवेगशील होता है। इस प्रकार के व्यक्ति छोटी छोटी बातों पर उत्तेजित हो जाते हैं और समाज के विरोध में व्यवहार करने लगते हैं। इन सभी समाज विरोध लक्षणों को हम 10 वर्गों में आसानी से विभक्त करके समझ सकते हैं।

#### 1. अपर्याप्त अन्तरात्मा विकास (**Inadequate conscience development**) :-

इस प्रकार के व्यक्ति समाज के धार्मिक, सामाजिक नैतिक मूल्यों को समझ नहीं पाते हैं और उनको स्वीकार नहीं करना चाहते हैं इन व्यक्तियों का बौद्धिक सामाजिक विकास नहीं हो पाता है इनकी अन्तरात्मा अपर्याप्त रूप से

जाग्रत होती है जिससे वह समाज के विरुद्ध कार्य करने में भी असमर्थ नहीं होते हैं यह व्यक्ति अपने गोल मोल व लच्छेदार बातों से दूसरों को धोखा देने में कामयाब हो जाते हैं इनकी दिखावटी बातों की वजह से व्यक्ति इन पर अत्यधिक विश्वास करने लगता है। जिसका लाभ उठाकर ये व्यक्तियों को धोखा देने में सफल हो जाते हैं।

2. आत्मकेन्द्रित, आवेगी और अनुत्तरदायी (**Egocentric, Impulsive and Irresponsible**) :-

इस प्रकार के व्यक्ति को दूसरे व्यक्तियों की आवश्यकताओं, जरूरतों व अधिकारों की कोई परवाह नहीं होती है। ऐसे व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्वयं कोई कार्य नहीं करना चाहते हैं। बल्कि यहाँ तक कि वह अपनी जीविका के लिए भी स्वयं नहीं कमाना चाहते हैं वह हमेशा दूसरों से कुछ न कुछ लेना चाहते हैं परन्तु देना नहीं चाहते हैं ऐसे व्यक्ति तनावपूर्ण स्थितियों को अत्यधिक समय तक नहीं झेल पाते हैं और न ही किसी प्रकार का कोई ठीक निर्णय कर पाते हैं। इन व्यक्तियों की निर्णय शक्ति अत्यधिक कमजोर होती है।

3. सुखवाद एवं आवास्तविक लक्ष्य:-

ये व्यक्ति अपने अतीत व भविष्य के बारे में सोच विचार किये बिना जीते हैं। इनका मानना होता है कि अतीत और भविष्य के बारे में सोचकर हम अपना वर्तमान क्यों बर्बाद करें। ये व्यक्ति तात्कालिक यानि वर्तमान के सुख को नहीं छोड़ना चाहते हैं वे सभी ब्राह्मण वस्तुओं व चीजों का उपयोग तात्कालिक लाभ व सन्तुष्टि के लिए करते हैं इस प्रकार के व्यक्तियों का व्यक्तित्व स्थायी नहीं होता है और इनमें सहनशीलता की भावना भी कम होती है ऐसे व्यक्तियों का एक जगह मन नहीं लगता है वह अपने व्यवसायों को भी जल्दी जल्दी बदलते हैं ऐसे व्यक्तियों में एक ही दिन में कुछ बनकर दिखाने की तीव्र इच्छा होती है। ऐसे व्यक्तियों में असामान्य कामुक व्यवहार अधिक पाया जाता है।

4. दुश्चिन्ता अथवा अपराध भावना का अभाव (**Lack of Anxiety of Guilt feeling**) :-

जब व्यक्ति में तनाव व दुश्चिन्ता की भावना उत्पन्न होती है तो यह आसानी से हार मान कर बैठ नहीं जाते हैं बल्कि अपने आक्रमक व्यवहार द्वारा इन्हें समाप्त करने का प्रयास करते हैं दूसरे व्यक्तियों के प्रति शत्रुता व आक्रमणकारी व्यवहार करने पर इनमें कोई अपराध भावना उत्पन्न नहीं होती है एक तरफ दुश्चिन्ता व अपराध भावना का अभाव वहीं दूसरी तरफ ईमानदारी, दिखावे की सरलता के कारण इन व्यक्तियों पर शक करने की शंका कम हो जाती है।

5. गलतियों से सीखने की अयोग्यता:-

ऐसे व्यक्ति अपनी जीवन की गलतियों व अनुभवों तथा दण्डों से कुछ भी सीखने का प्रयास नहीं करते हैं और गलती पर गलतियाँ करते रहते हैं ऐसे व्यक्ति अपने स्वार्थ को पूरा करने में हेर फेर करने में माहिर होते हैं और सजा से भी आसानी से बच निकलते हैं। वे ऐसा सोचते हैं कि उन्हें कभी भी अपने दुष्कर्मों का परिणाम नहीं भुगतना पड़ेगा और घोर कृत्य अपराध करते जाते हैं।

6.. स्वार्थ सिद्धि के लिए नाटक रचना:-

इस प्रकार के व्यक्तियों में आकर्षक, प्रिय, सुन्दर, बनावटी दिखने का गुण भरपूर रूप में होता है जिससे वह दूसरों को प्रभावित करके अपना कार्य करने में सफल हो जाते हैं।

7. दोषपूर्ण सामाजिक संबंध (**Defective Social Relationship**) :-

ये लोग प्रायः कठोर, अकृतज्ञ, असहानुभूति और पश्चातापहीन होते हैं इन लोगों के मित्र भी नहीं होते हैं और यह समूह के सदस्यों के साथ भी कोई संबंध नहीं रखना चाहते हैं।

8. संस्थापित सत्ता और अनुषासन का अस्वीकरण :-

इस प्रकार के व्यक्ति ऐसा व्यवहार करते हैं जैसे समाज द्वारा बनाये गये नियमों का कोई भी अस्तित्व नहीं है जैसे यह नियम निर्देश इनके लिए नहीं बनाये गये हैं और इनके विरोध में कार्य करते रहते हैं। स्थापित सत्ता के प्रति शत्रुता की भावना रखते हैं और उनके विरोध में आवेगपूर्ण, शत्रुता पूर्ण अपराधिक कार्य करते हैं।

9. युक्तिसम्मतकरण की योग्यता (**Ability to Rationalize**) :-

ये व्यक्ति अपने द्वारा किये गये गलत कार्यों को दूसरों पर आरोपित करते हैं इनके भीतर अपने व्यवहार के प्रति अन्तर्दृष्टि का अभाव होता है। ऐसे व्यक्ति झूठ बोलने से भी पीछे नहीं हटते हैं जबकि उन्हें पता होता है कि एक न एक दिन उनकी पोल खुल जाएगी।

10. दूसरों को सतानें हताश करने एवं संकट में डालने की प्रवृत्ति:-

इस प्रकार के व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों या परिवार के सदस्यों पर बोझ बनने लगते हैं और उनके लिए दुख व समस्याएं उत्पन्न करते हैं ऐसे व्यक्तियों को सुधारना असम्भव नहीं परन्तु कठिन अवश्य होता है।

**समाज विरोधी मनोविकृत प्रतिक्रियाओं के कारण:-**

समाज विरोधी मनोविकृत प्रतिक्रियाओं के कारणों के लिए कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि किसी शरीरिक विकृति के कारण समाजविरोधी विकार उत्पन्न होते हैं वही दूसरी तरफ कुछ वैज्ञानिक इसे पारिवारिक दोषपूर्ण तथा समुदाय के रूप में होने वाली प्रतिक्रियाओं के रूप में मानते हैं।

1. जैविक कारक
2. पारिवारिक कारक
3. मानसिक कारक
4. सामाजिक संस्कृति कारक

**1. जैविक कारक (Biological Factors):-**

समाज विरोधी व्यक्ति आरम्भिक जीवन से ही आवेगशील, तोड़फोड़ करने वाले, असहनशील, उत्तेजित व्यक्तित्व के होते हैं। इसका कारण तंत्रिका तंत्र के अन्तर्बाधा और उत्तेजक के प्रक्रियाओं में असन्तुलन है इस असन्तुलन का कारण जन्मजात क्षति भी हो सकती है। मैकमिलन तथा कोफोड (1984) के अनुसार ऐसे लोगों में समाज

विरोधी व्यवहार करने की जन्मजात प्रवृत्ति मूल रूप से जीन्स द्वारा उनको प्राप्त होती है और जिन व्यक्तियों में नई नई उत्तेजनाओं के प्रति अधिक जिज्ञासा होती है और जो नये नये कारनामों करके सुख की अनुभूति प्राप्त करना चाहते हैं। उनमें समाज विरोधी मनोविकृत प्रतिक्रियाएँ अत्यधिक देखने को मिलती हैं। लेकिन जैविक कारकों की भूमिकाओं में इस कारण से संदेह होने लगता है कि क्योंकि बच्चों में प्रायः उनके जैसे मनोविकृत शीलगुण देखने में नहीं आया है।

समाज विरोधी व्यक्तियों में संज्ञानात्मक कार्यों की अपूर्णता पाई जाती है इसलिए वह बिना किसी हिचक के समाज विरोधी कार्य करते रहते हैं।

## 2. पारिवारिक कारक:-

समाज विरोधी बालाको के माता पिता में अधिकार, स्वतन्त्रता एवं उपलब्धि के लक्ष्यों के संबंध में मतभेद एवं द्वन्द्व पाये जाते हैं। मैककार्ड तथा मैककार्ड (1964) के अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि जब बच्चों को माता पिता द्वारा बात बात पर तिरस्कृत किया जाता है व माता पिता द्वारा बच्चों को पर्याप्त मात्रा के प्यार नहीं मिलता है तो इस स्थिति में बच्चे समाज विरोधी प्रतिक्रियाएँ करने लगते हैं।

इस प्रकार के बालको के पिता का स्वभाव अत्यधिक कठोर और कटु होता है तथा बहुत अलग अलग रहने वाले, व्यस्त रहने वाले होते हैं जिससे बच्चों में कभी कभी भय भी उत्पन्न होने लगता है। इसके विपरीत माताएं लाड प्यार करने वाली सुख प्रदान करने वाली होती हैं। यहाँ पर माता-पिता अपने बच्चों से दूरी व तटस्थता का संबंध रखते हैं व उनके प्रति प्रेम भाव का आभाव रखते हैं ऐसे व्यवहार से बच्चों में व्यस्कावस्था आने तक समाज विरोधी कार्य करने की लालासा अत्यधिक विकसित हो जाती है। ग्रीर (1964) के अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि समाज विरोधी व्यक्तित्व एक समूह में 60 प्रतिशत व्यक्ति ऐसे थे जिनके माता पिता बचपन में ही खो चुके थे माता पिता के न होने कारण इनका सांवेगिक विकास नहीं हो पाता है जिसके कारण समाज विरोधी व्यक्तित्व विकसित होने लगता है।

समाज विरोधी व्यक्तित्व का विकास दोषपूर्ण पारिवारिक अन्त क्रियाओं से भी उत्पन्न होता है।

## 3. मानसिक कारक:-

समाज विरोधी व्यक्तियों का एक बड़ा प्रतिशत एवं मध्य वर्ग उच्च वर्ग एवं में पाये जाते हैं ये परिवार उत्तम आवसीय क्षेत्रों में निवास करते हैं। विल्किन्स (1961) के अनुसार समाज विरोधी व्यक्तियों का अपना एक विशेष प्रकार का चाल चलन व जीवन शैली होती है जिसके अनुसार वह कार्य करते हैं इनके व्यवहार को परिवर्तित करना कठिन होता है। ऐसे व्यक्ति अपने द्वन्द्वों और आवेगों को दुश्चिन्ता द्वारा कम करने के बजाय आक्रमणकारी, व विध्वंसक व्यवहार करना अधिक अच्छा समझते हैं। आरम्भिक जीवन में कभी-कभी एक बालक किसी एक दुराचारी परन्तु सफल कहे जाने वाले व्यक्ति के प्रति भी अचेतन रूप से तदात्मीकरण करते देखा जाता है। ऐसी स्थिति में उसमें अपराध के लिए प्रश्रित करने की भावना विकसित नहीं हो पाती है।

#### 4. सामाजिक सांस्कृतिक कारक:-

समाज विरोधी व्यक्तित्व निम्न सामाजिक आर्थिक समूहों में अत्यधिक तेजी से बढ़ता है समाज विरोधी व्यक्तियों पर समाज में रहने वाले सदस्यों का व्यवहार भी निर्भर करता है कि उसका अपने साथ के लोगों के साथ कैसा व्यवहार है।

समाज विरोधी मनोविकृत प्रतिक्रियाओं के उपचार:-

समाज विरोधी मनोविकृती के व्यक्ति मनस्तापी नहीं होते हैं इनको मानसिक अस्पताल में भरती नहीं किया जाता है। इनका उपचार करना अत्यधिक कठिन होता है कुछ शारीरिक अंगों से संबंधित कारक जिनका उपचार करना असम्भव हैं इस कार्य को और जटिल बना देते हैं इन व्यक्तियों के उपचार में सबसे बड़ी समस्या इन व्यक्तियों की अभिवृत्ति है जो व्यक्ति बदलना नहीं चाहते हैं।

समाज विरोधी व्यक्ति के उपचार में वैयक्तिक चिकित्सा, सामूहिक चिकित्सा, व्यवहार चिकित्सा, औषधि चिकित्सा अत्यधिक लाभकारी सिद्ध हुई है।

वैयक्तिक चिकित्सा में चिकित्सा सत्र के दौरान पीडित व्यक्ति तथा एक चिकित्सक होता है जो रोगी से समस्या के प्रत्येक पहलु को बताने के लिए कहता है और विचार विमर्श करता है इस चिकित्सा की सफलता रोगी के ऊपर निर्भर करती है कि वह चिकित्सक के साथ कितना सहयोग करता है सामूहिक चिकित्सा में समाज विरोधी व्यक्तियों का उपचार समूह व टोली बनाकर किया जाता है इसमें कई चिकित्सक होते हैं जिनके सुझावों की सहायता से व्यक्तियों का उपचार आसानी से किया जाता है। समाज विरोधी व्यवहार को हटाने, नियंत्रित करने में दण्ड बहुत अधिक प्रभावकारी सिद्ध नहीं होता है बल्कि समाज विरोधी व्यवहार को दूर करने के लिए व्यक्ति को ऐसी परिस्थिति में रखना आवश्यक होता है जहां व्यवहारात्मक नियंत्रण संभव हो ताकि वह आत्मध्वसात्मक व्यवहार न कर सके।

समाज विरोधी व्यक्तियों को सुधारने के लिए प्रशान्तक औषधियों का भी उपयोग किया जाता है जिससे व्यक्ति आक्रमणकारी व्यवहार न करे। कभी कभी ऐसे व्यक्तियों को नियंत्रित करने के लिए विधुत चिकित्सा का भी उपयोग किया जाता है परन्तु यह लाभकारी सिद्ध नहीं हो पाती हैं

मनेविश्लेषण एवं सम्मोह विश्लेषण विधि भी अधिक प्रभाव कारी सिद्ध हुई है। समाज विरोधी व्यक्तियों के असामान्य व्यवहार को दूर करने के लिए कई प्रकार को चिकित्सा विधि उपलब्ध है। अधिकतर समाज विरोधी व्यक्तित्व वाले व्यक्ति अपनेआप 40 साल से आगे आयु उग्र बढ़ने पर अपने समाज विरोधी व्यवहार को अनुचित समझकर छोड़ देते हैं उग्र बढ़ने के साथ ही इन व्यक्तियों में सामाजिक परिपक्वता और सूझ विकसित हो जाती है। जिसके फलस्वरूप समाज विरोधी कार्यों में कमी आ जाती है। ऐसे व्यक्तियों को अन्तिम मनोविकृत व पके हुए मनोविकारी (Burned Out Psychopath) कहा जाता है ऐसे व्यक्ति इस उग्र में पहुचने से पहले काफी तबाही मचा चुके होते हैं व बर्बाद हो चुके होते हैं।

## 2. बालापचार ((Burned Out Psychopath) :-

बालापचार 18 वर्ष से कम आयु के लडकों एव लडकियों का ऐसा व्यवहार है जो हमारे समाज द्वारा स्वीकार्य नहीं है। भारतीय दण्ड विधान के अनुसार 7 वर्षसे 17 वर्ष तक का अपराधी बाल अपराध के अर्न्तगत आता है कानून के दृष्टिकोण से कानून विरोधी कार्य अपराध है। जबकि सामाजिक दृष्टि कोण से समाज के विरोध में किया गया कोई भी कार्य अपराध की श्रेणी में आता है सात से अधिक परन्तु बारह वर्ष से कम आयु वाले ना समझ बालको को भारतीय विधान धारा 83 के अनुसार अपराधी नहीं माना जाता है।

Reformatory School Acts;1967 के अनुसार बाल आपराधियों की अधिकतम आयु 16 वर्ष है सामान्य रूप से बाल अपराधियों की आयु 17 वर्ष तक होती है।

आज हमारे देश में बाल अपराधियों की संख्या लाखों में है वही अमेरिका में बाल अपराधियों की संख्या 10 लाख से ज्यादा है बाल अपराध चोरी, हत्या, बलात्कार, सेधमारी और डकैती आदि जैसे अपराध 18 वर्ष की कम आयु के युवकों द्वारा किया गया व्यवहार है जो समाज द्वारा मान्य नहीं होता है इस व्यवहार के लिए चेतावनी दी जाती है। दण्ड दिया जाता है या सुधरात्मक कार्य किया जाता है।

बाल अपराधियों में स्त्री की अपेक्षा पुरुषों में अपराध करने की प्रवृत्ति अत्यधिक पाई जाती है।

### कारण:-

बाल अपराध के अनेक कारण हो सकते है इसे निम्नांकित रूप में बाटा गया है-

#### 1. अतिव्यापक विकृतियां:-

अनेक वैज्ञानिकों के अनुसार बाल अपराधियों का वर्गीकरण कई प्रकार की विकृति के आधार पर किया जा सकता है।

#### 1. शारीरिक विकृतियां:-

एक प्रतिशत बाल अपराधियों के आसामान्य व्यवहार का कारण मस्तिष्क विकार होते है जिनके कारण बालक, सक्रिय , आवेगपूर्ण तथा सवेगात्मक रूप से अस्थिर होते है आवेश में आकर अपराध करने के पश्चात इनमें अपराध भावना उत्पन्न हो जाती है।

#### 2. मानसिक रूप से मंदित बाल अपराधी:-

बाल अपराधियों ने अपराध का मुख्य कारण निम्न बुद्धि का होना होता है। जब बालकों में बुद्धि की मात्रा सामान्य नहीं होती है तब बालक को यह ज्ञात नहीं हो पाता है कि वह जो व्यवहार कर रहा है वह समाज द्वारा मान्य है कि नहीं, उसे यह स्पष्ट नहीं होता है कि वह कोई घोर अपराध कर रहा है।

#### 3. मनस्ताप और मनोविक्षिप्तता:-

मानसिक रोगों से ग्रस्त व्यक्ति भी बाल अपराधी और अपराधी बन जाते हैं। संपूर्ण बाल अपराधियों में लगभग 5 प्रतिशत तक मनस्ताप से पीड़ित व्यक्ति अपराधी होते हैं। इसी प्रकार संपूर्ण बाल अपराधियों में 5 प्रतिशत अपराधी मनोविक्षिप्तता रोगों से पीड़ित होते हैं। मनोग्रस्ताबध्यता मनस्ताप चोरी करने वाले अपराधियों में अधिक पाया जाता है।

#### 4. तंत्रिकातापी बालपचारी:-

10 से 15 प्रतिशत बाल अपराधियों के व्यवहार का संबंध तंत्रिकातापी से होता है। इस प्रकार के बालक अपराध करने से पहले अपने विचारों से लड़ते हैं और कार्य कर लेने के बाद अत्यधिक अपराध भावना का अनुभव करते हैं।

#### 2. विकृतिजनक पारिवारिक सम्बन्ध:-

विकृति जनक पारिवारिक संबंधों के अनेक रूप हो सकते हैं।

##### 1. भग्न परिवार ((Broken Homes):-

भग्न परिवार उस परिवार को कहते हैं जिससे बालक अपने माता पिता को तलाक, मृत्यु व परित्याग के कारण खो देते हैं जिसके कारण उनमें असुरक्षा की भावना उत्पन्न होने लगती है। इसके कारण वह आसामाजिक कार्य करने लगते हैं। बार्कर एवं ऐडम्स (1962) के अध्ययन से ज्ञात होता है कि दो तिहाई बच्चे भग्न परिवार से आते हैं।

##### 2. सौतेले माँ-बाप:-

परिवार में सौतेले माँ बाप का होना भी अपराध का बड़ा कारण होता है। सौतेले माँ बाप अपने बच्चों के साथ पक्षपात का व्यवहार करते हैं। सौतेली माँ अपने बच्चों को अधिक तथा दूसरे सौतेले बच्चों को कम प्यार देती हैं जिसके कारण बालक पक्षपात की भावना से ग्रस्त हो जाते हैं और अपराध करते रहते हैं।

##### 3. पैतृक अनुपस्थितिता ((Parental Absenteeism) :-

कुछ माता पिता अपने व्यवसाय व नौकरी के कारण अधिकतर समय व्यस्त रहते हैं व बाहर रहते हैं जिससे माता पिता व बालकों के संबंधों में दूरियां आने लगती हैं। माँ बाप अपने बच्चों को समय नहीं देते हैं जिसके कारण बच्चे असुरक्षित महसूस करने लगते हैं और माँ-बाप तथा बच्चों के संबंध कटु हो जाते हैं। जिसके कारण बच्चे अपराध से संबंधित क्रियाएँ करने लगते हैं।

##### 4. माता पिता द्वारा तिरस्कार व दोषपूर्ण अनुशासन:-

जिन माता-पिता द्वारा बच्चों का तिरस्कार किया जाता है उनके बालकों में बाल अपराध के गुण अत्यधिक उत्पन्न होते हैं। बालकों के परिवार का अनुशासन यदि दोषपूर्ण होता है तो बच्चे बिगड़ जाते हैं। अगर उन्हें अनुशासन के माहौल में नहीं रखा जाता है तो वह अपराध करने के लिए अग्रसर हो जाते हैं।

##### 5. पारिवारिक विघटन:-

जिन परिवारों में विघटन की स्थिति पायी जाती है उन परिवारों के बच्चे अपराधी प्रवृत्ति के हो जाते हैं।

### 3. सांस्कृतिक कारक:-

इस श्रेणी के बाल अपराधी ऐसे समूह से संबंधित होते हैं जिनके नैतिक मूल्य सामान्य जनसंख्या के अनुरूप नहीं होते जिन कार्यों को समाज अपराधी प्रवृत्ति का मानता है इस अवसंस्कृति व्यक्ति उसे अच्छा समझते हैं।

#### 1. समाज द्वारा परित्याग:-

16 से 20 वर्ष की आयु के ये युवक और युवतियां योग्यता अथवा अभिप्रेरणा की कमी के कारण अपने स्कूल अथवा कालेज में वाछनीय शैक्षिक योग्यता प्राप्त नहीं कर पाते हैं। जो शैक्षिक योग्यता प्राप्त कर लेते हैं तो वेकारी की समस्याएं कुण्डा उत्पन्न कर देती हैं जब ऐसे बालको का समाज द्वारा परित्याग कर दिया जाता है तब उत्पन्न कुण्डा से आसामाजिक कार्य करने लगते हैं। जैसे बेबात की लड़ाई झगड़ा, तोड़ फोड़ दलबन्दी आदि हैं।

#### 2. बालापचारी गिरोह:-

बाल अपराध का जन्म शहर की गन्दी वस्तियों में होता है। इन क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों की निर्धनता और अपर्याप्त निर्वाह परिस्थितियां कुण्डा ओर असन्तोष उत्पन्न करती हैं। बालको में समाज के प्रति नाकारात्मक अभिवृत्ति उत्पन्न होने लगती है।

लडकियों को भी इन बालापचारी गिरोहों में भरती किया जाता है। अमेरिका में लडकियों के अब अलग गिरोह बनने लगे हैं। यह भी पुरुष गिरोहों की भांति संप्रमित अक्रोशी और लडाकू लडकियों के लिए अपना एक अलग संसार प्रदान करते हैं।

### 4. आर्थिक कारक:- बाल अपराधों में आर्थिक कारक सहायक होते हैं।

#### 1. निर्धनता:-

बर्ट (1948) के अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकलता है कि बाल अपराधियों में आधे अपराधी निर्धन परिवारों से आते हैं। निर्धनता भी बाल अपराधों को जन्म देती है।

#### 2. भुखमरी:-

आज समाज में इतनी अधिक निर्धनता फैल रही है कि लोग भूख से मर रहे हैं खाने को खाना नहीं है जिससे व्यक्ति अपराध करने के लिए मजबूर हो जाते हैं।

#### 3. बेरोजगारी:-

बेरोजगारी जैसी घातक समस्या भी अपराध करने के लिए मजबूर कर देती है। बेरोजगार व्यक्ति को रोजगार न मिलने की वजह से उनका मानसिक सन्तुलन बिगडने लगता है। उन्हें यह ज्ञान नहीं हो पाता है कि वह जो काय कर रहे हैं वह गलत है या सही।

#### 4. अत्यधिक प्रतिबलक स्थितियाँ:-

कभी कभी कुछ अनुशासनहीन, अल्पबुद्धि, आवेगशील व अपरिपक्व बालक अचानक घोर प्रतिबलों जैसे माया बाप की एकाएक दुखद मृत्यु, परिवार से बिछुडना और निर्धनता के जीवन के शिकार बन जाते हैं। अकेलेपन में वह कभी कभी सुखी जीवन व अन्य तुच्छ प्रलोभन के कारण अपराधी व्यवहार के जाल में फस जाते हैं।

आज के युग में टेलीविजन के प्रोग्रामों के माध्यम से बालको को व नवयुवकों के कोमल मन पर अपराध प्रवृत्ति अचेतन रूप से शीघ्र घर करती हुई देखी जाती है टेलीविजन के माध्यम से अपराध जैसे घोर कृत्य नवयुवको-नवयुवतियों के सामने पेश किये जा रहे हैं जिससे अपराध का प्रचलन बढ़ रहा है। फिल्मों, नाटकों में दिखाये गये अपराधी दृश्यों व कृत्यों को व्यक्ति अपने जीवन में ग्रहण कर अपराध की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

### उपचार:-

सर्वप्रथम ऐसे बालको को उनसे संबंधित अपराधी गिरोह से अलग रखना होता है फिर उन्हें सुधार गृहो व प्रशिक्षित लोगो की देख रेख में रखने की आवश्यकता होती है ताकि उन्हें मनोवैज्ञानिक परामर्श व व्यवसायिक प्रशिक्षण मिल सके ताकि वह अपने जीवन के महत्त्व को समझ सके और अपने व्यवहार, लक्ष्यों और क्रियाओं को एक नया मोड दे सके।

अपराधी बालक अति कठोर तथा असाध्य प्रकृति वाले होते हैं जिनमें कुछ गम्भीर अपराधी, घातक अपराध करते हैं जैसे हत्या, डकैती, तस्करी, बालात्कार आदि तथा इसके विपरीत कुछ बालक साधारण अपराध करते हैं जैसे स्कूल से भाग जाना, घर छोड़कर चले जाना, मादक औषधियों का सेवन, लैंगिक व्यवहार आदि साधारण अपराधियों और गम्भीर अपराधी को उपचार हेतु अलग रखा जाता है। अपराधी बालकों को पुलिस द्वारा पकड़े जाने के बाद उन्हें परिवीक्षा ग्रह में रखा जाता है। ब्लेक (1967) के अनुसार 48 प्रतिशत व्यक्तियों के अपराध करने में सुधार देखा गया है।

परिवीक्षा ग्रह में उन्हें व्यवसायिक प्रशिक्षण दिया जाता है और उनके व्यवहार को संतोष जनक बनाने का प्रयास किया जाता है। जिससे अपराधी बालक के व्यक्तित्व का पुनर्गठन व पुनर्स्थापन होता है।

बाल अपराधी के जीवन स्तर में सुधार माता पिता के शिक्षण व विद्यालय में स्वास्थ्य कार्यक्रम बाल अपराध के नियंत्रण के लिए लाभकारी है मनोचिकित्सा व समाज सापेक्ष चिकित्सा उपयोगी सिद्ध हुई है।

### 3. प्रौढ़ अपराध और नव अपराधी:-

प्रौढ़ अपराध की जडे कभी कभी बचपन में होती है परन्तु सदैव ऐसा नहीं होता बहुत से बाल अपराधी प्रौढ़ अपराधी नहीं बनते और बहुत से प्रौढ़ अपराधी पहले बाल अपराध नहीं रहे होते हैं।

असामाजिक कार्य भी अलग अलग प्रकार के होते हैं हो सकता है जो कार्य समाज के नियमों के विरुद्ध हो वह अपराधी को असामाजिक कार्य लगते ही न हो। कुछ व्यवहार हमारे समाज में पूर्णतः स्वकीकार नहीं किये जाते हैं।

कभी कभी व्यक्ति अपने जीवन में एक अपराध करके ही इस श्रेणी में पहुँच जाता है और उसकी जीवन शैली का एक रूप बन जाता है।

नव अपराधी व्यक्ति की धन में रूचि होती है जिसके कारण वह अपराध करते है यह व्यक्ति अपराध रोमांच के लिए करते है यह रोमांच ऐसे निषिद्ध कार्य करने से उत्पन्न होता है जो तात्कालिक क्षणों को तीव्र बना देते है यह व्यक्ति अपराध करने से पहले कोई योजना नहीं बनाते है। यह अपने द्वारा किये गये अपराधो के परिणाम का कोई पूर्वाभास नहीं होता है कि परिणाम कितना घातक सिद्ध हो सकता है इनका उद्देश्य किसी भी तरह धन कमाना होता है।

#### कारण:-

बालापचपार की ही तरह प्रौढ अपराधी व नव अपराधी में पस्स्थितियों से संबंधित प्रतिबल व आन्तरिक तनाव अत्यधिक महत्वपूर्ण होते है। अत्यधिक प्रतिबल व आन्तरिक तनाव के कारण अपराध करने की प्रवृति तीव्र हो जाती है सामान्य व्यक्तियों के द्वारा अपराध एक बार किया जाता है परन्तु जब ये अपराध बार बार होने लगते है तो वह अपराध न रहकर महाअपराध की श्रेणी में आ जाता है। अत्यधिक मदिरापान का सेवन करना भी अपराध का एक महत्वपूर्ण कारक माना जाता है।

#### उपचार:-

इसके उपचार व निरोध के लिए उन्ही विधियों का उपयोग किया जाता है जिनका प्रयोग आसामान्य व्यवहार के लिए किया जाता है जैसे अस्पतालों में भरती करना, आयुवैज्ञानिक चिकित्सा तथा मनोचिकित्सा उपलब्ध करना, अस्वस्थ व्यक्तित्व और प्रवृत्तियों की समय रहते पहचान करना, अवांछनीय परिस्थितियों में सुधार करना आदि। आज का कानून अपराधियों के पुर्नवास से कोई रूचि नहीं रखता है दूसरी और एक बार दण्डित हो जाने के बाद अपराधी को समाजस्वीकार नहीं करता अपराधियों को सुधारने के लिए आवश्यक है कि ऐसे अपराधियों को समाज में सम्मानजनक स्थान प्रदान किया जाय। 40 से 70 प्रतिशत दण्डित अपराधी पुन अपराध करने के लिए विवश हो जाते है।

#### 4. लैंगिक विपर्याय या कामुक विचलन ((Sexual Perversions or Deviation)

जब एक व्यक्ति का जीवन प्राकृतिक व जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति के अनुकूल व उनके अनुरूप बना रहता है। तब तक उसमें मैथून तथा उससे संबंधित पूर्व आनन्द क्रीडा दोनो का स्वरूप सामान्य बना रहता है, परन्तु जब व्यक्ति का लैंगिक जीवन कुछ व्यक्तिगत, समाज, सांस्कृतिक कारणो से, प्राकृतिक व जैविक आवश्यकताओं की समयानुकूल आवश्यक सन्तुष्टि से अत्यधिक विचलित होने लगता है तब लैंगिक विचलन उत्पन्न होने लगता है।

एक व्यक्ति अपने लैंगिक जीवन में विरोधी लिंग के प्रति आर्कषित होता है प्रत्येक व्यक्ति में लैंगिक इच्छाएं होती है जिनकी पूर्ति वह अपने भिन्नलिंग वाले के साथ करता है। लैंगिक इच्छाओं को दमन, अवदमन समापन नहीं होता है लैंगिक क्रियाओं की सन्तुष्टि के मार्ग में जब बाधाएँ उत्पन्न होती है तब उससे संबंधित व्यक्ति लैंगिक जीवन में लैंगिक विचलन व विपर्यास उत्पन्न हो जाता है जिसे लैंगिक विचलन कहा जाता है।

लैंगिक विकार अथवा विचलन केवल लैंगिक आवश्यकताओं की असन्तुष्टि से ही उत्पन्न नहीं होती है बल्कि व्यक्ति के जीवन के शैशव काल से संबंधित मनोकामुक कुण्ठाओं से भी उत्पन्न होते है, इसके अतिरिक्त व्यक्तित्व

की निर्बलता, अपरिपक्वता, आवेगशीलता, लैंगिक संबंधों की विफलता भी लैंगिक विचलन को जन्म देते हैं। असन्तुलित हार्मोन के कारण भी व्यक्ति में लैंगिक विचलन उत्पन्न होता है।

जब लैंगिक क्रिया के उपयोग में स्वाभाविक या सामान्य विधियों का प्रयोग न करके कृत्रिम व असामान्य विधियों को प्रयोग में लाया जाता है तो उसे लैंगिक विकृति कहते हैं। लैंगिक विकृतियों का प्रभाव व्यक्तित्व पर पड़ता है जिससे व्यक्तित्व विकास असन्तुलित हो जाता है।

### लैंगिक विचलन के कारण:-

#### 1. अधिगम और पुनर्बलन:-

समाजीकरण प्रक्रिया के अन्तर्गत ही प्रत्येक व्यक्ति कामुक व्यवहार का अधिगम करता है जिनका कामुक व्यवहार समाज में प्रचलित व्यवहार से भिन्न होगा वह कामुक व्यवहार निश्चय ही अनुकरण द्वारा सीखे गये व्यवहार से विचलनयुक्त होगा।

#### 2. त्रुटिपूर्ण सूचना:-

आज के समय में भी सेक्स संबंधों के बारे में खुलकर बातचीत करना निषिद्ध है जिसके कारण इसके बारे में पर्याप्त सूचना के बजाय त्रुटिपूर्ण सूचना प्राप्त होती है त्रुटिपूर्ण सूचना के कारण भी व्यक्ति का कामुक व्यवहार विचलन हो सकता है।

#### 3. कामुक कुंठा और प्रतिबल:-

अनेक समाजों में विवाह होने से पूर्व यौन संबंधों पर प्रतिबन्ध होता है। प्रतिबन्ध के कारण सेक्स ऊर्जा का उपयोग नहीं होता है जिसके कारण कुंठा उत्पन्न होती है एक अध्ययन में देखा गया कि प्रतिबल परिस्थितियों में बलात्कार के होने का सम्भवना अधिक होती है।

#### 4. मानसिक विकार:-

कामुक विचलन व्यवहार करने वाले अधिकांश व्यक्ति विभिन्न मानसिक रोगों से पीड़ित होते हैं। 76 प्रतिशत मानसिक रोगी व्यक्ति व 14 प्रतिशत सामान्य व्यक्तियों में कामुक व्यवहार में विचलन होता है। मनस्ताप, मनोविक्षिप्ता व मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्तियों में कामुक विचलन अत्यधिक होता है।

### कामुक विचलन के प्रकार:-

कालमैन ने विभिन्न प्रकार के कामुक व्यवहार के रूप को निम्नलिखित तीन श्रेणियों में विभाजित किया है।

1. वे कामुक विचलन जिनमें कामुक क्रिया व कामुक इच्छा की कमी होती है जैसे नपुंसकता, कामोन्माद (कामशैत्य)
2. वे लैंगिक विकार जिनमें लैंगिक विकास अपेक्षाकृत अतिविकसित होता है जैसे पुरुष कामोन्माद, स्त्रीकामोन्माद।

3. वे लैंगिक विकार जो इसलिए असामान्य माने जाते हैं क्योंकि काम-पात्र (विरोधी लिंग) का चयन सामान्य नहीं होता है। जैसे समलिंगी कामुकता, पशुगमन आदि।

विभिन्न प्रकार के लैंगिक विचलनों के मुख्य रूप निम्नलिखित हैं।

### 1. नपुंसकता:-

पुरुषों में यौन संबंधों की इच्छा में कमी अथवा इसे प्राप्त करने की अयोग्यता को नपुंसकता कहा जाता है जब किसी कारण से किसी व्यक्ति की मैथून क्रिया के प्रति विरुद्धि उत्पन्न हो जाती है व अपने विपरीत लिंग के व्यक्ति के प्रति आकर्षण नहीं रहता, या यौन संबंधों के प्रति एक गहरा डर, अपराध भावना व असफलता की भावना घर कर लेती है तब व्यक्ति में नपुंसकता की स्थिति स्पष्ट होती है।

### 2. कामशैत्य((Frigidity):-

जिस प्रकार से पुरुषों में नपुंसकता होती है उसी प्रकार स्त्रियों में कामशैत्य होता है। नपुंसकता का अपेक्षा कामशैत्य अधिक पाया जाता है। जब एक युवा स्त्री अपने पुरुष साथी के साथ यौन संबंधों में प्रायः बार-बार असंतुष्टि तथा अतृप्ति व एक विशेष कष्टकारक तनाव का अनुभव करने लगती है तब लैंगिक व्यवहार के प्रति अपनी उदासी व शैत्य प्रतिक्रिया व्यक्त करती है। जिससे उसमें विचलन की प्रतिक्रियाएँ स्पष्ट होती हैं।

### 3. पुरुष कामोन्माद एवं स्त्री कामोन्माद ((Satyriasis & Nymphomania) .

कामोन्माद से तात्पर्य कामुक संबंधों में सक्रियता है। ऐसे स्त्री पुरुष तीव्र कामुक इच्छा का अनुभव करते रहते हैं। उनका पूरा जीवन इसी इच्छा पर केन्द्रित होता है। ऐसे पुरुष अनेक महिलाओं के साथ यौन संबंध स्थापित करते हैं ऐसे व्यक्ति में पुरुष एवं भाव की हिनता होती है। जिसके तनाव से वह अनेक स्त्रियों से यौन संबंध स्थापित करते हैं। इसी प्रकार ऐसी कामुक स्त्री जिसको कभी भी यौन सन्तुष्टि नहीं हो पाती है और वह नवीन संबंधों के प्रति ललायत रहती है। कामोन्माद उत्पन्न होने के कई कारण होते हैं।

1. जीवन की समस्याओं से पलायन 2. विभिन्न कुष्ठाओं की क्षति पूर्ति 3. पुरुषत्व व स्त्रीत्व तथा पर्याप्तता की भावनाओं को ऊँचा उठाना।

### 4. हस्तमैथून:-

हस्तमैथून से तात्पर्य कामुक सुख के उद्देश्य से ज्ञानेन्द्रियों का आत्म उद्धीपन है। किन्से के अनुसार “62 प्रतिशत स्त्रियाँ तथा 92 प्रतिशत पुरुष अपने जीवन में किसी न किसी समय हस्तमैथून करते हैं। हस्तमैथून वह लैंगिक विचलन है जिसमें स्त्री या पुरुष अपनी कामवासना की तृप्ति करने के लिए अपने ही लिंगों को स्पर्श करके सुख का अनुभव करते हैं।

हमारे समाज में हस्तमैथून को घृणित और खतरनाक क्रिया माना जाता है। कुछ परिस्थिति में हस्तमैथून अत्यधिक विकृति जनक हो जाता है जिन बालकों को प्यार नहीं मिलता व वह स्वयं को अकेले व अवांछनीय अनुभव करते हैं उनमें अपनी कुष्ठा की क्षतिपूर्ति के प्रयास के फलस्वरूप हस्तमैथून की आदत पड़ जाती है। हस्तमैथून क्रिया के उत्पन्न होने के कई कारण हैं। मानसिक अन्तःद्वन्द्व व तनाव दूर करने के लिए, अत्यधिक चुस्त कपड़े

पहनकर उत्तेजना शान्त करने के लिए, अकेलापन दूर करने के लिए एवं लैंगिक क्रिया साधनों का अभाव होता है।

### 5. समलिंगी कामुकता:-

समलिंगी कामुकता यानि समान लिंग के सदस्यों के बीच कामुक संबंध है। किन्से के अनुसार स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा समलिंगी कामुक संबंध कम पाये जाते हैं। अर्थात् स्त्रियों में 28 प्रतिशत और पुरुषों में 50 प्रतिशत व्यक्तियों में समलिंगी कामुकता होती है। समलिंगी कामुकता में विचलन के कई कारण होते हैं जैसे शरीर रचना संबंधी कारक-आनुवांशिकता, हार्मोन असन्तुलन, मनो-सामाजिक कारक विकृतिजनक पारिवारिक प्रारूप, सामाजिक अनुभव दीर्घकालिक विषमलिंगीकामी कुष्ठा आदि।

### 6. प्रदर्शन वृत्ति ((Exhibitionism) :-

जब एक युवक अथवा युवती की लैंगिक तृप्ति केवल अपने को अर्द्धनग्न या नग्न रूप में प्रदर्शित करने में ही होती देखी जाती है। इससे संबंधित व्यक्ति की ऐसी प्रदर्शन वृत्ति एक लैंगिक विकृति ही होती है। इसमें व्यक्ति अपने लैंगिक सामने किसी भी सार्वजनिक स्थान पर प्रदर्शित करने लगता है। प्रदर्शन वृत्ति कम आयु के प्रौढ पुरुषों में गीष्म ऋतु में अधिक प्रचलित रहती है। प्रदर्शन वृत्ति कई कारणों से स्पष्ट होती है। विषमलिंगी की ओर अग्रसर होना, पुरुषत्व के प्रति शंका एवं भय मनो विकृतियाँ आदि।

### 7. दर्शन रति ((Voyeurism):-

इसके अन्तर्गत व्यक्ति विरोधी लिंग के व्यक्तियों के अर्द्धनग्न अंगों को देखकर ही विशेष लैंगिक तृप्ति की अनुभूति करते हैं। इसके अन्तर्गत पुरुष ऐसी स्त्रियों पर ध्यान एकाग्र करते हैं जो कपड़े उतार रही हो व ऐसे दम्पति को देखते हैं जो कामुक संबंधों में व्यस्त हो। ऐसे दृश्य को देखते समय यह प्रायः हस्तमैथुन क्रिया करते हैं।

### 8. वस्तु कामुकता ((Fetishism):-

इसमें स्त्री व पुरुष अपने विषम लिंग के व्यक्ति के निर्जीव वस्तुओं का प्रयोग करते हैं। इनमें पुरुष द्वारा स्त्रियों के अर्न्तवस्तु जिनमें जाँघियाँ, आगिया, चोली आदि का उपयोग करते हैं। इसी प्रकार स्त्रिया भी पुरुष की वस्तुओं का उपयोग कर व उन्हें स्पर्श करके लैंगिक सुख की अनुभूति प्राप्त करती हैं। कभी कभी व्यक्ति द्वारा वस्तु कामुक व्यवहार में वस्तुओं के साथ हस्तमैथुन किया जाता है।

### 9. शव कामुकता ((Necrophilia):-

इसके अन्तर्गत पुरुष संबंध स्थापित करने से पहले स्त्री की हत्या करता है और फिर उसके साथ आसानी से यौन संबंध स्थापित करता है। इसका संबंध किसी गम्भीर मानसिक रोग से होता है।

### 10. परपीडन कामुकता ((Sadism):-

परपीडन कामुकता की उत्पत्ति मार्किस डिसेड (1740-1814) के नाम से हुई जो अपनी कामुकता के शिकारों पर क्रूरता और निर्दयता का व्यवहार करके अपनी कामुक इच्छाओं की तृप्ति करता है। इस प्रकार की विकृति में

अपने प्रेमपात्र की पीडा के मुख्य उदाहरण पुरुष की शिषन को काटना या उसे चोट पहुंचाना व स्त्रियों के अन्तरिक अंगों पर आघात पहुंचाना होता है जिससे स्त्री व पुरुष को लैंगिक सुख की प्राप्ति होती है।

### 11. स्वपीडन कामुकता ((Masochism):-

ऐसी लैंगिक विचलन की स्थिति के अन्तर्गत एक स्त्री अपनी कामतृप्ति सम्भोग प्रक्रम में पुरुष के द्वारा घोर पीडा प्राप्त करती है पीडा संबंधो से उसे सन्तुष्टि प्राप्त नहीं होती है।

### 12. बालरति ((Pedophilia):-

इससे एक कामुक व्यक्ति अपनी कामतुष्टि के लिए अबोध बालक व बालिकाओं को ही बहला फुसलाकर अपना शिकार बनाता है। बालरति को समाज एक गम्भीर अपराध मानता है।

### 13. पशुगमन ((Bestiality):-

कुछ व्यक्ति अपने काम संबंधी तनाव की सन्तुष्टि के लिए पशुओं को काम साथी बना लेते हैं।

### 14. अगम्यगमन अथवा अजाचार ((Incest):-

जब कभी एक परिवार के अति निकट के सदस्यों में काम संबंध देखने में आता है तब ऐसे संबंध को व्यक्तिचार व अजाचार कहा जाता है। सार्वधिक प्रचलित व्याभिचार भाइयों और बाहनों के बीच होता है। ऐसा लैंगिक विचलन सामाजिक मार्यादा तथा व्यक्तिगत शिष्टता की दृष्टि से, निषिद्ध तथा वर्जित ही होता है।

### लैंगिक विचलन के उपचार:-

कामशैव्य या नपुसंकता, वस्तु कामुकता और समलिंगी कामुकता का उपचार व्यवहार चिकित्सा द्वारा किया जाता है वस्तु कामुकता का उपचार काम वस्तु के प्रति अनुकूलित विरूचि स्थापित करके किया जा सकता है।

कामुक विचलनों का उपचार अधिकांश अन्य आसामान्य व्यवहारों के उपचार से मूलतः भिन्न नहीं होता है। दोनों में ऐसी प्रविधियां अपनायी जाती जिनसे रोगी अपने अभिप्रेरणों में अन्तर्दृष्टि प्राप्त कर सके तथा अपनी मूल अभिवृत्तियों को परिवर्तित कर सके। अधिक स्वीकार्य व्यवहार के स्वरूप को विकसित करे। अधिक गंभीर कामुक अपराधों जैसे परपीडन और बाल रति के रोगियों को कारावास में भेजना आवश्यक होता है। कम गंभीर अपराधों के लिए अस्पताल उपर्युक्त है।

सामूहिक चिकित्सा समूह सापेक्ष चिकित्सा तथा , मनोचिकित्सा द्वारा लैंगिक विचलनों के उपचार में लाभकारी सिद्ध हुई है।

## 5. मद्यव्यसिनता ((Alcoholism))

मद्यपान के कारण नैतिक दुर्बलता और इच्छा शक्ति की कमी समझा जाता था परन्तु आधुनिक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से इसे मनोविकृत्यात्मक समस्याएँ माना जाता है।

व्यक्ति अपने आन्तरिक ओर ब्राह्म असहनीय प्रतिबलों के प्रति मद्यपान का सेवन करके प्रतिक्रिया करता है। मद्यपान का सेवन कुछ समाजो तथा विशिष्ट वर्ग के व्यक्तियों के लिए एक साधारण सी बात है। इसका उपयोग व्यक्ति दुश्चिन्ता व कुष्ठा के कष्ट कारक तनावों से मुक्ति पाने के लिए करता है। जब व्यक्ति सामान्य रूप से जब तक मद्यपान करते रहते हैं तब तक उनकी शारीरिक व मानसिक स्थिति भी सामान्य बनी रहती है। परन्तु जैसे ही उन्होंने किसी कारण मद्यपान बन्द कर दिया, तब उनमें मन के उचाट रहने, सिरदर्द, चिड़चिड़पन व दामित दुश्चिन्ता तथा कुष्ठा के तनाव के उभरने के कारण मन स्थिति एक दम आकुल भारी व अवसादी रहने लगती है।

किसी मानसिक रोग का एक मात्र कारण मद्यसेवन ही नहीं होता परन्तु कुछ ऐसे विशेष लक्षण होते हैं जो मद्यपान के कारण ही उत्पन्न होते हैं। इन्हे ही मद्यव्यसनिक मनोविकृति कहते हैं। जब रक्त में ऐल्कोहल की मात्रा 0.1 प्रतिशत हो जाती है तो व्यक्ति को नशा हो जाता है व पेशीय समन्वय, उच्चारण और दृष्टि में ह्रास उत्पन्न होने लगता है। जब ऐल्कोहल की मात्रा 0.5 प्रतिशत हो जाती है तो समस्त तान्त्रिकीय सन्तुलन बिगड़ जाता है व्यक्ति बेहोश हो जाता है। जब यह मात्रा 0.55 प्रतिशत हो जाये तो घातक सिद्ध हो सकती है।

कौलमैन (1976) के अनुसार मद्यपान 50 प्रतिशत हत्याओं, 40 प्रतिशत हमला, 35 प्रतिशत बलात्कार, और 30 प्रतिशत आत्महत्या के कारण होती है। लेविट के अनुसार मदिरापान करने वाले व्यक्ति की आयु सामान्य अवस्था की अपेक्षा 12 वर्ष कम हो जाती है।

### मद्यपान के प्रकार:-

#### 1. मनोविकारी मादकता ((Pathological Intoxication):-

रोगी में मनोविकारी मादकता कुछ मिनट से लेकर कभी कभी घण्टों तक बनी रहती है। यह एक तीव्र प्रतिक्रिया है। यह उन व्यक्तियों में घटित होती है जिनमें ऐल्कोहल के प्रति सहनशीलता बहुत कम होती है। उदा० के लिए मिर्गी से पीडित व्यक्ति व वे व्यक्ति जिनका व्यक्तित्व अस्थिर रहता है। थकान और संवेगात्मक तनाव आदि कुछ ऐसी स्थितियाँ हैं जिनमें एक सामान्य व्यक्ति की ऐल्कोहल के प्रति सहनशीलता कम हो जाती है। ऐल्कोहल लेने से रोगी में विभ्रम उत्पन्न होने लगते हैं और वह दिशा भ्रमित होने लगता है।

#### 2. सकम्प प्रलाप (नशे से ज्ञान भ्रान्ति) ((Delirium Tremens):-

यह स्थिति उन व्यक्तियों में उत्पन्न होती है जो लंबे समय तक अधिक मद्यपान करते रहे हो और वह किसी कारण एक दम समाप्त कर देते हैं। इस विकार का सर्वप्रथम वर्णन टॉमस सूटन ने (1813) में किया इस स्थिति में व्यक्ति को नीद नहीं आती। उसमें व्याकुलता एवं भूख की कमी के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। तेज बुखार तथा कब्ज की शिकायत, नाडी गति में मन्दता आ जाती है। रोगी को अनेक प्रकार के भ्रम व भय सताते रहते हैं। कुछ स्थितियों में ऐसे व्यक्ति के होंठ, जीभ एवं हाथों में कम्पन, हृदय की तीव्र गति, संसकी दुर्गन्ध प्रायः देखने में आता है।

### 3. तीव्र विभ्रमशीलता:-

इसका मुख्य लक्षण श्रवण विभ्रम है इसमें आरम्भ में रोगी को आवर्जें सुनाई देती है। जिनका संबंध उनके व्यक्तिगत जीवन से होता है। कभी कभी व्यक्ति इतना भयभीत हो जाता है कि आत्मरक्षा के लिए हथियार खरीदता है व पुलिस से सहायता मागता है। इस प्रकार के रोगी को मानसिक अस्पताल में भरती करना आवश्यक है। इस स्थिति में मद्यव्यसनी अपने गहरें एवं आन्तरिक अपराधों व पापों के लिए आत्मपश्ताचाप की गहरी भावना से पीड़ित व प्रताड़ित होते देखा जाता है।

### 4. कोर्साकोफ मनस्ताप:-

इस रोग का वर्णन 1887 में रूसी मनो चिकित्सक कोर्साकोफ ने किया। इसका प्रमुख लक्षण स्मृति दोष है जिसमें व्यक्ति तात्कालिक घटनाओं को भूल जाता है स्मृति दोष के कारण घटनाओं के बीच साहचर्य स्थापित नहीं कर पाते। यह मनस्ताप प्रायः बूढ़े मद्यव्यसनियों में अधिक उत्पन्न होता है जो कई वर्षों से मद्यपान कर रहे होते हैं। इस मनस्ताप के उत्पन्न होने के कारण विटामिन बी की कमी तथा अन्य आहार है इसका संबन्ध आंगिक विकृति से नहीं है। रोगी के पूर्ण विश्राम की व्यवस्था करनी चाहिए। मद्यपान का पूर्ण निषेध तथा विटामिन बी से युक्त पौष्टिक भोजन देना अति आवश्यक होता है।

### 5. दीर्घकालिक मनोविकृति (Chronic Reactions):-

जो व्यक्ति अनेक वर्षों से मद्यपान करते हैं उन्हें धीरे धीरे शराब पीने की लत पड जाती है और वह इस विकृति के शिकार हो जाते हैं जो लोग कई वर्षों से शराब पीते चले आ रहे हैं उनका शरीर व मन दोनों का ह्यस होना आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार के रोगियों में अनेक प्रकार के लक्षण प्रकट होने लगते हैं जैसे शरीर का कापंना, चेहरा चौड़ा हो जाना, शरीर में दर्द आदि। बौद्धिक और नैतिक योग्यताएं धीरे-धीरे कम होने लगती हैं। स्मृति निर्णय और एकाग्रता की कमी हो जाती हैं।

### मद्यपान के कारण:-

मद्यपान के अनेक कारण हैं जैविक कारण, मनोवैज्ञानिक कारण, सामाजिक संस्कृति कारण।

#### 1 जैविक कारण:-

जब व्यक्ति लम्बे समय तक मद्यपान करता रहता है तब उसका शरीर पूर्ण रूप से मदिरा पर आश्रित हो जाता है। अत्यधिक समय से मद्यपान करते रहने के बाद जब तक व्यक्ति मद्यपान करना बन्द करता है तो उसमें प्रत्यागमन सवधी लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे दुर्बलता, पसीना आना, उल्टी होना, विभ्रम, ज्वर आदि। प्रत्यागमन के इन लक्षणों का कारण यह होता है कि रोगी कोशिया सम्बन्धी चयापचय में एल्कोहल की उपस्थिति का अभ्यस्त हो जाता है। इसे शरीरक्रियात्मक आश्रितता ((Physiological Deperiderice) का आरम्भ कहा जाता है।

#### 2. मनोवैज्ञानिक कारण:-

मद्यपान पर व्यक्ति केवल दैहिक रूप से ही आश्रित नहीं होता है बल्कि यह मद्यपान पर मनोवैज्ञानिक रूप से भी आश्रित होता है मद्यपान का संबंध समायोजन से है अत्यधिक मद्यपान से सम्पर्क से जीवन का समयोजन क्षतिग्रस्त

हो जाता है। मद्यपान करने वाले व्यक्ति संवेगात्मक रूप से अपरिपक्व होते हैं ये व्यक्ति चाहते हैं कि लोग उनके व्यक्तित्व की प्रशंसा करें। व्यक्ति के अत्यधिक मद्यपान करने का एक महत्वपूर्ण कारण उसका दुर्बल व्यक्तित्व होता है मद्यपान करने की वजह से व्यक्ति अपना कार्य स्वयं नहीं करना चाहता है। और दूसरो पर आश्रित रहता है। और जब दूसरे व्यक्ति उसकी किसी प्रकार की कोई सहायता नहीं करते हैं तब वह मद्यपान का सेवन करने लगता है।

मद्यपान करने वाले व्यक्तियों की व्यक्तित्व विशेषताएँ सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा भिन्न होती हैं। मद्यपान करने वाले व्यक्ति में प्रतिबल के प्रति सहनशीलता बहुत कम होती है। ऐसे व्यक्ति तनाव व प्रतिबल को सहन नहीं कर पाते हैं।

एक अध्ययन के अनुसार मद्यपान करने वाले व्यक्ति की चिन्ता मद्यपान के द्वारा कम होती है। जब एक व्यक्ति का जीवन कठोर व प्रतिबलक स्थितियों से निराश व हताश हो जाता है तब उसमें जीवित रहने व जीवन के कष्टों का भार उठाने की इच्छा नहीं रह जाती है इसलिए व्यक्ति मद्यपान की ओर अग्रसित हो जाता है। अत्यधिक मद्यपान से चेतन रूप से अपनी मृत्यु को ही निमन्त्रण देना है इस आधार पर कह सकते हैं। (A man is sick not because he drinks but he drinks because he is sick ) एक व्यक्ति इस कारण रोगी नहीं है कि अत्यधिक मदिरा पीता है बल्कि इस कारण ही मदिरा पीता है क्योंकि वह रोगी है।

#### 4. सामाजिक सांस्कृतिक कारक:-

सामाजिक सांस्कृतिक कारक भी मद्यपान को बढ़ावा देते हैं यदि किसी समाज में मद्यपान को बुरा नहीं समझा जाता है वहा व्यक्ति अत्यधिक मद्यपान के लिए अग्रसर हो जाते हैं। जब व्यक्ति अपने परिवार में बड़े बुढ़ो की मध्यपान का सेवन करते हुए देखते हैं तो वह इसका सेवन भी करने लगते हैं।

जब व्यक्ति समाज में रहकर किसी कुसंगति में फस जाता है। तो भी मद्यपान करने लगता है। क्योंकि जैसी संगत होती है व्यक्ति वैसा ही व्यवहार करता है।

जब व्यक्ति क पारिवारिक वातारण दोषपूर्ण होता है और वह इससे समायोजन नहीं कर पाता है व उसके पिता व भाई किसी विकृति से ग्रसित होते हैं तब वह मद्यपान के सेवन को अपनाता है। बेल्स (Bales 1946) के अनुसार किसी समाज में मद्यव्यसनिता की लोकप्रियता को तीन संस्कृति कारण जिम्मेदार होते हैं।

1. संस्कृति द्वारा उत्पन्न किये गये आन्तरिक तनाव और प्रतिबल की मात्रा।
2. संस्कृति द्वारा पोषित मद्यपान के प्रति अभिवृत्तियाँ।
3. संस्कृति द्वारा असन्तुष्टि और दुश्चिन्ता का सामना करने के अन्य साधनों की उपलब्धता।

संस्कृति अभिवृत्तियों का मद्यपान पर सीधा प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए इस्लामी सभ्यता में मद्यपान को बुरा माना जाता है। इसी तरह से यहूदियों में इसका उपयोग केवल धार्मिक कार्यक्रमों में किया जाता है। दोनों ही संस्कृतियों में मद्यपान की मात्रा कम पाया जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि सांस्कृतिक अभिवृत्तियाँ मद्यपान में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती हैं।

**उपचार:-**

मद्यपान के रोगी के उपचार के लिए आवश्यक है कि उसे मदिरा से पूर्णरूप से दूर रखा जाए। मद्यपान को दूर करने के लिए औषधियों द्वारा उपचार करना भी आवश्यक होता है। इस औषधियों के अन्तर्गत क्लोरडियाजम आक्साइड, क्लोर प्रोमेजीन जैसी औषधियों से मद्यपान के उपचार में सहायता मिलती है। इन औषधियों की सहायता से व्यक्ति के तनावों और दुश्चिन्ता को कम किया जाता है। रोगी अपने आहारों को आसानी से पचा लेता है और उसे आराम की नींद आने लगती है।

फ्रैक्स (1966) का यह कहना है कि यदि रोगी के मदिरा में कुछ ऐसी औषधि सम्मिलित कर दिया जाये जिससे उसको इसके पीने से पहले उसमें से बुरी गन्ध आने लगे अथवा उसे पलटी आदि की शिकायत होने लगे इससे रोगी को मद्यपान छोड़ने में सहायता मिलती है इसके संबंध में ऐमेटाइन हाइड्रोक्लोराइड व डिसूल फैरीन औषधि प्रमुख है। मद्यपान के उपचार के लिए सामूहिक उपचार तथा समाज सापेक्ष चिकित्सा सहायता मिलती है। सामूहिक चिकित्सा और व्यक्तिगत चिकित्सा के द्वारा रोगी में अपने व्यवहार के प्रति अन्तर्दृष्टि उत्पन्न की जा सकती है। व्यवहार उपचार पद्धति के द्वारा भी 50 से 80 प्रतिशत रोगियों की स्थिति में लाभ होते देखा गया है। उपचार की नयी विधियों के साथ साथ औषध मानसिक और सामाजिक प्रविधियों और मद्यव्यसनिक अनामिक जैसी संस्थाओं द्वारा 60 से 80 प्रतिशत मद्यव्यसनी पूर्णरूप से सदैव के लिए मद्यपान छोड़ देते हैं।

**9.5 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न**

1. व्यक्तित्व विकार कितने प्रकार के होते हैं ?
2. समाज विरोधी व्यक्ति से क्या तात्पर्य है ? समाज विरोधी व्यक्तित्व के दो लक्षणों को स्पष्ट कीजिए ?
3. समाज विरोधी व्यक्तित्व के उपचार में कौन सी विधियाँ लाभप्रद हैं ?
4. बाल अपराधियों की सही आयु सीमा क्या है ?
5. बाल अपराधियों के उपचार की कौन सी विधि अपनाई गई ?
6. लैंगिक विचलन के कारण कौन कौन से हैं ?
7. लैंगिक विचलन के पाँच प्रकारों का नाम उल्लेखित कीजिए ?

**9.6 सारांश**

किसी भी व्यक्ति का अपने वातावरण के साथ समायोजन के लिए आवश्यक है कि उस व्यक्ति का व्यवहार वातावरण में उपस्थित सभी व्यक्तियों के साथ अच्छा होना चाहिए, परन्तु यदि व्यक्ति का व्यक्तित्व विघटित होता है तो उसका व्यवहार अच्छा नहीं होता है। व्यक्तित्व के विघटित होने से उसके व्यक्तित्व में विकार उत्पन्न होने लगते हैं। इन विकारों के उत्पन्न होने से व्यक्ति का व्यवहार असमायोजित होने लगती है जिससे उनके शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर समाज विरोधी प्रतिक्रियाओं का प्रभाव पड़ता है बहुत अधिक महत्व दिया गया है समाज विरोधी प्रतिक्रियाओं के अन्तर्गत व्यक्ति समाज के विरुद्ध कार्य करने लगते हैं जिससे समाज को हानि पहुँचती है। इससे व्यक्ति कभी कभी अपराध करना भी आरम्भ कर देता है मदिरापान का भी सेवन करने लग जाता है इस प्रकार के कार्यों को करने से व्यक्ति के व्यक्तित्व में अनेको प्रकार के विकार उत्पन्न होने लगते हैं।

व्यक्तित्व के प्रमुख पाँच प्रकार होते हैं। समाज विरोधी मनोविकृत प्रतिक्रियाएँ, बालापचार, प्रौढ अपराध एवं नव अपराधी, कामुक विचलन, मद्य व्यसनिता आदि।

### 9.7 शब्दावली

#### 1. लैंगिक विपर्यास ((Sexual Perversion)):-

जब काम अन्तर्नैद की सन्तुष्टि सामान्यतः विरोधी लिंग के व्यक्ति के साथ मैथुन द्वारा न होकर किसी अन्य व्यवहार व साधन से होते देखा जाता है तब व्यक्ति के ऐसे लैंगिक व्यवहार को लैंगिक विचलन अथवा विपर्यास कहा जाता है।

#### 2. कामशैल्य (Frigidity):-

जब एक युवास्त्री अपने पुरुष साथी के साथ काम सम्बन्धी में प्रायः बारम्बार असन्तुष्टि तथा अतृप्ति अथवा कष्ट कारक तनाव का ही अनुभव करने लगे तब ऐसे व्यवहार को कामशैल्य कहा जाता है।

#### 3. कुसमायोजित व्यवहार:-

- किसी भी व्यक्ति द्वारा किया गया वह व्यवहार जो अनैतिक हो, समाज के विरुद्ध हो व उसमें समायोजन का अभाव हो कुसमायोजित व्यवहार कहलाता है।

### 9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

- a) व्यक्तित्व के विकार पाँच प्रकार के होते हैं।
- b) समाज विरोधी व्यक्तित्व के व्यक्ति द्वारा समाज के नियमों का उल्लंघन किया जाता वह समाज को स्वीकार्य नहीं होता है। समाजविरोधी लक्षण निम्न हैं।
  1. सुखवाद एवं अवास्तविक लक्ष्य।
  2. दोषपूर्ण सामाजिक संबंध।
- c) समाज विरोधी व्यक्ति के उपचार में वैयक्तिक चिकित्सा, सामूहिक चिकित्सा, व्यवहार चिकित्सा, औषध चिकित्सा का उपयोग किया जाता है।
- d) बाल अपराधियों की आयु सीमा 17 वर्ष तक है।
- e) बाल अपराधियों के उपचार में मनोचिकित्सा व समाज सापेक्ष चिकित्सा अत्यधिक लाभकारी सिद्ध होती है।
- f) लैंगिक विचलन के चार प्रमुख कारण हैं।
  1. अधिगम और पुर्नवलन।
  2. त्रुटिपूर्ण सूचना।
  3. कामुक कष्ट और प्रतिबल।

- 
4. मानसिक विकार।
  - g) लैंगिक विचलन के पांच प्रकार निम्नलिखित हैं।
    1. नपुसंकता ।
    2. हस्तमैथून।
    3. समलिंगी कामुकता।
    4. परपीडन कामुकता।
    5. स्वपीडन कामुकता।
- 

### 9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

---

- a. Coleman, J.C. (1976) Abnormal Psychology & Modern Life, Taraporevala
  - b. Davidson & Neale (1974) Abnormal Psychology, John Wiley
  - c. Kapil, H.K.(2001) अपसामान्य मनोविज्ञान, भार्गव प्रकाशन, आगरा
  - d. मखीजा और मरखीजा (2001) पसामान्य मनोविज्ञान, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन आगरा।
  - e. सिंह ए.के. (2009) आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, बनारसी दास, दिल्ली
- 

### 9.10 निबन्धात्मक प्रश्न

---

- a. व्यक्तित्व विकार के स्वरूप का वर्णन कीजिए तथा उसके विभिन्न प्रकारों की विवेचना कीजिए।
- b. समाज विरोधी मनोविकृत प्रतिक्रियाओं के कारणों व लक्षणों को स्पष्ट कीजिए।
- c. बाल अपराध से क्या तात्पर्य है? बाल अपराध के कारणों पर प्रकाश डालिए।
- d. लैंगिक विचलन क्या है इनके कारणों को स्पष्ट कीजिए।
- e. लैंगिक विचलन के प्रकारों की व्याख्या कीजिए व उपचार में कौन कौन सी विधि प्रयुक्त की जाती है सविस्तार उल्लेख कीजिए।